पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

नये रूपाकार, साज-सज्जा और बढ़े हुए पृष्ठों के साथ 'सारिका' का यह अंक आपको अवश्य पसंद आया होगा और भविष्य में भी आप 'सारिका' नियमित रूप से पढ़ना चाहेंगे. आपकी सुविधा के लिए हमने 'सारिका' की वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक चंदे की रियायती दरें निर्धारित की हैं. आप केवल नीचे दिये गये कूपन के साथ अपने वार्षिक/अर्द्धवार्षिक चंदे की राशि बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा हमें भेज दें. आपको 'सारिका' डाक से नियमित मिलने लगेगी.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक :67 रुपये

अर्द्धवार्षिक :34 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम . . . .

पता . . . .

. . . .

. . . .

हस्ताक्षर . . . .

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

प्रसार अधिकारी
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह ज़फर मार्ग
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

आदमी जीने भर के लिए पैसा कमाता है या पैसा कमाने के लिए जीता है...? मान लीजिए कि पैसा कमाने के लिए ही जीता है तो फिर मान-सम्मान, गौरव-गरिमा और अहम्-स्वाभिमान जैसी चीजों का क्या अर्थ रह जाता है भला...?

नव-वर्ष पर इस सवाल का जवाब दे रहा है....

उपहार अंक

रमेश चंद्र शाह, से.रा.यात्री, प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय और भगवती शरण मिश्र की कहानियों के साथ युवा-अनुभवों की ताजगी भरी कथा-दस्तक दे रहे हैं जयनंदन, संजय, हसन जमाल, मनमोहन चड्ढा, नवीन कुमार नैथानी और उषा मांगलिक.

ग्राम-गंध की छाया में...

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और डा. राम विलास शर्मा की ऐतिहासिक मुलाकात.

कृतियां, हलचल, कथा-दर्शन, धारा के विरुद्ध, फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, लघुकथाएं, गजलें, और एकदम नये स्तंभ : सारिका कथा-पहेली, नये हस्ताक्षर, बोलती तसवीर व नयी पौध.

हर महीने एक जरूरी मुलाकात सारिका ज़िंदगी की बेहतर किताब

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 27, अंक : 428, दिसंबर, 87

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी :
विमला रानी
ज्ञानसिंह

आवरण सज्जा : लोकेश भार्गव
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

प्रोडक्शन : हरेंद्र नेगी, सुनील चौहान

श्रद्धांजली :

शरलॉक होम्स पर विशिष्ट खंड

साक्षात्कार

कथा रचनाएं

शौर्य गाथाएं

अन्य आकर्षण

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

...र रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88 महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1 तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैवले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

आपकी बात

सामयिक समस्याओं को उजागर किया

'कथा-उत्सव अंक : एक' पढ़ा. सारिका कहानी की पत्रिका होने के साथ-साथ हमारे सामाजिक उत्सवों तथा पर्वों की परंपरा को भी बखूबी निभा रही है. इस अंक में अनेक पर्व-कथाएं पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. इसी तरह 'अंक दो' की भी प्रतीक्षा रहेगी. विशेषकर सारिका से हम उसके रूपाकार में इसी तरह की नवीनता की अपेक्षा करते हैं. 'कथा उत्सव अंक' में सामयिक संदर्भ को छूती हुई सामग्री के साथ महादेवी जी के महाप्रयाण पर सामग्री भी बहुत महत्वपूर्ण थी. इस अंक में डा. माहेश्वर का 'या देवि सर्वभूतेषु...' वाला लेख जहां दुर्गा पूजा के मौसम में रुचिकर लगा वहीं 'महादेवीजी के महाप्रयाण' पर डा. नारायणदत्त पालीवाल द्वारा प्रस्तुत श्रद्धांजलि इस युग की साहित्य की देवी के लिए भी समीचीन ही है.

इस अंक में प्रदीप पंत की 'फ़लत्' शीर्षक कहानी पूरे राष्ट्र यहां तक कि समाज-परिवार की भी एक विकट समस्या को उजागर करती है. यह कहानी-कहानी ही नहीं पूरी समस्या का चित्र भी है. आज हिंदुस्तान में इस तरह के पलायन के अनेकों उदाहरण मिल जायेंगे, घर-गांव से भी प्रतिभा पलायन हो रहा है. कहानी में पूरे समाज के मनोविज्ञान को परख कर जिस प्रकार अभिजात्य-वर्ग की अपने घर-परिवार, समाज, तथा देश के प्रति उदासीनता दिखाई देती है वह 'हकीकत' है, लेकिन प्रश्न उठता है कि यह समस्या है क्यों? आज देश का शिक्षित, गांव का शिक्षित अपने गांव तथा देश से क्यों कटता चला जा रहा है? कहानीकार ने एक ज्वलंत मुद्दे को अपनी कहानी के माध्यम से उठाया है उससे उनकी समाज के प्रति संवेदनशीलता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है, यह मुद्दा बहस, परिचर्चा का भी एक अहम मुद्दा है. आज हम अपने ही क्षेत्र के संदर्भ को उठायें तो यहां पहाड़ों से अनेक संपन्न तथा साधनों वाले लोग दूर जा बसे हैं. उनका अपने गांव, बिरादरी से कोई नाता ही नहीं है, 'फ़लत्' कहानी के पात्र (जहां तक अनुमान है यह हकीकत भी हो सकती है) तो देश से ही नाता तोड़ देने की बात कर रहे हैं. कहानी के सफल प्रस्तुतीकरण के लिए बधाई.

इस अंक में अन्य रचनायें भी सामयिक समस्याओं को छूती हैं, 'खामोशी', निवृत्तमान' तथा सची राउतराय की उड़िया कहानी भी बेहद पसंद आयी. सारिका अपने कर्तव्य को समाज तथा राष्ट्र के हित में बखूबी निभा रही है और हम इसी तरह की अपेक्षा भविष्य में भी करते हैं. 'कथा उत्सव अंक-दो' का बेसबी से इंतजार है.

■ दीपक चंद्र उप्रेती, पिथौरागढ़ (उ.प्र.)

मानव मनोविज्ञान का विश्लेषण

यूं तो अक्तूबर अंक की सभी कहानियां एक से एक बढ़कर हैं. सारिका की परंपरा के अनुरूप, परंतु प्रदीप पंत की लंबी कहानी 'फ़लत्' कहीं बहुत भीतर तक, मन की असीम गहराइयों तक, मर्म को बांध गयी. वाकई, सब कुछ होते हुए भी इंसान अकेला कैसे हो जाता है. कैसा मार्मिक चित्रण है इस निपट अकेलेपन का तथा अपने-अपने घर परिवार के निजी संसार में व्यस्त, मस्त बच्चों की मानसिकता का और संभवतः मजबूरियों का भी. कैसी बेबसी है. इंसान का दिल इंसान का दिल है. अंदर ही अंदर घुटता रहता है मगर कुछ कह भी नहीं पाता. पता नहीं क्यों जीवन की संध्या में थका-हारा आदमी अपनों का सामीप्य चाहता है और वही उसे मिल नहीं पाता. सही है कि बेटे-बेटियों को भी अपना-अपना जीवन अपने-अपने ढंग से जीना होता है. दोनों में सामंजस्य यदा-कदा ही हो पाता है. ऐसी भावपूर्ण कहानी देने के लिए हार्दिक आभार.

सूर्यबाला की कहानी 'होगी जय....' भी नितांत सामयिक और सुंदर है. आज के युग में ईमानदार होना कितना कठिन है. कैसी-कैसी परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है. कैसा अकेला पड़ जाता है इंसान. पूरे माहौल में उस पर उठती हुई उंगलियां, घूरती हुई निगाहें, चर्चा, कानाफूसी. कितने कष्टदायक क्षण होते हैं वे. मूल्य कितने बदल गये हैं. किसी जमाने में बेईमानों पर उंगलियां उठती थीं. आज गिने-चुने ईमानदारों को, ईमानदार होने की सजा भुगतनी पड़ती है. उन्हें असामान्य माना जाता है. अलग राह बनानेवालों को सलीब तो उठाना ही पड़ता है. यही तो युगों-युगों से इस संसार की रीत चली आयी है, धन्य हैं अरुण वर्मा जैसे हिम्मत वाले जो सब कुछ सहकर भी ईमानदारी की डगर से विचलित नहीं होते.

■ ओम प्रकाश बजाज, जबलपुर (म.प्र.)

'जो मैंने कहा था'

रमाकांत

पिछले अंक में कथा परिचर्चा के अंतर्गत मेरे कथन का एक अंश कुछ भ्रामक रूप से प्रस्तुत हुआ है.

श्री अरविंद त्रिपाठी से बातचीत के दौरान मैंने यह नहीं कहा कि कुछ कहानीकारों ने 'विदेशी कहानी के फार्मूले को रचना और गढ़ना अपना अभीष्ट बना दिया', या यह कि 'उनके लिए प्रेमचंद, यशपाल के बजाय चेखव, गोर्की, दास्तोवस्की आदर्श बन गये ' ये वाक्य मेरे कथन के मूल अर्थ को अंतर्विरोधी बना देते हैं.

मैं साहित्य में स्वदेशी या विदेशी के बीच भेदभाव का कायल नहीं हूं और न ही यह मानता हूं कि चेखव, गोर्की या दास्तोवस्की को आदर्श मानना बुरा है. मैंने कहा था कि हमारे पास तक पहुंचते-पहुंचते प्रेमचंद या यशपाल की परंपरा हमारे पूर्ववर्तियों ने इतनी खंगाल डाली थी कि विरासत में हमारे लिए कुछ बच नहीं रहा. अतः हमारे लिए विदेशी रचनाकारों की ओर देखना लाजमी हो गया. किंतु देखने का अर्थ उनका अनुकरण करना नहीं. आज का लेखक समसामयिक यथार्थ से अपना रिश्ता अपने ही ढंग से तय करेगा. हां, कुछ बनेगा तभी जब उन महान लेखकों जैसी दृष्टि पैदा की जा सके, न कि अपनी कहानी को उनके सांचों में ढालकर तैयार करें.

होगी जय, होगी जय हे अरुण

सर्वाधिक प्रभावित किया सूर्यबालाजी की कहानी 'होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन' ने. यह सामयिक कहानी जहां एक ओर भ्रष्टाचार के दलदल में आकंठ डूबे हुए लोगों पर तीखा व्यंग्य करती है वहीं नैतिक मूल्यों की रक्षा में संघर्षरत युवकों के एक वर्ग में आशा का संचार भी. आज देश की युवा पीढ़ी को उच्च नैतिकता से ओतप्रोत जुझारू व्यक्तित्व के विकास के लिए ऐसी ही मानसिक खुराक की आवश्यकता है. अरुण वर्मा के माध्यम से वैचारिक जागरण नैतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना एवं निष्काम कर्म हेतु युवावर्ग को प्रेरित करने के लिए रचनाकार को हार्दिक बधाई.

प्रदीप पंत की लंबी कहानी 'फ़लत्' मन के किसी अनछुए पहलू को स्पर्श कर गयी. क्या भौतिक सुखों में इतना जबर्दस्त आकर्षण होता है कि व्यक्ति इसके लिए परिवार, समाज तथा मातृ-भूमि के प्रति अपने कर्तव्यों को पूर्णतया नजरअंदाज कर सकता है? वार्द्धक्य तथा अकेलेपन से एस.पी. साहब की हुई स्थिति का वर्णन वाकई मर्मस्पर्शी है.

हां, माननीय द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' (खामोशी) जो कुछ कहना चाहते हैं वह तो ठीक है परंतु मास्टर घनानंद का एक अतिशय भावुक व्यक्ति के रूप में संप्रेषण कुछ जंचा नहीं. यहां यह प्रश्न खड़ा हो उठता है कि क्या जिंदगी के महत्वपूर्ण निर्णय मास्टर घनानंद की तरह भावनाओं के सैलाब में बहते हुए लिए जा सकते हैं. (प्रेम का यह पहलू क्या एक मानसिक विकृति नहीं?)

दूसरी ओर, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' का आदर्श पालने वाले भारतवर्ष में जहां सर्वत्र नारी की स्थिति में सुधार की लहरें चल रही हैं और नारी स्वयं भी जागरूक हो रही है, डा. माहेश्वर द्वारा नारी की दशा का अतिशयोक्तिपूर्ण भावोत्तेजक परंतु नैराश्य को जन्म देनेवाला वर्णन क्या उचित है? साथ ही डा. माहेश्वर ने जिस प्रकार मां दुर्गा का आह्वान किया है वह और कुछ नहीं वरन् नारी का क्रांति के लिए आह्वान है. यह ठीक नहीं, नारी, जिसकी समाज में पुरुष के साथ अनुपूरक भूमिका है, यदि क्रांति कर दे तो क्या सामाजिक ढांचा चरमरा नहीं जाएगा. और क्या इससे सुधार की अपेक्षा की जा सकती है? नहीं. सिर्फ और सिर्फ, परस्पर सहयोग तथा समाज में वृद्धि वैचारिक जागरण एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति से जुड़ने पर ही सुधार संभव है.

गिरिराज किशोर की 'निवृत्तमान', गोविंद मिश्र की 'कालखंड', सुरेश सेठ की 'विरासत' तथा विलास गुप्ते की 'देश नाम की चीज' ने भी बहुत प्रभावित किया. 'निवृत्तमान' में एक पिता के मानसिक अंतर्द्वंद्व का अच्छा वर्णन किया है. जहां 'काल-खंड' समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व बोध की अनबुझी लौ के उजागर करता है, वहीं 'विरासत' स्वार्थी बेटों को जिम्मेदार मां द्वारा दिया गया एक सुधारवादी सबक. 'देश नाम की चीज' ने मन को आक्रोश से भर दिया. देश सेवा के वादे करने वाले ऐश्वर्य प्रिय नेताओं के खोखलेपन के नंगे सच का बेबाक वर्णन है यह कहानी.

अन्य कहानियां भी अच्छी थीं. कवियत्री महादेवी वर्मा पर विशेष तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता सच्चिदानंद राउतराय की लेखनी से परिचित कराने के लिए सारिका विशेष प्रशंसा की पात्र है.

■ सर्वेश कुमार, बी.आई.टी., सिंदरी

सराहनीय प्रयास

सारिका का अक्तूबर का अंक सामने है. कहानियों का ऐसा विपुल भंडार शायद ही कहीं और मिलता हो. जैसा कि नाम से ही पूर्व आभास मिलता है. 'कथा-उत्सव अंक : एक' एक कहानी उत्सव या उत्स जगाती चलती है. 'एक युग का अंत' तो महोत्सव-सा दृश्य उपस्थित करती है. डा. नारायण दत्त पालीवाल को इसके लिए कोटि-कोटि धन्यवाद. बहुत पढ़ा-लिखा बचपन से अब तक लेकिन सारिका में लेखक की यह टिप्पणी विचार करने को मजबूर करती है. साहित्य में वैसे तो पीड़ा का सहज चित्रण बहुत से कवियों ने किया है. छायावादी कवियों की अपनी ही अलग विशेषता रही है पर पर महादेवी के असीम वेदना के संसार की ओर से आंखें मूंद कर हम किस ठांव शरण पायेंगे. निराला को उनकी जीवन शैली उठा ले गयी, पंत को ज्ञान ने नहीं छोड़ा, प्रसाद की आज स्मृतियां भर शेष हैं. इन सबके चलते महादेवी को खोकर हम किसका मुंह जोहें कि तनिक अपना परिचय बता दे, अपना इतिहास बता दे. कल्पना के अहसास को विरह की पुंजीभूत ज्वाला में संदेह करुणा की शान पर शान दे है कोई ऐसा कवि हृदय जो कह सके 'सब आंखों के आंसू उजले सबके सपनों में सत्य पला'.

द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी 'खामोशी' सोचने को मजबूर करती है. मनोरमा का चरित्र भारतीय नारी का होकर आज भी बेचारगी और जलालत झेलने के लिए बाध्य है क्योंकि पुरुष प्रधान समाज में रुसवाई की इससे बड़ी स्वार्थांधता क्या हो सकती है. लेखक को बधाई.

विरासत की सतो दी की पीड़ा मध्यमवर्गीय स्त्री की पीड़ा है. मकान का सपना और सुखद अनुभूति और उसकी प्राप्ति के रास्ते में स्वार्थी समाज में बिखरे अवरोधों का सफलता से सुरेश सेठ ने जिक्र किया है. कहानियों के एक-एक दीप से आलोकित यह सारिका अंक राम सुरेश की 'पांच कील और हथौड़ा' तथा विलास गुप्ते की 'देश नाम की चीज' से कुछ ज्यादह ही प्रकाशमान हो उठा है. आज के अध्यापक और उसके प्रकाशन के कार्यों से तमाम ऊलजलूल हरकतों का अंदाजा राम सुरेश बार-बार करवाते हैं, हां सूर्यबाला की कहानी 'होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन' कुछ ज्यादह खटकने वाली लगी.

समग्र रूप से सारिका का कोमल, संवेदन कुछ अधिक ही रुचिकर लगा. अगले उत्सव अंक का इंतजार है.

■ सतीश गुप्ता, भटनी

बधाई

कहानी, व्यंग्य, नाटक, उपन्यास और गद्य की अन्यान्य विधाओं के जरिए हिंदी साहित्य में श्रीवृद्धि करने वाले, अपने रामकथा पर आधारित उपन्यासों एवं सुदामा के जीवन चरित पर आधारित 'अभिज्ञान' उपन्यास के लिए विशेष उल्लेखनीय और इन दिनों महाभारत पर आधारित महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शृंखला के लेखन के लिए चर्चित श्री नरेंद्र कोहली को हिंदी भाषा और साहित्य की अनुकरणीय सेवाओं के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली ने वर्ष 1985-86 का ग्यारह हजार राशि का पुरस्कार देने का निर्णय लिया है. सारिका परिवार की ओर से पुरस्कारजयी रचनाकार को हार्दिक बधाई

महादेवी विशेषांक की कामना

'कथा उत्सव अंक : एक' वस्तुतः एक संग्रहणीय अंक है. 'खामोशी' (द्विजेंद्र नाथ मिश्र निर्गुण), 'कालखंड' (गोविंद मिश्र), 'विरासत' (सुरेश सेठ) अच्छी लगीं. रचनाकारों एवं आपको मेरा हार्दिक धन्यवाद प्रेषित है.

वेदना की अमर गायिका तथा आधुनिक युग की मीरा की प्रतिमूर्ति महादेवीजी के महाप्रयाण के दुःखद अवसर पर आपने विशेष लेख प्रकाशित कर हमें उपकृत किया. आभार.

हिंदी भाषा साहित्य को गरिमा प्रदान करनेवाली प्रज्ञा की प्रज्वलित दीपशिखा तथा आधुनिक युग की मीरा की प्रतिमूर्ति महादेवी वर्मा के निधन से छायावाद युग का दुःखद समापन हो गया है—एक युग का अंत हो गया. कल तक जो यथार्थ था आज पुरावृत्त बन गया. इसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं कि छायावाद युग में महादेवीजी के व्यक्तिगत सुख-दुख आत्माभिव्यक्ति के लिए आकुल होकर प्रस्फुटित हुए. इस प्रकार उनका व्यक्तिगत दुःख लोकमत होकर करुण रूप में परिणत हो गया.

वेदना के नैवेद्य से कविता के मंदिर में विराट उपासिका महादेवीजी की विरह-वेदना उन्हें पद्य प्रणेताओं के उस शिखर पर आरूढ़ करने के लिए सदैव सक्षम है जिनके यशः शरीर में जरा-मरण का तनिक भय नहीं होता. उनकी कविता में दर्शन, चित्रकला, संगीत, रस, चमत्कार इत्यादि सभी स्पृहणीय तत्वों का सन्निवेश है. निःसंदेह वे छायावादी काव्य में वेदना भाव की साम्राज्ञी हैं और उनका यह भावलोक भी आलिंगित करके सार्वजनिक बन गया है.

सरलता, सहजता, सहिष्णुता, संवेदनशीलता, त्याग एवं तपश्चर्या की विलक्षण पर्याय महादेवी को मेरा विनम्र प्रणाम.

निकट भविष्य में सारिका के महादेवी वर्मा विशेषांक की कामना करता हूं. निराश नहीं करेंगे. ऐसी कामना करता हूं.

■ अमरेंद्र किशोर, सासाराम, (बिहार)

आलोचक की भ्रमित दृष्टि

नदी किनारे मछुआरे मछलियों की टोकरी को तो ढके रखते हैं, परंतु केकड़ों की टोकरी को खुला छोड़ देते हैं, क्योंकि केकड़े टोकरी के बाहर आ ही नहीं पाते. वे एक दूसरे की टांगें खिंचते हुए बाहर निकलने की कोशिश में लगे केकड़ों को गिराते रहते हैं. हिंदी की गोटियां तोड़ने वालों का भी यही हाल है. एक पुस्तक प्रकाशित हुई नहीं कि आलोचक लगे भिनभिनाने. आलोचना या समीक्षा का मतलब निंदा तो नहीं होता, फिर हिंदी वालों का आचरण ऐसा क्यों है?

■ कु. किरण वर्मा, धुले

श्रद्धा-स्मरण

स्मृति-खंडों में बिखरे हुए डॉ. लाल

कन्हैया लाल नंदन

डॉ. लाल अपने जीवन काल में भी अनूठे रहे, स्मृति–शेष हो जाने पर भी अनूठे हैं. बिल्कुल अनूठा व्यक्तित्व था उनका. तीस बत्तीस साल से लगातार उन्हें जानने का सौभाग्य मिला लेकिन जब लगता कि उन्हें मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं तभी उनका कोई विचार, कोई व्यवहार उनका एक नया रूप मेरे सामने रख देता और मैं अपने आप में ठगा यह अनुभव करने लगता कि जैसे वे कह रहे हों, 'सामने जो देखते हो तुम, मैं नहीं हूं और कोई है.'

किसी बने बनाये सांचे में फिट होकर बैठना डॉ. लाल को कभी रास नहीं आया. छिटक कर अलग खड़े होने की उनकी अदा कभी कभी बड़ी अजीब स्थितियां भी पैदा कर देती थी. मैं उसका भी शिकार हो चुका हूं और इस प्रसंग को पहले भी कहीं लिख चुका हूं. हुआ यह कि मैंने एक सुबह टेलीफोन की घंटी बजायी. उन दिनों वे अपना नाटक 'व्यक्तिगत' स्वयं करने जा रहे थे. मैंने सोचा बधाई दूं सो फोन मिलाया. उधर से टेलीफोन उठते ही आवाज आयी, "कौन उल्लू का पट्ठा है? बोलता क्यों नहीं?"

मैंने कहा, "डॉ. साहब, आपके स्वागत सत्कार के इस लहजे को नमस्कार करता हूं. आपको बधाई देना चाहता था लेकिन आपने तो सुबह सुबह विशेषण बांटने शुरू कर दिये...."

बोले, "भाई जब भी फोन करना तो फौरन बोलना शुरू कर देना. कोई है जो सुबह सुबह रोज फोन करता है और जब मैं बोलता हूं तो फौरन काट देता है. इसलिए यह शब्दावली इस्तेमाल करनी पड़ी.... माफ करना इस बदतमीजी को."

ऐसी दिलचस्प स्थितियों से डॉ. लाल के साथ किसी का भी पाला पड़ सकता था. उनका ऐसा व्यवहार चौंकाता भी था लेकिन आपको अपनी निजी दृष्टि के निर्धारण का उत्स भी देता था. वे वैसे भी थे खुले आम थे. गांव से चलकर लगभग दो तिहाई से ज्यादा जिंदगी नगर और फिर महानगर में बिता चुकने के बाद भी उनके अंदर का गंवई आदमी कभी दब कर नहीं रह पाया. अपने गांव के स्वाभिमान को नागर मुलम्मे से ढका जाता देखने की कल्पना मात्र से भड़क उठता था. वे कहते थे, "नंदन, गांव का आदमी भला किसी व्याकरण में बंधता है? वह तो कबीरदास है. शास्त्र कबीरदास के पीछे चलता है." और ऐसा कहते हुए डॉ. लाल के चेहरे पर एक कांति होती थी.

वे अपने को 'मजदूर लेखक' कहते थे. कई साल तक वे नियमानुसार साहित्य अकादमी की लाइब्रेरी के एक कोने में आकर बैठते थे. वहीं लिखते थे... बिल्कुल उसी तरह जैसे कोई व्यक्ति अपने दफ्तर या अपनी फैक्टरी में काम करने जाता है. लिखने की उनकी प्रक्रिया में कभी कहीं कोई नोट्स बनाने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती थी. कहते थे, "प्रकृति पुरुष हूं, सीधे दिल पर नोट्स लेता हूं और दिल से ही लिखता हूं. बहुत गंवारू किस्म का लेखक हूं, बिल्कुल किसान!" एक बार उन्होंने दिल पर सीधे लिखने को फिल्मी बिंब के माध्यम से मुझे समझाया भी था, "एक होता है कैमरा और एक होता है साउंड रेकार्डर. दोनों को मैंने भीतर फिट किया हुआ है. कोई भी सच्चाई मेरे भीतर निरंतर चलती रहती है, रिकार्ड होती रहती है आडियो भी, विजुअल भी."

लेकिन इस आडियो-विजुअल के निरंतर चलते रहने को अगर कोई यह समझने लगे कि डॉ. लाल हर घटना को अंकित कर रहे हैं तो वे तड़प कर कहते, "क्षमा करें, मेरा रचनाकार हल्के किस्म की प्रक्रिया से नहीं गुजरता कि ट्रेन से जा रहे हैं, बस से उतर रहे हैं और कैमरा चालू किये हैं. मैं अपना कथानक अपने जीवन की किसी बड़ी घटना से उठाता हूं. जिस घटना के तारतम्य से मैं परिचित नहीं हूं, वह मेरे लिए लेखन का विषय नहीं है. वह किसी अखबार की खबर हो सकती है, रचना के लिए महत्वपूर्ण नहीं होती. रचनाकार को अपना कैनवास हमेशा बड़ा रखना चाहिए."

डॉ. लाल का यह रचनाकार जब अपने घरेलू जीवन में उतरता तो घर के दायित्व को उससे भी बड़ा करके जीता था. लिख रहे हैं और लिखने में पूरी तरह डूबे हुए हैं तभी पत्नी की आवाज आती है, "मैं नहा रही हूं, जरा बटलोई उतार कर रख दीजिए." तो डॉ. लाल उसी निमग्न भाव से बटलोई भी उतार आते

और फिर लिखने लगते. 1970 में जब से नौकरी छोड़ी थी, बल्कि कहना चाहिए कि नौकरी से मुक्ति ली थी, नौकरी में और उनमें कभी सामंजस्य नहीं बना तब से वे अपने परिवार और रचनाकार रूप को एक दूसरे से घुला-मिला कर ही जीते आये थे और उनमें कहीं कोई विरोध का अनुभव नहीं कर पाये. "इनमें विरोध कहां है" वे कहते, "मैं अपने सामाजिक दाय से च्युत हुआ अनुभव करूंगा अगर मेरा परिवार मेरे रचनाकार का बोझ ढोने लगेगा. जो रचनाकार अपने परिवार के दाय को ठीक नहीं निभा पायेगा वह रचना में सामाजिक न्याय की बात क्या कर पायेगा."... और जिन्होंने डॉ. लाल को अपने छोटे बेटे के साथ जो मस्तिष्क के विकास की कमी का शिकार होकर जीने के लिए मजबूर है, देखा है, वे इस बात की गवाही देंगे कि वे उसके हर व्यवहार में अपने धैर्य और पितृदाय की पराकाष्ठा को कसौटी पर रख कर चलते आये हैं. उसे अपने साथ ले जाना, लोगों के बीच उसे पूरी गरिमा के साथ बैठाना, उसके होने की पूरी गरिमा देना यह डॉ. लाल के जीवन का ऐसा कोना है, जहां उन्हें पारिवारिक दाय निभाने के सौ में दो सौ नंबर देने होते हैं.

एक बार मैंने उनके जीवन के रागात्मक कोने को छेड़ते हुए पूछा था, 'आपका कहना है कि आपने कोई एक प्रेम नहीं किया, जीवन के हर चरण में प्रेम किया है. इससे आपको पारिवारिक उलझनों का सामना नहीं करना पड़ा?" उनका जवाब सुनिए, " मैं प्रेम को एक जिम्मेवार चीज मानता हूं. प्रेम मनुष्य को स्वतंत्र करता है, बांधता नहीं, असीम से जोड़ता है. जो लोग यह मानते हैं कि प्रेम किया तो परिवार, और उसमें सबसे पहले पत्नी, बाधक है, वे नितांत गैर जिम्मेवार लोग हैं. ऐसे व्यक्ति संतुलनहीन होते हैं, अशांत रहते हैं. जो संतुलन खोये हैं, वह पत्नी से क्या संतुलन बिठायेगा? मैंने परिवार भी संभाला, पत्नी को संभालकर रखा और स्वास्थ्य भी ठीक रखा. यानी कहिए कि स्वस्थ प्रेम किया."

डॉ. लाल के ये उन्मुक्त विचार उनके न रहने पर मेरे जेहन पर बार-बार दस्तक दे रहे हैं.

वे कहा करते थे, "नंदन भाई, हम अनगिनत ग्रंथियों का पुलिंदा हैं. उसी पुलिंदे को लिए टहल रहे हैं लेकिन अंदर कोई प्रोफेट भी बैठा रहता है. एकाएक मौका पाते ही वह चढ़ बैठता है हमारे ऊपर."

वे ऐसे प्रोफेट को बुरी तरह नकारने में भी लगे रहते थे. यहां तक कहते थे कि मनुष्य ही सब कुछ है, मनुष्य का यही जीवन सब कुछ है और जिसका मन इससे नहीं भरता, उससे कह दिया गया है कि इससे परे भी एक सत्य है जिसका पता हमें नहीं है. उसका उन्होंने कोई नाम नहीं दिया. उनसे पूछो कि फिर यह ईश्वर नाम कहां से आ गया तो उनका दो टूक जवाब था, "बेवकूफों ने उसका नाम ईश्वर रख दिया. उपनिषद् तक ईश्वर-फीश्वर कहीं कुछ नहीं है. बाद में जो उतार शुरू हुआ तो हमें यहां तक पहुंचा गया कि हमारा आत्मविश्वास हमसे छिन गया. हम अपनी मिट्टी से कट गये."

जिस दिन 'अब्दुल्ला दीवाना' मंच पर देख कर बाहर आया तो डॉ. लाल ने उस मंच प्रस्तुति के बारे में बात करने के लिए सुबह का आमंत्रण दिया. सुबह जब भेंट हुई तो बोले, "आज तुम्हें एक मन की बात बताए देना चाहता हूं. बताने में मुझे अब कोई शर्म नहीं है कि 'अब्दुल्ला' तक मैं बुद्धि से लिख रहा था, बुद्धि के प्रयोग हावी थे जिसके कारण मैं लाट साहब बनकर तीस मार खां की तरह लिख रहा था. यहां आकर मुझे पता चला कि क्या कर रहे हो डॉ. लाल!... अरे खुद लीला करो, लीला होने दो. तर्क और लाजिक कुछ मत रखो. प्रयोगशीलता केवल ट्रेनिंग भर के लिए होनी चाहिए."

बुद्धि के ऐसे नकार के साथ उन्होंने 'व्यक्तिगत' लिखा था. उसे मंच पर लेकर आये थे. स्वयं अभिनय किया था, परिवार के अन्य सदस्यों को उस लीला नाटक का हिस्सा बनाया था. 'अटैची नाटक' कहते थे उसे. पूरा नाटक एक अटैची में बंद. अटैची ली, चार आदमी टैक्सी में बैठे और नाटक कर आये. डेढ़ दो हजार की रकम खर्च करके किया जा सकने वाला नाटक.

रंगकर्म से इस गहराई तक जुड़कर चलने वाले नाट्यकार थे डॉ. लाल कि उसकी हर चुनौती का हल खोजकर उसे अटैची में बंद करके रख देना चाहते थे ताकि हर कोई, जो नाटक से जुड़ा हुआ अनुभव करता हो, अटैची उठाये और नाटक कर आये.

नाट्यकर्म के प्रति उनके ये गहरे सरोकार अपनी जगह थे तो नाट्य जगत में व्याप्त कुछ बेहूदा हरकतों के प्रति विक्षोभ अपनी जगह. स्वयं नाटक करने के संकल्प के पीछे उनका यही विक्षोभ था, "हमारे यहां का रंग समाज बड़ा दरिद्र है. दरिद्र समाज ही इस तरह की लिबर्टी लेता है कि आपकी चीज को काट दे, जोड़ दे, बिना बताये कर ले. यह सब दारिद्र्य है. उस दारिद्र्य से मुक्ति पाने के लिए किस-किस से लड़ता फिरूं? इसलिए उस तरह का युद्ध न करके यह एक दूसरे तरह का युद्ध करने पर उतरा हूं कि मैं स्वयं करूंगा और जो बात दर्शक से कहना चाह रहा था, वह सीधे कहूंगा! सीधे जुडूंगा."

एक दूसरे से सीधे जुड़ना उनके लिए अध्यात्म था जिसे वे ईश्वर वाले अध्यात्म से अलग मानते थे. उनकी यह मान्यता अगर किसी को अहंमन्यता की हदें छूती दिखायी दे तो दे, यह उनकी समस्या नहीं, देखने वाले की होती थी. वे तो डंके की चोट पर कहते थे, "मैं तो अभूतपूर्व हूं और अभूतपूर्व रहूंगा."

उनके स्वभाव की आंतरिक बनावट और उनके विचारों के आइने में अब स्मृति शेष डॉ. लाल को देखता हूं तो पाता हूं कि सचमुच वे अभूतपूर्व रहेंगे. □
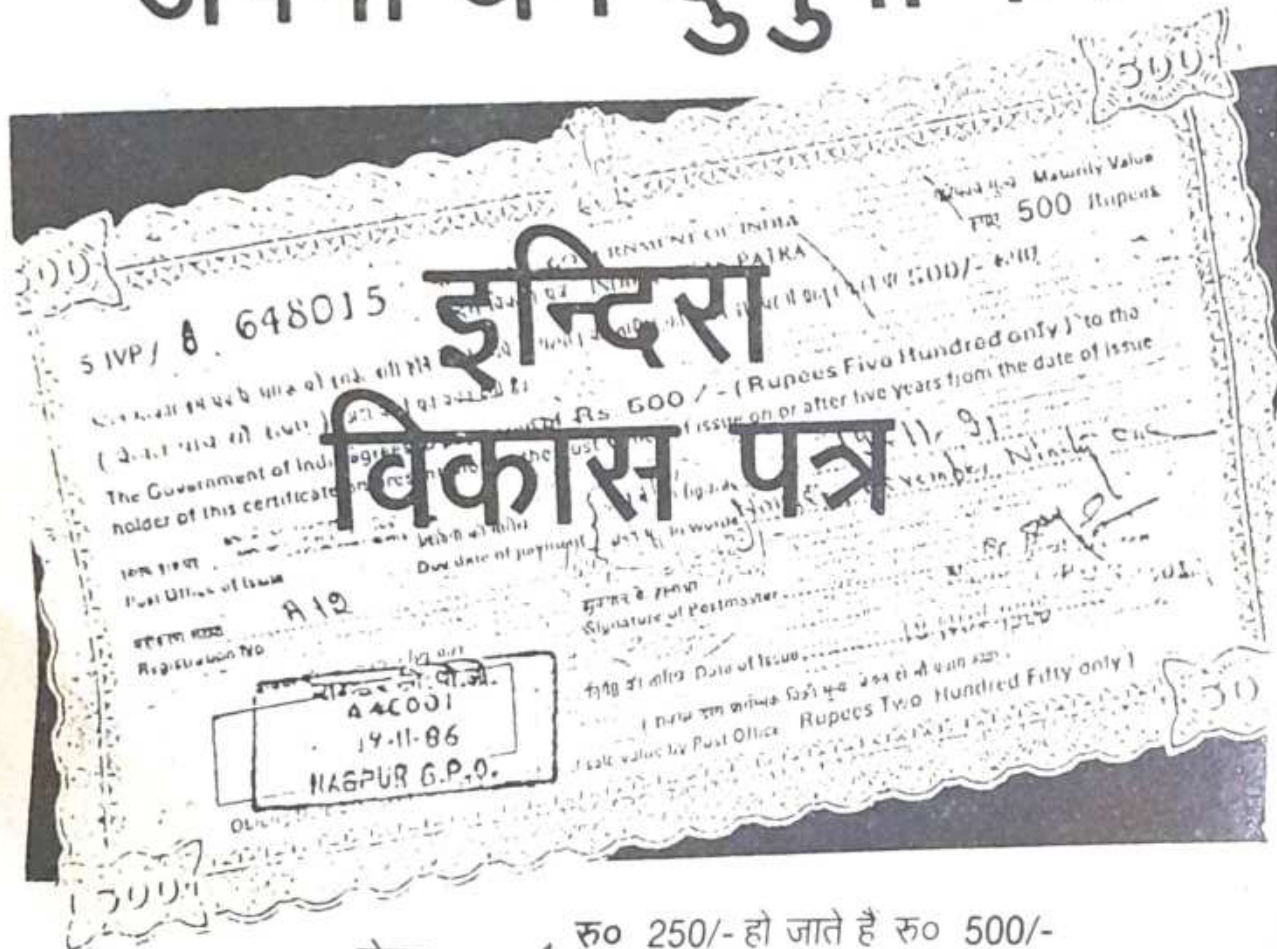
'शरलॉक होम्स

राजेंद्र वोहरा

संसार के साहित्य में ऐसा विरला ही हुआ है कि साहित्य का कोई पात्र अपने सर्जक से अधिक प्रसिद्धि पर जाये. ऐसे पात्रों में एक है विश्वविख्यात जासूस शरलॉक होम्स जो ब्रिटानी लेखक सर आर्थर कानन डायल (1859-1930) अपने कुशल सृष्टा को पीछे छोड़ गया है. पीढ़ी-दर पीढ़ी जासूसी साहित्य में रुचि रखने वाले (वे होम्स के फैन अवश्य हैं) होम्स के कारनामों को बार-बार पढ़ते है और अघाते नहीं. शरलॉक होम्स पर कई फिल्में, नाटक और पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं. हर होम्स-सभा में पेपर भी पढ़े जाते हैं और मजे की बात यह है कि इन फिल्मों तथा नाटकों की पटकथा/कथा सदा कानन डायल की कहानियों पर आधारित नहीं होती. दूसरे अर्थों में कानन डायल के बिना भी होम्स का स्वतंत्र अस्तित्व है.

कानन डायल ने होम्स की 56 कहानियों तथा चार उपन्यास के अतिरिक्त भी ऐतिहासिक उपन्यास, विज्ञान-गल्प, कविताएं, जीवनी और संस्मरण (1924) 'आध्यात्मवाद का इतिहास' (दो भाग) (1926-27) आदि बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं. किंतु कानन डायल को उनके बाकी साहित्य के लिए लगभग भुलाया जा चुका है.

होम्स की लोकप्रियता का यह आलम है कि लंदन में उसके नाम पर एक म्यूजियम की स्थापना की गयी है. इंग्लैंड तथा कई अन्य देशों में शरलॉक होम्स क्लबें तथा संघ कायम हो चुके हैं तथा हो रहे हैं. कानन डायल द्वारा अपनी कहानियों में दिया गया पता-221 बी बेकर स्ट्रीट-काल्पनिक है फिर भी इस पते पर हर साल संसार-भर से हजारों की तादाद में पत्र आते हैं तथा इंग्लैंड आने वाले पर्यटक (जो होम्स के फैन होते हैं) लंदन में 221 बी बेकर-स्ट्रीट को तीर्थ मान-मानकर ढूंढ़ते फिरते हैं. इससे होम्स की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है.

कानन डायल ने 1887 ई. में अपनी एक कहानी 'ए स्टडी इन स्कारलेट' में इस पात्र को जन्म दिया. फिर तो शरलॉक होम्स कानन डायल की 56 कहानियों तथा चार उपन्यासों का हीरो बना. कहा जाता है कि लेखक ने ईडनबर्ग के विख्यात सर्जन तथा अपने विद्यार्थी काल के शिक्षक जोजफ बैल को माडल रखकर शरलॉक की सर्जना की और उसमें जोजुफ बैल का व्यवहार-वैचित्र्य तथा सनकों का समावेश किया. यह भी कहा जाता है कि होम्स का नाम कानन डायल ने अपने प्रिय अमरीकी लेखक आलीवार वैनहेल होम्स (1809-1894) के नाम से लिया था. होम्स को लेखक 1893 में "मार" डाला था किंतु पाठकों के अनुरोध से उसे फिर "जीवित" करना पड़ा.

शरलॉक होम्स खिलाड़ी की हैल्मेट आकृति की टोपी एवं लाबादा—ओवरकोट लबों में पाईप दबाये अपनी विशेष आकृति हमारी आंखों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं. होम्स अपनी बुद्धि-कौशल, पर्यवेक्षण-शक्ति, विश्लेषण-परक दिमाग के अतिरिक्त जिन उपकरणों का प्रयोग करते हैं उनमें प्रमुख है लैंस तथा चिमटी.

शरलॉक होम्स के सदा संग साथी, योग्य, अनुभवी किंतु सोचने में सुस्त औषधि डाक्टर वाटसन ने अपने दोस्त के शानदार कारनामों को बड़ी लगन से कलमबद्ध किया है. इनमें कुछ इस प्रकार हैं : 'बोहेमिया में स्कैंडल' कहानी में होम्स 'विश्व की सबसे पूर्ण विवेचन पर्यवेक्षण मशीन' के रूप में अवतरित होता है. वह आम आदमी की भावनाओं से दूर दिखाया गया है किंतु इस कहानी में एक महिला इरीन एडलर से होम्स सम्मोहित हो जाता है और वह होम्स को मात दे देती है. बाद की कहानियों में इस महिला पात्र के दर्शन नहीं होते.

'यूनानी दुभाषिया' कहानी में होम्स का भाई 'माईक्रोफट' पहली और आखिरी बार नजर आता है. इस कहानी में दोनों भाई मिलते हैं और सड़क पर जा रहे दो आदमियों के बारे में अपनी-अपनी पर्यवेक्षण-शक्ति का प्रदर्शन करते हैं जिसे पाठकों ने बहुत पसंद किया है.

'चार्ल्स आगस्टस मिलवरटोन' कहानी में होम्स अच्छे उद्देश्य के लिए देश का कानून तोड़ने से भी नहीं हिचकचाते. वह वाटसन को बड़े आराम से बताता है कि वह एक डाक्टर के घर डाका डालने जा रहा है. जब वे दोनों नकाब आदि पहनकर डाक्टर के घर में घुसते हैं तो अपनी आंखों के सामने कत्ल होते देखते हैं और स्वयं अपराध करने से बच जाते हैं.

होम्स की कहानियां अपनी घटनाओं, पात्रों, भाषा की लाक्षिणकता और उसके तथा डा. वाटसन के संवादों के लिए बार-बार पढ़ी जा सकती हैं और पढ़ी जाती हैं हालांकि समस्या/रहस्य का समाधान पाठक को पहली बार पढ़ने पर ही मालूम हो चुका होता है.

शरलॉक होम्स की शताब्दि पर

हीरे की चोरी

आर्थर कानन डॉयल

"यह देखिए सर, मेरी पत्नी को वत्तख के पेट से क्या मिला है." उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया. उसकी हथेली पर एक हीरा चमचमा रहा था. होम्स उठ बैठा और सीटी बजाने लगा.

क्रिसमस के दूसरे दिन मैं शरलॉक होम्स को शुभकामनाएं देने के इरादे से उनके मकान 221-बी बेकर स्ट्रीट पहुंचा. देखा, होम्स पीले रंग का गाऊन पहने सोफे पर पसरे पड़े हैं. उनके दायीं तरफ एक रैक रखा है जिसमें ताजा समाचारपत्रों का अंबार पड़ा है. कमरे में लकड़ी की एक कुर्सी भी पड़ी है जिस पर एक पुराना हैट टंगा है. कमरे में एक लेंस तथा एक चिमटी भी फर्श पर पड़ी है. "आप तो बहुत व्यस्त लगते हैं. शायद मैंने आपके काम में दखल दिया है." मैंने कहा.

होम्स-"कतई नहीं. मैं तो तुम जैसे मित्र के आने पर खुश हूं जिसके साथ मैं अपनी खोजबीन के नतीजों के बारे में बात कर सकूंगा." उसने पुराने हैट की ओर अपने अंगूठे से इशारा किया और कहा, "बात तो बिल्कुल मामूली सी लगती है पर इससे संबंद्ध कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो दिलचस्प और शिक्षाप्रद साबित हो सकते हैं." मैंने जलती आग के पास पड़ी कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "देखता हूं इस साधारण-सी चीज का संबंध किसी भयानक कहानी से है; यह एक ऐसा सुराग़ है जो किसी रहस्य और जुर्म की ओर ले जा सकता है."

"न-न-कोई जुर्म-वुर्म नहीं," होम्स ने हंसते हुए कहा, "यह इन बेतुके हादसों में से एक है जो इन कुछ वर्गमील क्षेत्र में से लाखों लोगों से आये दिन पेश आते रहते हैं." कई अजीब और असाधारण घटनाएं होती रहती हैं, जरूरी नहीं कि सभी अपराधमूलक हों."

"यह तो है." मैंने टिप्पणी की, "गत छह मामलों में से, जिनका मैंने लेखा-जोखा लिखा है, तीन अपराधरहित थे."

"यही तो! मेरा विचार है कि यह साधारण-सा मामला इसी कोटि में आयेगा. तुम वर्दीधारी दरबान पीटरसन को जानते हो न,"

"जानता हूं"

"इस ट्राफी का हक उसी को जाता है."

"क्या यह हैट उसी का है?"

"नहीं, यह उसे मिला था, इसके मालिक का पता नहीं है." मेरा आपसे आग्रह है कि इसे एक पुराना हैट न समझकर बौद्धिक समस्या मानो.

"पहली बात, कि यह यहां पहुंचा कैसे. बड़े दिन की सुबह को यह एक मोटी सफेद बत्तख के साथ यहां पहुंचा. वह बत्तख इस समय पीटरसन के घर आग पर भुनी जा रही है. पूरा किस्सा यूं है कि पीटरसन तफरीह मनाकर घर लौट रहा था कि गैस की रौशनी में उसने एक लंबा सा आदमी देखा जो कंधे पर बत्तख उठाये जा रहा था.ग्रूजी स्ट्रीट के मोड़ पर पहुंचते ही बदमाशों के गिरोह ने उस पर हमला बोल दिया, उस का हैट उड़कर दूर जा गिरा, पीटरसन उसकी रक्षा के लिए आगे बढ़ा तो वह बत्तख को नीचे फेंककर नौ दो ग्यारह हो गया. बदमाश भी सिर पर पांव रखकर भाग गये. ऐसे में मैदान पीटरसन के हाथ रहा और उसे 'विजय के उपलक्ष्य में' यह पुराना हैट और क्रिसमस बत्तख हाथ लगी.

"तो क्या उसने बत्तख उसके मालिक को लौटा दी?" मैंने पूछा.

"यार यही तो समस्या है, यह सच है कि बत्तख के पांव में एक छोटा-सा कार्ड बंधा हुआ था जिस पर 'श्रीमती हेनरी बेकर के लिए' लिखा था. और यह भी सच है कि हैट के अस्तर पर 'एच.बी.' कढ़ा है. लेकिन दिक्कत यह है कि हमारे शहर में सैकड़ों हेनरी बेकर रहते हैं, इस हालत में खोयी हुई संपत्ति किसे लौटायी जाये."

"तो फिर पीटरसन ने क्या किया?"

"वह हैट और बत्तख मेरे पास ले आया." बत्तख को आज सवेरे तक तो रखा फिर उसे उसकी 'आखिरी मंजिल' तक पहुंचा दिया गया. उस अजनबी का हैट अभी तक मेरे पास रखा है."

"क्या उसने विज्ञापन नहीं दिया?"

"नहीं."

"क्या उसकी पहचान के लिए आपको कोई सुराग नहीं मिला."

"सुराग तो उसके हैट से ही मिल सकते हैं."

"उसके हैट से?"

"बिल्कुल"

"आप तो मजाक कर रहे हैं. आप इस सड़े गले हैट से किस नतीजे पर पहुंच सकते हैं?"

"यह रहा मेरा लैंस', तुम तो मेरे तरीकों से वाकिफ हो. क्या तुम इस हैट से उसके व्यक्तित्व का अंदाजा लगा सकते हो?"

मैंने पुराना हैट अपने हाथों में ले लिया और उसे उलट-पुलट कर देखा. यह एक मामूली काला गोल हैट था. उसका अस्तर लाल रेशम का था जो काफी हद तक बदरंग हो चुका था, उस पर बनाने वाले का नाम नहीं था. लेकिन जैसा कि होम्स ने कहा था कि 'एच.बी.' लिखा था. उस पर काफी धूल जमी थी और बदरंग जगहों को स्याही लगाकर छिपाने की कोशिश की गयी थी.

"मुझे तो कुछ खास दिखाई नहीं दिया." होम्स को हैट लौटाते हुए मैंने कहा.

"वाटसन, तुम इसमें सबकुछ देख सकते हो. जो कुछ तुमने देखा है, उसका विश्लेषण नहीं किया. असल में तुम नतीजे निकालने से डरते हो."

"आपने क्या नतीजा निकाला है."

होम्स ने हैट को उठा लिया और उसने खास अंदाज में गौर से उसका निरीक्षण किया और बोला, "कुछ निष्कर्ष तो काफी स्पष्ट हैं और कुछ ऐसे हैं जिनके सच होने की काफी संभावना है. यह आदमी बड़ा समझदार है. पिछले तीन साल तक यह काफी खुशहाल था हालांकि अब उसके बुरे दिन आ गये हैं. भाग्य का साथ होने पर उस पर कोई बुरा प्रभाव—शायद शराब का पड़ा है और इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसकी पत्नी अब उससे प्यार नहीं करती."

"मेरे प्यारे होम्स!"

"किंतु उसने काफी हद तक आत्म-सम्मान को संभाले रखा है, उसका जीवन स्थिर है और उम्र का वह अधेड़ है. इन स्पष्ट तथ्यों का अनुमान मैंने उसके हैट से ही लगाया है. ऐन मुमकिन है कि इस आदमी के घर गैस का कनेक्शन अभी न लगा हो."

"होम्स, तुम सचमुच मजाक करने पर तुले हो."

"यह कैसे संभव है कि अपने सब निष्कर्ष तुम्हें बता देने पर भी तुम यह नहीं समझ पा रहे कि इन तक कैसे पहुंचा गया."

"मुझे यह मानने में कतई संकोच नहीं कि मैं नितांत मूर्ख हूं. किंतु मैं सच कह रहा हूं कि तुम्हारी बातें मेरे पल्ले नहीं पड़ीं. उदाहरण के तौर पर, आपने यह कैसे अनुमान लगाया कि यह आदमी अक्लमंद है."

जवाब देने के लिए होम्स ने हैट अपने सिर पर रख लिया वह उसके माथे को छूता हुआ नाक तक आ गया, "हैट का साइज देखा?" उसने कहा, "जिस आदमी का इतना बड़ा सिर है, उसमें भेजा भी तो बड़ा होगा."

"अच्छा, तो उसके बुरे दिन आने कि बात."

"यह हैट तीन वर्ष पुराना है पर है उम्दा किस्म का, आज से तीन साल पहले यदि कोई मनुष्य इतना कीमती हैट खरीद सकता था और उसके बाद नया नहीं खरीद पाता तो अवश्य उसकी हालत पतली हो गयी होगी. उसने हैट पर से कुछ धब्बे छिपाने की कोशिश भी की है इससे स्पष्ट है कि उसमें आत्म-सम्मान अभी बाकी है."

"आपकी दलीलों पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं."

"अगली बात कि आदमी अधेड़ उम्र का है उसके बाल भूरे हैं और तरीके से काटे हुए थे, इनका हैट के अस्तर को गौर से देखने से पता चला है. लेन्स से बालों के छोटे-छोटे टुकड़े जो नाई की कैंची से बारीक तराशे हुए थे, नजर आये."

"परंतु आप कह रहे थे कि उसकी पत्नी अब उससे मोहब्बत नहीं करती."

"इस हैट को हफ्तों ब्रश नहीं किया गया है."

"किंतु हो सकता है वह आदमी कुंवारा ही हो."

"न, वह अपनी बीवी को मनाने के लिए बत्तख का उपहार ला रहा था. परिंदे के पांव में बंधा कार्ड याद है."

"आपके पास हर सवाल का जवाब है. लेकिन यह समझ नहीं आया कि आपने कैसे अनुमान लगाया कि उसके घर गैस नहीं लगी है?"

"चिकनाई के एक-दो धब्बे संयोगवश लग सकते हैं लेकिन जब मैंने पांच धब्बे देखे तो मैंने सोचा कि इस आदमी का जलती टैलो से वास्ता पड़ता रहा होगा. रात को शायद एक हाथ में हैट थामे और दूसरे हाथ में मोमबत्ती लिए वह ऊपरी मंजिल जाता होगा. वह टैलो के दाग गैस की रोशनी से नहीं हो सकते."

'हां, यह बड़ी बुद्धिकौशल की बात है. पर जैसा आपने कहा था कि कोई अपराध नहीं किया गया और बत्तख के गुम हो जाने के अलावा कोई नुकसान नहीं हुआ, तो ये सारी मेहनत मुझे तो बेकार लगती है."

शरलॉक होम्स कुछ कहने ही जा रहा था कि सहसा जोर से दरवाजा खुला और दरबान पीटरसन अंदर दाखिल हुआ. उसके होश-हवास उड़े दीख रहे थे.

"मि. होम्स. बत्तख... सर...बत्तख..." वह रुक-रुककर बोला.

"ओह क्या हुआ उसका? क्या वह जिंदा होकर खिड़की से उड़ गयी?"

"यह देखिये, सर मेरी पत्नी को बत्तख के पेट से क्या मिला है?" उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया. उसकी हथेली पर एक हीरा चमचमा रहा था. होम्स उठ बैठा और सीटी बजाने लगा.

"खुदा कसम, पीटरसन, यह तो वास्तव में खजाना है, तुम्हें शायद

मालूम नही, तुम्हारे हाथ में क्या है!''

''हीरा, सर, एक कीमती पत्थर.''

''यह एक कीमती पत्थर से बढ़कर है. यह वही बहुमूल्य हीरा है.''

''काउंटेस मोरकार का नीला हीरा तो नहीं?'' मैंने बात काटते हुए पूछा.

''बिल्कुल वही. मैं प्रतिदिन 'टाइमस' मे इश्तहार पढ़ता रहा हूं. मुझे हीरे के आकार-विस्तार के बारे में ज्ञान होना-चाहिए था. जो एक हजार पौंड इनाम रखा गया है, वह इसके मूल्य के बीसवें भाग से भी कम है.''

''एक हजार पौंड! हे प्रभु!'' पीटरसन एक कुर्सी में धंस गया और हम दोनों को घूरने लगा.

''हां इतना ही इनाम है और मुझे लगता है कि भावनात्मक कारणों से इसे पाने के लिए काउंटेस अपना पूरा धन लुटा सकती है.''

''अगर मैं भूल नहीं कर रहा तो यह कास्मोपोलिटन होटल में खो गया था.'' मैंने कहा.

''बिल्कुल ठीक. बाईस दिसंबर—आज से ठीक पांच दिन पहले—को एक नलसाज जान हार्नर पर लेडी की हीरे की डिबिया की चोरी का इलजाम लगाया गया था. उसके विरुद्ध गवाही इतनी पक्की है कि मामला अदालत में चला गया है. मेरा विचार है कि सारा विवरण अखबार में छप गया है.'' अखबारों के ढेर में से तारीख देखकर एक अखबार उसने निकाला और इस मामले के बारे में प्रकाशित पूरा विवरण पढ़ दिया. फिर वाटसन और पीटरसन की ओर निगाह फेंकते हुए बोला, ''हूं, यह तो रहा पुलिस अदालत के बारे में.'' समाचारपत्र को एक ओर फेंकते हुए सोचते हुए आगे कहा, ''हमारे लिए तो ये जानना जरूरी है कि हीरा चोरी चले जाने के बाद बत्तख के पेट तक कैसे पहुंचा. हीरा फटे-पुराने हैट के साथ आया. और हैट के मालिक हेनरी बेकर के संग बत्तख आयी. हमें इस शरीफ आदमी को ढूंढ निकालना होगा. और इसके लिए सबसे सरल उपाय है—सभी सांध्य अखबारों में विज्ञापन.''

''आप क्या लिखोगे इस इश्तहार में!'' मैंने पूछा.

''मुझे एक पेंसिल और कागज दो.'' कागज़ पर लिख चुकने के बाद होम्स ने ऊंची में पढ़ा : 'गूज स्ट्रीट के मोड़ पर एक काला हैट और एक बत्तख मिली है. मि. हेनरी बेकर आज शाम 6-30 बजे तक 221-बी बेकर स्ट्रीट से आकर ले सकते हैं.' ''ये संक्षिप्त और स्पष्ट है.'' मैंने बोला, ''ठीक है. पर क्या यह बेकर की नजरों से गुजरेगा?''

होम्स ने जवाब दिया, ''हां, वह अखबारों को जरूर देखेगा. अब उसकी हालत खस्ता है और हानि भी कम नहीं हुई उसकी. पीटरसन की यूनिफार्म से डरकर वह भाग खड़ा हुआ था किंतु अब पछता रहा होगा कि बत्तख को क्यों फेंक आया. और फिर उसकी जान-पहचान वाले भी विज्ञापन पढ़कर उसे बता सकते हैं. पीटरसन, तुम विज्ञापन एजेंसी में जाकर यह विज्ञापन शाम के समाचारपत्रों के लिए दे आओ.''

''किस-किस अखबार में, सर?''

''आह, 'ग्लोब', 'स्टार', 'पाल-माल', 'सेंट जेम्स', 'इवनिंग न्यूज स्टैन्डर्ड', 'इको' और कोई अन्य रह गया हो तो, उसमें भी.''

''बहुत अच्छा, सर. और यह हीरा!''

''ओह, हां. हीरा मेरे पास रहेगा. धन्यवाद. और हां, पीटरसन, वापस आते समय एक बत्तख खरीद लाना और मेरे पास छोड़ जाना.'' पीटरसन के चले जाने के बाद होम्स ने हीरे को रोशनी के सामने रखकर कहा, ''क्या बढ़िया चीज है! देखिये, कितना झिलमिला रहा है, चमक रहा है. अलबत्ता यह अपराध का केंद्र बन गया है. इस हीरे की आयु अभी बीस साल नहीं हुई. इस माणिक में सभी विशेषताएं हैं, केवल रंग लाल न होकर नीला है. अब मैं इसे अपने सेफ में बंद रखूंगा और काउंटेस को सूचना दे दूंगा कि हीरा मेरे हाथ आ गया है.''

''तो क्या हारनर बेकसूर है आपके अनुसार?''

''कह नहीं सकता.''

''और यह दूसरा आदमी, हेनरी बेकर, इस मामले से कहां तक संबंध रखता है?''

होम्स-''इस बात की पूरी संभावना है कि हेनरी बेकर एकदम निर्दोष है. किंतु इसकी पुष्टि मैं तभी कर सकूंगा जब वह हमारे विज्ञापन का जवाब देगा.''

''तब तक आप कुछ नहीं कर सकते?''

''कुछ नहीं.''

''ऐसा है तो फिलहाल मैं अपने क्लीनिक चला जाता हूं. शाम को 6-30 बजे वापस आऊंगा. यह देखने के लिए कि यह उलझी गुत्थी कहां तक सुलझी है.''

''मैं आपका इंतजार करूंगा. मैं शाम का खाना सात बजे खाता हूं.''

शाम के छह बजने ही वाले थे कि मैं होम्स के घर के द्वार पर पहुंचा. वहां मैंने एक आदमी को खड़ा पाया. मन में सोचा—यह लंबू हेनरी बेकर ही हो सकता है. दरवाजा खुला और हम दोनों ने एक साथ अंदर प्रवेश किया. होम्स-''मेरे विचार से आप मि. हेनरी बेकर हैं. कृपया आग के पास वाली कुर्सी पर तशरीफ रखिये. ओह! वाट्सन तुम ठीक वक्त पर पहुंचे... मि. बेकर, क्या यह हैट आपका है?''

बेकर :-''हां, सर. यह हैट यकीकन मेरा मेरा ही है.''

''हमने इन चीज़ों को कुछ समय रखे रखा क्योंकि हमें आपके विज्ञापन का इंतजार था जिसमें आपका पता रहता. समझ नहीं आता

अप्रैल फूल

ER RAKESH
9716080365

–विनोद गुप्ता

इस वर्ष मार्च-अप्रैल में हमारे महाविद्यालय में विश्वविख्यातधीन परीक्षाएं चल रही थी. पहली अप्रैल को एम. ए. अर्थशास्त्र विषय की परीक्षा थी. इस बार नकलची छात्रों को पकड़ने हेतु विश्वविद्यालय की ओर से कुछ उड़नदस्ते भी कायम किए गए थे. मैं उस दिन पर्यवेक्षक के रूप में कार्य कर रहा था कि अचानक उड़नदस्ता आ गया. साथ में हमारे केंद्र के वरिष्ठ अधीक्षक भी थे. उड़नदस्ते को देख सब छात्र सतर्क हो गए लेकिन एक छात्र अपनी उत्तर पुस्तिका के मध्य रखे हुए किसी कागज को बार-बार देखने का प्रयास कर रहा था. उड़नदस्ते के किसी एक सदस्य को संदेह हुआ कि यह छात्र निश्चित नकल कर रहा है अत: उन्होंने तुरंत उस छात्र की उत्तरपुस्तिका छीन ली. सभी परीक्षार्थियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया था. लेकिन जिसे पकड़ा गया वह शांत खड़ा रहा. उड़नदस्ते के सदस्य ने उत्तरपुस्तिका से वह चिट निकाली और जैसे ही पढ़ी कि उनका चेहरा फक्क हो गया. चिट पर लिखा हुआ था 'अप्रैल फूल' अब उड़नदस्ते सहित वरिष्ठ अधीक्षक महोदय की सूरत देखने लायक थी. पूरा परीक्षा हाल ठहाकों से गूंज उठा. □

आपने इश्तहार क्यों नहीं दिया?"

बेकर हंसते हुए बोला, "अब मेरे पास शिलिंगों की इतनी बहुतायत नहीं रही जितनी पहले हुआ करती थी. दूसरे मेरा विश्वास था कि जिन गुंडों ने मुझ पर हमला किया था, वे दोनों चीज़ें—बत्तख और हैट अपने साथ ले गये होंगे."

"आपका ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था. वैसे बत्तख को हमें अपना भोजन बनाने पर मजबूर होना पड़ा."

बेकर ने जोश से उठते हुए कहा, "खाना पड़ा!"

"हां, अगर हम इसे न खाते तो इसका किसी को और कोई लाभ न होता. लेकिन उसी वज़न की, ताजा बत्तख अलमारी के ऊपर बैठी है.इससे आपका काम बन जायेगा."

"हां-हां, मेरा काम हो जायेगा."

होम्स—"अलबत्ता, पहली बत्तख की टांगें, भोजन नली आदि हमारे पास रखे हैं. आप अगर चाहें...."

बेकर ने खुलकर हंसते हुए कहा, "मेरे लिए वे केवल मेरे जोखिम की निशानी ही बन सकते हैं. नहीं, सर. आपकी इजाजत से मैं अलमारी पर बैठी बत्तख से ही अपना सरोकार रखना चाहूंगा."

होम्स ने मुझ पर निगाह डालते हुए बेकर से कहा, "यह रहा आप का हैट और यह रही आप की बत्तख. अगर आप बोर न हो रहे हों तो क्या आप बताने का कष्ट करेंगे कि पहली बत्तख आपने कहां से खरीदी थी. बहुत अच्छी पली हुई थी. ऐसी बत्तख मैंने पहले कभी नहीं देखी."

"जरूर, जरूर, सर. हम कुछ लोग आजयबघर के पास 'अलफा सराय' में अक्सर जाते हैं. इस साल सराय के मालिक विंडीगेट ने एक बत्तख-क्लब बनाने की घोषणा की. कुछ पैसे सबको देने पड़ते थे. हम सबको बड़े दिन पर एक-एक बत्तख मिलनी थी. बाकी कहानी से तो आप अब परिचित हो चुके हैं. मैं आप का कृतज्ञ हूं. हां, सर, इस हैट के लिए विशेष रूप से" बेकर ने झुककर सलाम करके चला गया.

होम्स दरवाजा बंद करते हुए बोला, "तो यह थे हेनरी बेकर. यह पक्की बात है कि इसे मामले के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं...वाट्सन, क्या तुम्हें भूख लगी है?"

"कुछ खास नहीं."

"तो फिर मेरा सुझाव है कि हम रात देर गये खाना खायें और पहले अपने ताजा सूत्र का पीछा करें."

"जैसा आप कहें." मैंने उत्तर में कहा.

होम्स और मैं अपने अभियान पर शहर की ओर चल पड़े.

होम्स-"सवाल यह है कि किसने काउंटेस के हीरे को उस बत्तख के पेट में डाला जिसे हेनरी बेकर अपनी पत्नी के लिए उपहार स्वरूप ले जा रहा था.

"पहले हम 'अल्फा-सराय' के अंदर चलते हैं जहां से बेकर को बत्तख मिली थी."

अल्फा सराय पहुंचकर हम उसके प्राइवेट बार के अंदर चले गये. लाल मुंह वाला सराय का मालिक वहां मौजूद था. होम्स ने उसी से जाकर कहा, "दो गिलास बीयर, प्लीज. आपकी बीयर इतनी ही उम्दा होनी चाहिए जितनी की आपकी बत्तखें हैं."

मालिक ने हैरानी से पूछा, "मेरी बत्तखें?"

होम्स-"जी, मैं आध घंटा पहले मि. हेनरी बेकर से बात कर रहा था. वह आपकी बत्तख-क्लब का सदस्य है."

मालिक-"ओह! समझा! वे मेरी बत्तखें नहीं थीं."

"सच, तो फिर किस की थीं?"

मालिक-"अरे, मैंने दो दर्जन कावंट गार्डन के एक सेल्समैन से ली थीं."

होम्स-"अच्छा वहां तो मैं कइयों को जानता हूं- किससे ली थी?"

"उसका नाम बर्किनरिज है."

"ओह! उसे तो मैं नहीं जानता. अच्छा, यह तुम्हारी सेहत के लिए-तुम्हारा कारोबार खूब फले फूले-गुड-नाइट."

मैंने कहा, "अब बर्किनरिज की ओर!"

होम्स—"वाट्सन, याद रखो. एक तरफ तो यह मामूली-सी बत्तख है और दूसरी तरफ वह बेगुनाह आदमी जिसे सात साल की कैद से बचाना है. हमें मामले की तह तक पहुंचना होगा. दक्षिण की ओर मुंह करके मार्च शुरू कर दो."

हम दोनों कावंट गार्डन बाजार में पहुंचे. एक बड़े स्टाल पर 'बर्किनरिज' का नाम लिखा था. एक घोड़ानुमा बड़ी-बड़ी मूछों वाला आदमी वहां बैठा था. अपने रंग-ढंग से वह स्टाल का मालिक लगता था. होम्स उसके पास जाकर बोला, "गुड-ईवनिंग, आज रात बड़ी सर्दी है."

विक्रेता ने सिर हिलाया और मेरी ओर देखा.

होम्स ने अपनी बात को जारी रखा, "लगता है बत्तखें सब बिक गयी हैं?"

विक्रेता :-"सुबह पांच सौ ले लीजिये."

"तब क्या फायदा?"

"देखिये; उस रोशनी वाले स्टाल से कुछ मिल जायेंगी."

"लेकिन मुझे तो आपकी दुकान ही बतायी गयी थी."

"किसने बतायी?"

"'अल्फा' के मालिक ने."

"ओह, हां. मैंने उसे दो दर्जन भेजी थी."

"बहुत सुंदर पक्षी थे. अच्छा, आपने कहां से खरीदी थीं?"

होम्स के इस सवाल से उस आदमी को गुस्सा आ गया, " अब मिस्टर, आप आखिर चाहते क्या हैं? साफ-साफ बताइये!"

"बात सीधी सी है. मैं यह जानता चाहता था कि तुम्हें वे बत्तखें, जो तुमने 'अल्फा' को सप्लाई की थीं, किसने बेची थीं?"

"मैं अगर न बताऊं, तो!"

"तो कोई बात नहीं लेकिन इस छोटी-सी बात पर तुम इतने गर्म क्यों हो रहे हो!"

"गर्म! अगर आपको इतना तंग किया जाता तो आप इससे भी ज्यादा गर्म हो जाते. जब मैं अच्छे माल के लिए अच्छे दाम देता हूं, तो सौदा तय और खत्म. उन बत्तखों के बारे में इतना बतंगड़ बन जाने से तो ऐसा लगता है कि दुनिया में सिर्फ यही बत्तखें थीं."

"अगर और कोई इनके बारे में पूछताछ करता रहा है तो मेरा उससे कोई वास्ता नहीं. और तुम नहीं बताते तो जो पांच पौंड की शर्त मैं लगाने जा रहा था कि ये बत्तखें देहात में पली थीं, उसे खत्म समझो."

"तो फिर आप पांच पौंड हार गये क्योंकि यह शहर में ही पाली गयी हैं."

"ऐसा नहीं हो सकता."

"ऐसा ही है."

"मुझे विश्वास नहीं आता."

"आप समझते हैं कि मुरगी-बत्तखों के बारे में मुझसे ज्यादा जानते हैं! मैं छुटपने से ही यही काम करता आया हूं. मैं आपसे कह रहा हूं कि जो बत्तखें 'अल्फा' भेजी गयी थीं,उनका पालन-पोषण इसी शहर में हुआ था."

"आप मुझे यकीन करने पर मजबूर नहीं कर सकते? आप सीधे-सीधे शर्त क्यों नहीं लगा लेते?"

"यह आपका पैसा ले लेने के बराबर होगा क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं ठीक हूं. मैं एक गिनी की शर्त लगाता हूं ताकि आगे तुम जिद न करो, ऐसे मामलों में."

विक्रेता मंद-मंद मुस्कराया, "बिल, बही-खाते लाओ," वह बोला छोकरा एक छोटा पतला सा रजिस्टर और एक बड़ा, जिसकी जिल्द

पर हर-सी चिकनाइ जमी थी, ले आया

बही-खाते के एक पन्ने पर गौर से नजर डालते हुए सेल्समैन ने कहा, "मै समझा था दुकान की सभी बत्तखें बिक गयी है लेकिन इसी छोटी किताब से पता लगा कि एक बाकी है."

"तो?"

"यह उन लोगो की सूची है जिनसे मै खरीददारी करता हू. आप समझे? अब इस पृष्ठ पर देहात के सप्लाई करने वालो के नाम है और उनके नामो के आगे लिखे नबर उनके खातो के पृष्ठ-नबर है. अगला पेज लाल स्याही मे लिखा गया है. इस मे शहर के सप्लाईकर्त्ताओ के नाम है. यहा तीसरा नाम देखकर ऊचा पढ़िये."

"श्रीमती ओकशाट, 117 बिक्स्टोन रोड-249." होम्स ने पढ़ा.

"ठीक. अब आप इस खाते मे देखिए."

होम्स ने पेज खोला, "यह रहा, श्रीमती ओकशाट, 117 बिक्स्टोन रोड—अंडे, मुर्गी आदि सप्लाईकर्त्ता."

"अच्छा, अब अंतिम इदराज पढ़िए."

"22 दिसबर 24 बत्तखें 7 शिलिंग 6 पेंस की दर से."

"ठीक, और इसके नीचे?"

"मि विडीगेट 'अल्फा' वाले को 12 शिलिंग की दर से बेची गयी."

"अब आपको क्या कहना है?"

शरलॉक होम्स को निराशा का दिखावा करना पडा. अपनी जेब से एक गिन्नी निकाल कर फर्श पर फेंक दी. फिर बेंटिली से वहा से रवाना होकर कुछ गज की दूरी पर लैंप-पोस्ट के नीचे रुका खुलकर अपने विशेष अंदाज मे हसा.

"जब तुम्हे इस प्रकार का मुच्छल आदमी नजर आये तो तुम शर्त बदकर उससे जानकारी प्राप्त कर सकते हो," होम्स बोला, "मै दावे से कहता हू कि अगर मै उसके सामने हजार पौंड भी पटक देता तो उससे इतनी जानकारी नही उगलवा सकता था. वाट्सन, लगता है हम अपनी मंजिल पर पहुचने ही वाले है. केवल एक ही सवाल है—श्रीमती ओकशाट के घर आज रात ही जायें या कल सवेरे. उस मड़े सैल्समैन की बातों से तो लगता है कि हमारे अलावा और लोग भी इस मामले..."

होम्स के आगे के शब्द उस स्टाल, जिसे हम अभी छोड़ कर आये थे, से उठ रहे शोर-गुल मे डूब गये. पीछे मुड़कर देखने पर हमने एक चूहे-से मुह वाले नाटे आदमी को स्टाल की पीली रोशनी के सामने खड़ा पाया. स्टाल का मालिक, दरवाजे मे खड़ा अपनी मुट्ठिया भींच-भींचकर चिल्ला रहा था.

"तुम और तुम्हारी बत्तखो से तंग आ गया हू," वह चीख रहा था, "तुम सब शैतान एक ही बार आते, अब तुम मुझे तंग करने फिर आये तो मै तुम पर अपना कुत्ता छोड़ दूगा. तुम श्रीमती ओकशाट को यहा लाओ और मै उसे जवाब दूगा. तुम्हारा इस सबसे क्या वास्ता? क्या बत्तखें मैने तुमसे खरीदी थी?"

"उसी ने मुझे आपसे पूछने के लिए कहा है."

"तुम चाहो तो जरमनी के बादशाह से पूछ सकते हो, मेरी बला से! बहुत हो चुका. अब दफा हो जाओ!" वह जोश से आगे बढ़ा और नाटा आदमी अंधेरे मे विलीन हो गया.

"अब हम बिक्स्टोन रोड जाने से बच सकते है," होम्स बुदबुदाया, "आओ मेरे साथ—देखे यह नाटा कौन है."

लोगों की भीड़ से जल्दी-जल्दी निकलते हुए होम्स ने नाटे आदमी को जा पकड़ा और उसके कंधे को छुआ.

"कौन हो तुम? क्या चाहते हो," उसने कापते स्वर मे कहा.

"माफ करना," होम्स ने विनयपूर्वक कहा, "आप जो सवाल सेल्समैन से पूछ रहे थे, वे सब सुने है. मेरा खयाल है कि मै आपकी कुछ मदद कर सकता हू."

"तुम, तुम हो कौन? तुम मामले की सारी जानकारी कैसे रखते हो?"

"मेरा नाम शरलॉक होम्स है. मेरा काम वह सब जानना है जो दूसरे नही जानते."

"लेकिन आप को इस बारे मे कुछ भी नही मालूम."

"क्षमा करे, मुझे पूर्ण जानकारी है. आप यह जानने की कोशिश कर रहे है कि बिक्स्टोन रोड की श्रीमती ओकशाट ने जो बत्तख ब्रिकिनरि सैल्समैन को बेची थी और जिसने उसे 'अल्फा' के मालिक विडीगेट के हाथों बेच दिया था-और जो उसने क्लब के हेनरी बेकर को जो क्लब का सदस्य है दे दी थी, उसका क्या हुआ?"

"ओह, सर! मै आपसे ही मिलने की फिराक मे था," उसने हाथ फैलाकर कहा, "मै आपको नही समझा सकता कि इस मामले मे मेरी कितनी दिलचस्पी है."

एक जाती हुई टैक्सी को आवाज देकर होम्स ने कहा, "यहा बाजार में बात करने की बजाय आरामदेह कमरे मे बातचीत करना बेहतर होगा. किंतु पहले आप अपना परिचय तो दीजिये."

नाटा आदमी जरा झिझका, "मेरा नाम जॉन रॉबिनसन है."

"ना भई," होम्स मधुरता से बोला, "असली नाम, नकली नाम से सदा काम बिगड जाता है."

अजनबी की गालें लाल हो गयीं. "अच्छा, तो," वह बोला, "मेरा वास्तविक नाम जेम्स राइडर है."

"बिल्कुल. कास्मोपोलिटन होटल के मुख्य परिचारक. टैक्सी मे आ जाओ. मै शीघ्र ही तुम्हें वह सब बता दूगा जो तुम जानना चाहते हो."

छोटे कद वाला आदमी कभी डर-भरी और कभी आशा भरी नजरों से हम दोनों को देखता रहा फिर टैक्सी में बैठ गया. आध घंटे में हम

लघु कथा

दांपत्य सुख

□ सत्यप्रकाश हिदवान

सिविल लाइंस में एक आलीशान कोठी थी. गेट पर साथ उसमें रहते थे. पत्नी किसी फर्म में एक्जीक्यूटिव थी. पति सरकारी दफ्तर का बाबू था. पत्नी हमेशा पति को हेय दृष्टि से देखती थी. इसीलिए उसने पति को इस्तीफा दिला घर बैठा दिया था.

वर्षों तक पति गृहिणी बना पत्नी की डांट फटकार व्यंग्य सहता रहा. बेकार होने का अहसास उसे हर वक्त कचोटता रहता.

पत्नी के व्यवहार से तंग आकर, पुत्र को बीमार हालत में छोड़ वह एक दोपहर को घर से निकल पड़ा था. इस बीच पुत्र ईश्वर को प्यारा हो गया. कई माह बाद मवालाजा नल बना पति घर लौटा.

कोठी के गेट पर खड़े नये दरबार ने उसे दुत्कारा, "साहब और मेम साहब घर पर नहीं है."

तभी कार में अपनी पत्नी को किसी व्यक्ति के साथ आते देख पति को आश्चर्य हुआ. कार से उतरते हुए पत्नी ने कहा— 'हम दोनों के बीच का रिश्ता कब का मर चुका है.' 'और इन से मिलिए ये मेरे हसबैंड है. और उसे 'गेट आउट' का इशारा कर पत्नी गेट के अंदर प्रवेश कर गया. □

बेकर स्ट्रीट में होम्स की बैठक में जा बैठे. रास्ते में कोई बातचीत नहीं हुई.

"तो हम यहां आ गये." कमरे में दाखिल होने पर होम्स ने प्रसन्नता से कहा, "इस मौसम में आग बड़ी जरूरी है. मिस्टर राइडर, आपको सर्दी लग रही होगी. आग के पास कुर्सी पर बैठ जाइये. मैं अभी स्लीपर पहनकर आता हूं फिर आपका मामला सुलझाते हैं. आप यही जानना चाहते हैं न कि बत्तखों का क्या हुआ?"

"हां, सर."

"पर आप शायद, उस सफेद बत्तख में रुचि रखते हैं जिसकी पूंछ काली है."

राइडर भावावेग में कांप गया, "ओह! सर, "वह चिल्लाया, "क्या आप बता सकते हैं कि वह बत्तख कहां गयी?"

"यहां आयी थी."

"यहां?"

"हां, क्या शानदार बत्तख साबित हुई. अगर आप उसमें दिलचस्पी रखते हैं तो मुझे कोई हैरानी नहीं हो रही. मरने के बाद उसने एक अंडा दिया—बड़ा, चमकीला, नीला अंडा—वह मेरे म्यूजियम में है."

राइडर के पांव लड़खड़ा गये. होम्स ने सेफ खोलकर नीला हीरा निकाला. हीरा सितारे की तरह चमक रहा था. राइडर मुंह लटकाये इस दुविधा में खड़ा रहा कि हीरे पर अपना दावा पेश करे या नहीं.

"खेल खत्म हो गया, राइडर," होम्स ने धीरे से कहा, "अपने को संभालो नहीं तो आग में जा पड़ोगे. वाट्सन, इसे बाजू से थामकर कुर्सी पर बैठाओ. थोड़ी ब्रांडी दो इसे."

राइडर और लड़खड़ाकर गिरने ही वाला था कि ब्रांडी ने उसे बचा लिया. वह बैठ गया और होम्स को डरी आंखों से घूरता रहा.

होम्स बोला, "मेरे पास सब कड़ियां हैं और सब सबूत जिनकी जरूरत पड़ सकती है, सो, तुम्हें मुझे कुछ नहीं बताना होगा. फिर भी एक बात साफ कर दो. राइडर, तुमने काउंटेस मोरकर के नीले हीरे के बारे में तो सुना ही होगा?"

"कैथरीन कुसेक ने मुझे इस बारे में बताया था," उसने फटी आवाज़ में कहा.

"ओह, लेडी की नौकरानी ने. तो एकदम अमीर बन जाने का लोभ तुम्हें ही आया किंतु तुमने तरीका ठीक नहीं अपनाया. राइडर, मुझे लगता है तुममें विलन बनने के चिह्न मौजूद हैं. तुम्हें मालूम था कि नलसाज हारनर एक बार ऐसे ही मामले में फंस चुका है—इसलिए फौरन शक उसी पर जायेगा. तुमने लेडी के कमरे में कोई छोटा-मोटा काम निकाल लिया और तुम तथा तुम्हारी साथिन कुसेक ने उसे कमरे में बुलावा भेजा. फिर उसके जाने के बाद हीरा चुरा लिया और बाद में शोर मचा दिया. बेचारा बेगुनाह पकड़ लिया गया. फिर तुम....."

राइडर ने अपने को होम्स के कदमों में डाल दिया उसने उसके घुटने पकड़ लिये और चीख पड़ा, "ईश्वर के लिए, मुझ पर दया करो, मेरी मां का खयाल करो, मेरे बाप का ध्यान रखो. उनका दिल टूट जायेगा. इससे पहले मैंने कभी गलत काम नहीं किया और न ही भविष्य में कभी करूंगा. मैं सौगंध खाता हूं. पवित्र बाइबल पर हाथ रखकर कसम खाता हूं. मुझे अदालत में न जाने दीजिये. यीशु के लिए."

"अपनी जगह जाकर बैठो," होम्स ने सख्ती से कहा, "अब घिघिया रहे हो. उस निर्दोष बेचारे का ध्यान नहीं आया. हारनर उस कसूर के लिए कटघरे में खड़ा कर दिया गया जो उसने कभी किया ही नहीं."

"मि. होम्स, मैं भाग जाऊंगा. देश छोड़ दूंगा. सर, फिर हारनर के विरुद्ध जुर्म ठहर नहीं पायेगा." राइडर ने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरी, "सर, मैं आपको बताता हूं, यह सब कैसे हुआ. जब हारनर पकड़ा गया. तो मुझे लगा कि हीरा लेकर मुझे कहीं चला जाना चाहिए क्योंकि पुलिस आयेगी और मेरे कमरे की तलाशी लेगी. मेरी एक बहन श्रीमती ओकशाट है. मैं उसके पास ब्रिक्स्टोन रोड चला गया. मेरा एक दोस्त किलबर्न में रहता है. उसने एक बार मुझे बताया था कि चोर किस तरह चोरी का माल ठिकाने लगाते हैं. मैं उसके पास जाना चाहता था लेकिन हीरा साथ कैसे ले जाऊं. मेरी बहन ने एक बार क्रिसमिस पर अपनी पसंद की बत्तख चुन लेने को कहा था. मैंने काली पूंछ वाली सफेद बत्तख को पकड़कर उसका मुंह खोला और हीरा उसे खिला दिया. बत्तख के शोर मचाने पर मेरी बहन आ गयी. उसके पूछने पर उसे मैंने उसका वायदा याद दिलाया. मेरे बात करते समय वह बत्तख भागकर झुंड में जा मिली. मेरी बहन ने अपनी पंसद की बत्तख ले लेने को कहा तो मैंने एक सफेद बत्तख पकड़ ली. पूंछ उसकी भी काली थी. बत्तख लेकर मैं अपने दोस्त के पास चला गया. मेरे दोस्त ने सारा किस्सा सुना लिया और झट चाकू निकालकर बत्तख का पेट चीर डाला. किंतु हीरा नहीं मिला, उसके पेट में. मैं वापस बहन के घर पहुंचा. वहां एक भी बत्तख न थी.

"'सारी बत्तखें कहां गयीं मैगी?' मैं चीखा.

"'डीलर के पास.'

'कौन से?' 'ब्रिकिनरिज के पास.

"'क्यों काली पूंछ वाली एक और भी बत्तख थी,' मैंने पूछा.

"'हां थी, दो ऐसी बत्तखें थीं लेकिन उनको एक दूसरे से अलग पहचाना कठिन था.'

"तब सारी बात मुझे समझ आ गयी. मैं सिर पर पैर रखकर भागा और ब्रिकिनरिज के स्टाल पर जा पहुंचा. वह सारी बत्तखें बेच चुका था और इस बारे में एक भी शब्द बोलने को तैयार न था कि किसे बेची हैं. आपने स्वयं सारी बातचीत सुनी है. अब मैं एक चोर करार दिया जा रहा हूं. ईश्वर ही मेरी रक्षा करेंगे."

उसने सुबकना शुरू कर दिया और दोनों हाथों से अपना मुंह छिपा लिया.

काफी देर कमरे में मौन तैरता रहा. फिर मेरा मित्र होम्स उठा. उसने दरवाजा खोल दिया.

"दफा हो जाओ," वह बोला.

"क्या सर! ईश्वर आपका भला करे."

"बकवास बंद! निकलो यहां से!"

ER RAKESH
9716080365

शब्दों की अब और आवश्यकता नहीं रही थी. गली में तेज़ पदचापों की आवाज़ आ रही थी.

अपना पाइप उठाकर होम्स मुझसे बोला, "वाट्सन, पुलिस की कमियां दूर करने के लिए मुझे कोई पैसा नहीं मिलता. अब राइडर हारनर के विरुद्ध गवाही नहीं देगा और मुकद्दमा ठहर नहीं पायेगा. मैंने महाअपराध किया है किंतु एक आत्मा को भी बचाया है. यह आदमी अब दुबारा गलती नहीं करेगा. वह कितना डरा हुआ था, वाट्सन. अगर अब उसे जेल भेज देते तो सदा जेल का वासी बन जाता. दूसरे, यह क्षमा-दान के दिन हैं. संयोग से एक समस्या हमारे सामने आयी और उसका समाधान ही हमारा पुरस्कार है.

"डाक्टर अगर आप ज़रा घंटी बजाने का कष्ट करें तो वह कार्यक्रम शुरू होगा जिसका मुख्य भाग भी एक पक्षी होगा. क्या समझे? देर रात के खाने में पीटरसन की पत्नी द्वारा भून गयी बत्तख." □

चलते-चलते

हिंदी अधिकारी के पद पर नियुक्ति हेतु चल रहे साक्षात्कार के दौरान बोर्ड के एक सदस्य ने प्रत्याशी से पूछा, "भर्तृहरि के शतकों के विषय में क्या जानते हैं?"

"सर! मद्रास टैस्ट के पश्चात इनका कोई महत्व नहीं रह जाता!"—प्रत्याशी ने उत्तर दिया.

■ कृष्ण कांत वर्मा 'विवेक'

शरलॉक होम्स की शताब्दि पर

शरलॉक होम्स का भ्रम

आर्थर कानन डॉयल से क्षमा प्रार्थना सहित

दिलिप सालवी

केतन ने रोबॉट के पीछे लगे एक लाल बटन को दबाया. एक क्षण के लिए रोबॉट की छाती पर एक छोटा हरा बल्ब टिमटिमाया और उसमें हलचल हुई. वह केतन की ओर घुमा और बोला, ''मेरे प्यारे वाटसन, यह तो बहुत ही साधारण बात है...''

''मुझे एक शरलॉक होम्स चाहिए. क्या आपके पास मिलेगा?'' केतन ने उत्कंठा से पूछा.

काउंटर के पीछे खड़े व्यक्ति ने अपने यंत्र पर कुछ जांच और फिर कहा, ''सॉरी, माल खत्म हो गया है.'' परंतु जब उसने केतन के लटके हुए चेहरे की ओर देखा तो बरबस बोल उठा, ''वैसे, अगर तुम आर्डर बुक कर दो तो हम लोग कल तक तुम्हारे लिए एक शरलॉक होम्स तैयार करके रखवा सकते हैं.

केतन खुश हो गया, ''अवश्य! अवश्य! मुझे तो किसी भी हालत में शरलॉक होम्स चाहिए. घर पर एक बड़े रहस्य को सुलझाना है.''

''यह तो तुम्हारे चेहरे से ही पता चल रहा है. नहीं तो तुम्हें शरलॉक होम्स की क्या जरूरत? वह तो है ही सब गुत्थियां सुलझाने के लिए. तुम अपना आर्डर उधर वाले काउंटर पर बुक कर दो.'' उस व्यक्ति ने एक दूसरे काउंटर की ओर इशारा किया.

केतन उस काउंटर पर पहुंचा. पर वहां कोई नहीं था. केवल एक बड़ी मशीन थी, जिसमें कई दरारें बनी थीं और दबाने वाले बटन लगे हुए थे. उसने एक दरार में कुछ सिक्के डाले और एक बटन दबाया. खटाक् की आवाज के साथ एक रसीद बाहर निकल आयी. केतन ने सावधानी से रसीद अपनी जेब में रखी और दूकान से बाहर निकल आया.

दरअसल केतन का पालतू कुत्ता जिमी रहस्यपूर्ण ढंग से गायब हो गया था. पिछले चौबीस घंटों से वह अपने कुत्ते को अड़ोस-पड़ोस में ढूंढता फिर रहा था. केतन ने शरलॉक होम्स की उन सारी कहानियों को भी याद किया जो उसने उत्सुकतापूर्वक पढ़ी थीं और यह भी सोचा था कि जिमी को ढूंढने के तरीके में कहीं उक्त जासूस के जगप्रसिद्ध तरीकों में से कोई तरीका उससे छूट तो नहीं गया.

हताश केतन अपने घर की ओर लौट रहा था कि एक दुकान की खिड़की पर चमकते एक सूचनापट ने उसका ध्यान आकर्षित कर लिया. लिखा था :

यहां रोबॉट बिकते हैं :
रॉबिन हुड, जिम कॉरबेट,
सुपर मैन, शरलॉक होम्स या
अपने मनपसंद किसी भी पात्र को चुनिए!!
तैयार माल में से लीजिये या,
मनचाहा बनवाइये.
ये आपके काम में तेजी लायेंगे

"आह! यही तो है, जो मैं चाहता हूं," केतन के मुंह से निकला और वह दुकान के दरवाजे की ओर लपक पड़ा.

पांच मिनट के बाद, शरलॉक होम्स की रसीद अपनी जेब में डालकर जब वह बाहर निकला तो उसे काफी शांत और आश्वस्त होना चाहिए था, पर ऐसा नहीं था. क्या पता उसका पालतू जिमी जीवित भी है या नहीं?

अगले दिन, केतन बड़ी बेचैनी से रोबॉट वाली दुकान खुलने का इंतजार कर रहा था. दुकान खुली, वह तेजी से दुकान में घुसा, अपनी रसीद दिखा दी और उसके बदले में मिला, किंचित लंबा, बेलनाकार डिब्बा, जिसमें एक 'शरलाक होम्स' बंद था. उसे लेकर घर की ओर दौड़ पड़ा.

अपने कमरे में पहुंचकर केतन ने सावधानी से डिब्बे को खोला और 'शरलॉक होम्स' के विभिन्न हिस्सों को बाहर निकाला. डिब्बे में एक निर्देश तालिका के साथ-साथ औजारों का एक सेट भी था. उसने विवरण पढ़ा, प्रत्येक पुर्जे को जांचा और फिर अपने 'शरलॉक होम्स' को जोड़कर तैयार किया. वह अपना काम प्रायः पूरा कर चुका था, जब उसकी दृष्टि एक चौकोर कार्ड पर पड़ी. मोटे-मोटे अक्षरों में, उस पर ये शब्द छापे हुए थे :

चेतावनी

इस रोबॉट में उस पात्र के गुण भरे गये हैं, जिसका यह प्रतिनिधित्व करता है. यह बिल्कुल असली पात्र की तरह व्यवहार करेगा. स्मरण रहे कि प्रत्येक व्यक्ति या पात्र का अपना विशेष मानसिक गठन होता है. यदि यह रोबॉट अनिश्चित तरीके से व्यवहार करे और अपने मालिक को असुविधा पहुंचाये, तो निर्माता इसके लिए जिम्मेवार नहीं है.

केतन ने इस चेतावनी को कोई महत्व नहीं दिया और कार्ड को कूड़ेदान में फेंक दिया.

शीघ्र ही शरलॉक होम्स तैयार था. वह केतन के सामने खड़ा था—लंबा, मजबूत मांसपेशीयुक्त, चौड़ी छाती वाला व्यक्ति. उसके गले में एक गुलूबंद था, उसने एक बरसाती पहन रखी थी और उसके सिर पर टोप था. उसने हाथों में एक पाइप (चुरूट) पकड़ रखी थी. आर्थर कानन डायल की कृति और इस रोबॉट की पूर्ण सादृश्यता पर केतन अचंभित था. अंतर केवल रोबॉट की किंचित कोणीय आकृति में था. वह यह जानने के लिए उत्सुक और उत्तेजित था कि उसका शरलॉक होम्स, जिमी को ढूंढने में किस विधि का उपयोग करेगा.

केतन ने रोबॉट के पीछे लगे एक लाल बटन को दबाया. एक क्षण के लिए रोबॉट की छाती पर एक छोटा हरा बल्ब टिमटिमाया और फिर शरलॉक होम्स में हलचल हुई. वह केतन की ओर घूमा.

"मेरे प्यारे डा. वाटसन," रोबॉट ने कहा, "यह तो बहुत ही साधारण सी बात है, बहुत ही साधारण...."

केतन चकराया. क्या है साधारण-सी बात? वह मन ही मन आहत भी हुआ कि उसे वाटसन नाम से संबोधित किया जा रहा है पर अपने आप को डाक्टर संबोधित होते सुनकर उसने थोड़ा गर्व भी महसूस किया. उसका लक्ष्य बड़े होकर डाक्टर बनने का ही था.

अनजाने ही उसके मुंह से शब्द फिसल पड़े. वह कुछ-कुछ असंगत तरीके से ही पूछ बैठा—"क्या-क्या है अतिसाधारण?"

"मेरा अनुमान है कि तुम्हारा कुत्ता खो गया है, डा. वाटसन. क्यों, ठीक है न?"

"अरे हां," केतन आश्चर्यचकित हो बोल उठा, "लेकिन तुम्हें यह कैसे पता चला?" उसका वाक्य पूरा हुआ भी नहीं था कि अनायास उसे याद आ गया कि यह रोबॉट तो 'शरलॉक होम्स' था, जिसकी जासूसी की क्षमता अपूर्व थी. संभव है कि उस प्रसिद्ध जासूस की तरह यह रोबॉट भी उसके मस्तिष्क में उठने वाली हर बात को समझ रहा हो.

रोबॉट जिमी के लिए बने कुत्तेघर की ओर बढ़ गया. थोड़ी दूर जाकर वह ठिठका, जैसे उसे कुछ याद आया हो. "माफ करना, डा. वाटसन," होम्स ने कहा, "तुम्हारे पास मेरा आतशी-शीशा होगा, मेरी जेब में नहीं है. कृपया उसे ला दो, शीघ्र."

केतन जानता था कि कोई भी आतशी-शीशा, 'शरलॉक होम्स किट' में नहीं था. परंतु वह अपनी मेज पर रखे आतशी शीशे को लाने चला गया. जब वह लौटा तो उसने जो देखा, वह काफी मजेदार था. रोबॉट जमीन पर पेट के बल लेटा हुआ था और सूक्ष्मता से कुत्तेघर का निरीक्षण कर रहा था. ऐसा लगा कि उसने अपने पीछे से आती पदचाप भी नहीं सुनी.

थोड़ी देर बाद होम्स खड़ा हो गया और अपनी जेब से एक फीता निकालकर कुत्तेघर के दरवाजे की लंबाई और चौड़ाई नापने लगा. "यह तो बहुत साधारण बात है, प्यारे वाटसन, बहुत ही साधारण," रोबॉट ने हर्षयुक्त स्वर में कहा और आतशी शीशा लेने के लिए अपना हाथ बढ़ा दिया.

केतन का मन हुआ कि वह रोबॉट से कह दे कि वह डा. वाटसन नहीं है पर उसने अपने आप पर काबू किया और आतशी शीशा रोबॉट के हाथ में थमा दिया.

रोबॉट घुटनों के बल बैठ गया, और कुत्तेघर की जांच बारीकी से करने लगा.

"क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता, मि. होम्स," केतन ने अनिच्छापूर्वक, पर यथासंभव मधुर स्वर में पूछा, "जिमी ने अपनी जंजीर तोड़ ली होगी और स्वयं ही भटक गया होगा? कोई आखिर उसे चुराना क्यों चाहेगा? मुझे तो नहीं लगता कि जिमी मुझसे अधिक किसी और के लिए महत्वपूर्ण होगा."

रोबॉट ने केतन की तरफ देखा तक नहीं, पर जैसे ही उसकी बात समाप्त हुई, वह बोल उठा, "नहीं प्यारे वाटसन, नहीं. तुम एकदम गलती पर हो. खैर, मुझे अपनी जांच पूरी करने दो."

इस आक्षेप से केतन चिढ़ उठा. उसकी राय को इस प्रकार दो कौड़ी का कर दिया गया था मानो किसी मूर्ख ने यह राय दी हो. पर जिमी की खातिर वह शांत हो गया और होम्स का काम खत्म होने की प्रतीक्षा करने लगा.

"क्या लेस्ट्रेड यहां आये थे?" होम्स ने उठते हुए पूछा.

"कौन?" केतन ने चकराकर पूछा, "ओह! अब याद आया. 'स्कॉटलैंड यार्ड! हे भगवान!' केतन ने सोचा, यह अभी तक यही सोच रहा है कि अभी 19वीं शताब्दी ही है.

"अच्छा," होम्स ने कहा, फिर चारों ओर चोर निगाह दौड़ाते हुए पूछा, "नौकर कहां है?"

"सॉरी," केतन ने तनिक चौंकते हुए उत्तर दिया, "परंतु तुम्हें क्या चाहिए, बताओ, मैं ला दूंगा."

"ओह... अच्छा, अच्छा! थोड़ी तंबाकू तो ला देना."

"क्या? तम्बाकू? हे भगवान!" केतन ने कहा, उसकी आवाज निराशा से भरी हुई थी. वह अपने पिता के कमरे की ओर दौड़ पड़ा. आहिस्ता से उसने तंबाकू की डिबिया निकाली, अल्मारी से, और लौट आया.

जब केतन कमरे में लौटा तो उसने रोबॉट को चहलकदमी करते हुए पाया. बिना एक शब्द कहे, होम्स ने डिबिया ले ली, खोली और एक चुटकी तंबाकू निकालकर अपनी पाइप में भर ली. फिर अपनी जेब टटोलकर उसने एक लाइटर निकालकर चुरूट सुलगायी और कश खींचने लगा. धुएं के छल्ले बनाते हुए रोबॉट ने अपनी चहलकदमी जारी रखी. लगा जैसे वह किसी समस्या पर गंभीरता से विचार कर रहा हो.

कमरे में धुआं भरने लगा. जल्दी ही केतन अनमना हो उठा और उसे नींद आने लगी. उसने होम्स को उसी कमरे में छोड़ा और स्वयं सोने चला गया.

जैसे ही वह जागा, उसे शरलॉक होम्स याद आया और वह कमरे की ओर भागा. उसने अचंभित होकर देखा कि पूरा कमरा तंबाकू की राख से अटा पड़ा था. होम्स खिड़की के पास खड़ा था और चुरूट पी रहा था. खिड़की पर रखी दूरबीन पर भी उसका ध्यान गया. इसका मतलब है कि मेरी अनुपस्थिति में कुछ हुआ है – उसने सोचा. उसका अनुमान ठीक था. उसने उसी व्यवहारिक बुद्धि (कॉमन सेंस) का उपयोग किया था जिसका महत्त्व असली शरलॉक होम्स अपने जीवनकाल में लोगों को समझाता रहा था.

"तो मि. शरलॉक होम्स, आखिरकार जिमी का पता चल ही गया, है न?" केतन ने आतुरता से पूछा.

होम्स के चेहरे पर एक मुस्कान तैर गयी. उसने कहा, "चिंता न करो, डा. वाटसन – धीरज रखो... यह तो बहुत ही छोटी सी बात है, मैंने कहा था न!"

अब तक केतन 'छोटी-सी, साधारण-सी' शब्द से ऊब उठा था. फिर भी वह चुप रहा और उसने रोबॉट से पूछा, "क्या यह संभव है कि मुझे आज ही जिमी वापस मिल जाये?"

रोबॉट ने व्यस्तता से अपना हाथ उठाया और कोई उत्तर नहीं दिया. उसने दूरबीन उठा ली और एक विशेष स्थान की ओर देखने लगा. केतन को यह पूछने का साहस नहीं हुआ कि वह किधर देख रहा है. पर जब उसने दूरबीन खिड़की पर ही वापस रख दी, तो केतन ने उसे उठा लिया और उसी दिशा में देखने लगा. पास वाले गैराज से आती हुई एक गाड़ी के सिवाय आसपास और कहीं कोई उसे नजर नहीं आया.

जब केतन ने घूमकर होम्स को देखा तो उसे गंभीर स्वर में यह सुनने को मिला – "एक फोन का इंतजार करो." ठीक आधे घंटे बाद फोन की घंटी बज उठी. होम्स ने उसे जल्दी से उठा लिया और कहा, "मिल गया? अच्छा, मैं आ रहा हूं."

"चलो चलें, डा. वाटसन," रोबॉट ने कहा और मेज पर रखे अपने टोप को उठाकर दरवाजे की ओर लपक पड़ा. पीछे-पीछे केतन था.

केतन शरलॉक होम्स के भागने के तरीके पर आश्चर्यचकित था. रोबॉट ने एक पास से गुजरती एक टैक्सी को आवाज देकर रोका और जल्दी से उसमें बैठ गया. केतन भी टैक्सी में बैठ गया. जासूस ने ड्राइवर से कहा– "पश्चिमी पशुशाला में चलो–जल्दी."

"क्या जिमी भटककर पशुशाला में पहुंच गया है? या हम सिर्फ किसी लुप्त होती जानवर जाति के किसी पशु को देखने जा रहे हैं?" ये प्रश्न केतन के दिमाग में चक्कर काट रहे थे. वह जासूस से कोई उत्तर चाह रहा था, पर जब उसने होम्स को गंभीर भाव से होंठ भींचकर बैठे देखा तो उसे टैक्सी के अंदर की निस्तब्धता को तोड़ने का साहस नहीं हुआ.

जल्दी ही टैक्सी पशुशाला के ऑफिस के सामने रुकी. गाड़ी से निकलकर होम्स ने ड्राइवर को इंतजार करने का निर्देश दिया और ऑफिस के भवन की ओर बढ़ गया. वह सीधा एक दरवाजे की तरफ बढ़ा जिस पर 'स्टोर्स' का बोर्ड लगा था. केतन भी उसके पीछे था. उसे पिंजरेनुमा खांचों में से जानवरों की गुर्राहटें और चिल्लाहट सुनाई पड़ रही थीं. परंतु उसका ध्यान, दो वर्दीधारी व्यक्तियों के हाथों से छूटने के लिए खींचतान करते एक वृद्ध व्यक्ति की ओर खिंच गया. वहीं काउंटर के पीछे एक और व्यक्ति बैठा था. जैसे ही उस वृद्ध व्यक्ति की नजर अंदर आते केतन और होम्स पर पड़ी, वह शांत हो गया और सिर झुकाकर अपने जूतों की ओर ताकने लगा.

केतन ने उस वृद्ध को पहचान लिया. वे उसी के पड़ोसी मि. सुरजीत थे. उसे यह समझ नहीं आया कि वे क्यों पशुशाला आये हुए थे. इससे पहले कि वह कुछ कहता एक वर्दीधारी ने आगे बढ़कर एक पिंजरे को खोल दिया और उसमें से निकला लपकता हुआ जिमी. केतन ने उसे उठाकर इस प्रकार गोद में भींच लिया जैसे वह कई सालों बाद उससे मिला हो.

इस बीच शरलॉक होम्स उस वृद्ध को पकड़कर केतन के सामने ले आया.

"क्या इसे पहचानते हो, डा. वाटसन?" रोबॉट ने पूछा

"क्यों नहीं? ये तो मेरे पड़ोसी मि. सुरजीत हैं." केतन ने कहा. फिर वह मि. सुरजीत की ओर मुड़ा और पूछने लगा, "आपने जिमी को क्यों चुराया? मुझे तो याद है कि आप भी जिमी को उतना ही प्यार करते थे जितना कि मैं." केतन बहुत ही व्यथित था. उसे यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई इतना भला आदमी भी उसका कुत्ता चुरा सकता है.

वृद्ध व्यक्ति की आंखें भर आयीं. वह कह उठा, "कृपा करके मुझे क्षमा कर दो. मैं सचमुच ही जिमी को प्यार करता हूं. पर मुझे कुछ रुपयों की सख्त जरूरत थी, इसलिए मैंने इसे बेचने की चेष्टा की. मैं एक गरीब आदमी हूं. हे भगवान! मुझे इस पाप के लिए क्षमा करना."

"डा. वाटसन, क्यों हमें इसे स्कॉटलैंड यार्ड के हवाले नहीं कर देना चाहिए!" होम्स ने वृद्ध व्यक्ति की कलाई पकड़े हुए ही पूछा.

'स्कॉटलैंड यार्ड! हे भगवान!' केतन ने सोचा, 'यह अभी तक यही सोच रहा है कि अभी 19वीं शताब्दी ही है.'

परंतु प्रकट तौर पर उसने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा मत करो." लगा जैसे वह आदेश ही दे रहा हो, "मि. सुरजीत को छोड़ दो. मुझे लगता है ये अपने किये पर काफी लज्जित हैं. इन्हें क्षमा कर दो होम्स. मुझे नहीं लगता ये दोबारा फिर ऐसी हरकत करेंगे. वे सचमुच ही गरीब हैं, जरूर किसी मजबूरी में इन्होंने ऐसा किया होगा. इन्हें छोड़ दो."

होम्स ने बूढ़े को जोर से एक ओर धकेल दिया. वृद्ध लड़खड़ाया और संभलकर एक कोने में खड़ा हो गया, लज्जित, कांपते हुए. उनकी आंखों से आंसू लुढ़क रहे थे और उन्होंने केतन को उन्हें रिहा करवाने के लिए धन्यवाद दिया.

केतन को यह सब चमत्कार ही लग रहा था. सिर्फ शरलॉक होम्स ही ऐसा कर सकता था. उसने यह बूझने की कोशिश की कि शरलॉक होम्स को सही अंदाज कैसे हो गया. लौटते हुए, सारे रास्ते वह सभी संभावनाओं पर विचार करता रहा पर निष्कर्ष कुछ न निकला.

घर पहुंचकर वे जब आराम से बैठे तो केतन ने बात आरंभ की, "मि. शरलॉक होम्स, यह तो अविश्वसनीय है. तुमने तो चमत्कार कर दिखाया. मुझे तो हैरानी..."

"अरे नहीं! डा. वाटसन, यह तो अति साधारण है. ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैंने तुम्हें पहले नहीं बताया है." होम्स ने हाथ हिलाते हुए केतन को चुप करा दिया. परंतु वह काफी खुश नजर आ रहा था. उसकी आंखें चमक रही थीं. गाल लाल हो गये थे.

हालांकि, अपने आप को फिर से डा. वाटसन संबोधित किया जाने

पर मन ही मन केतन झुंझला उठा था पर अपने चेहरे से उसने कुछ प्रकट न होने दिया और खुशामदी लहजे में होम्स से बोला, ''लेकिन, होम्स, तुम्हें ठीक सुराग का पता कैसे चला? मैंने तो बहुत चेष्टा की परंतु कुछ भी समझ नहीं पाया.''

रोबॉट अपने दांत दिखाते हुए मुस्कराया जैसे वह अत्यंत प्रसन्न हुआ हो. उसने कहा, ''डा. वाटसन, इस केस में कुछ भी नया नहीं है. यह तो अति साधारण केस है. इस प्रकार के केसों में बस जरा चौकन्नी नजर होनी चाहिए. अपने आसपास ध्यान से देखो और सोचने की चेष्टा करो कि उनसे क्या निष्कर्ष निकल रहा है. उसके बाद इन निष्कर्षों की एक-एक कर जांच करो. हो सकता है कि संयोग से भी तुम्हें सही सुराग का पता पहली ही बार में चल जाये.

''अब तुम्हें जिमी के बारे में ही बताऊं. हालांकि उसकी गले की जंजीर टूटी हुई थी, परंतु मुझे संदेह था कि यह काम जिमी के दांतों का नहीं है. इस पर यकीन मुझे कुत्ताघर में पाये गये निशानों को देखकर हो गया. जब यह पक्का हो गया कि जंजीर किसी और ने तोड़ी है तब प्रश्न यह उठता है कि जिमी को कौन ले जाना चाहेगा? इसका उत्तर मुझे आतशी-शीशे द्वारा पाये गये जिमी के कुछ बालों से मिला. बाल की लंबाई और महीनता से मुझे पता चला कि जिमी स्पेनिश जाति का है यानि स्पेनियल.

''अब मैंने एक वन्य जीवन विशेषज्ञ से फोन पर बात की. उसने बताया कि स्पेनियल कुत्ते धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं. हमारे शहर में सिर्फ दस स्पेनियल हैं. इनमें से सात विभिन्न पशुशालाओं में हैं और बाकी तीन घरों में. इससे मुझे जिमी के महत्व का पता चला. अर्थात् यह अच्छे दामों में बिक सकता है.

''मैंने फटाफट तमाम पशुशालाओं को फोन किया और यह जानना चाहा कि क्या उनमें से किसी में भी पिछले दो दिनों में कोई स्पेनियल लाया गया है. एक ने हां में उत्तर दिया. वहां के इंचार्ज ने बताया कि उनके पास एक स्पेनियल आया है परंतु उसे लाने वाले को पैसों का भुगतान नहीं किया गया है. कुत्ते के रंग वगैरह की जानकारी से मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि वह जिमी ही होगा क्योंकि मैं उसके बाल देख चुका था. बस! मैंने इंचार्ज से कहा कि जैसे ही वह व्यक्ति पैसे लेने आये, वे मुझे फोन कर दें. इसके बाद जो हुआ वह तो तुम जानते ही हो. है न साधारण-सी बात?''

''खैर, अब तो यह बहुत आसान लगती है.'' केतन ने कहा, परंतु वह मन ही मन आश्चर्यचकित था. वह स्वयं कुछ भी सुराग पाने में असमर्थ रहा था. उसने महसूस किया कि जिमी को ढूंढने के लिए उसने शिकारी कुत्तों का तरीका अपनाया था, आदमियों का नहीं. उसे यह भी पता चल गया कि वह क्यों असफल रहा था. उसने अभी तक यही सोचा था कि उसका कुत्ता केवल उसके लिए ही मूल्यवान है. किसी और के लिए नहीं. और पैसों की बात तो वह सोच भी नहीं सकता था.

''तुम सचमुच अपूर्व बुद्धि वाले हो, मि. होम्स.'' केतन बोल उठा.

''क्या मैं तुम्हारी और कोई सेवा कर सकता हूं, डा. वाटसन?'' होम्स ने मुस्कराते हुए पूछा.

''अभी तो नहीं. वैसे मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूं कि मैं केतन हूं, तुम्हारा मित्र डा. वाटसन नहीं. यहां तुम मात खा गये.'' केतन ने ठंडे स्वर में कहा.

''नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है?'' होम्स ने अविश्वास से कहा, ''मुझे बहकाओ मत. डा. वाटसन ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसे मैंने साथ रहने का अवसर दिया है, किसी और को नहीं. और इसके अलावा...''

''अलावा-वलावा कुछ नहीं मि. होम्स,'' केतन ने टोक दिया, ''तुमने बहुत बड़ी भूल कर दी है.''

''नहीं, नहीं,'' अब होम्स परेशान हो उठा, ''मैं गलती पर हो ही नहीं सकता. मेरी जासूसी क्षमता मुझे बता रही है कि तुम डा. वाटसन ही हो. मेरी क्षमता, जिसने इतनी सारी समस्याओं का समाधान किया है, इस प्रकार घटिया तरीके से मुझे धोखा कैसे दे सकती है? नहीं, नहीं, यह असंभव है. तुम मुझे बेवकूफ बना रहे हो. तुम डा. वाटसन ही हो.'' होम्स ने निश्चयात्मक स्वर में कहा.

''नहीं मैं डा. वाटसन नहीं हूं,'' केतन अब अधीर हो गया. ''मेरे पास कई प्रमाण हैं. आओ, मैं तुम्हें अपना स्कूल का परिचय पत्र दिखाऊं. लगता है तुम्हारी जासूसी शक्ति गड़बड़ा रही है.''

होम्स चुपचाप केतन की मेज तक उसके पीछे-पीछे चला आया. केतन ने दराज खोलकर अपना परिचयपत्र निकाला.

''लो, देखो. मेरी फोटो है और साथ में लिखा है – मास्टर केतन, कक्षा VIII, सेक्शन-डी, पब्लिक स्कूल नं. 3208. अब बताओ, तुम्हारी जासूसी शक्ति कहां है, मि. होम्स!'' केतन ने जीत से उल्लसित स्वर में पूछा.

रोबोट का चेहरा पीला पड़ गया. उसने फोटो को ध्यान से देखा और उसकी आंखें निस्तेज हो उठीं. और, अचानक केतन को आश्चर्यचकित करता हुआ, वह लड़खड़ाने लगा, कठपुतली की तरह. और फिर पृथ्वी पर गिर पड़ा. धड़ाम!!!

ओह! यह तो हार्ट अटैक है. ओह! मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था. मुझे ऐसा....हे भगवान! केतन अविश्वास से चिल्ला उठा. वह गिरे हुए रोबॉट पर झुका और उसकी नब्ज टटोलने लगा. पर वहां तो न नब्ज का पता था, न कलाई का. बल्कि शर्ट की बांह के नीचे एक धातु की पट्टी उसके हाथ में आयी. एकाएक उसे अपनी भूल का एहसास हुआ. 'शरलॉक होम्स' हाड-मांस का बना प्राणी थोड़े ही था, वह तो एक यांत्रिक रोबॉट था. यह हार्ट अटैक नहीं था, कोई यांत्रिक गड़बड़ी थी.

केतन ने रोबॉट के पुर्जे अलग-अलग किये और जिस डिब्बे में वह रोबॉट को लाया था, उसी में भरकर, उस दूकान की तरफ चला, जहां से उसने इसे खरीदा था.

''मैं यह शरलॉक होम्स का रोबॉट कल आपके यहां से खरीदकर ले गया था. कृपया इसकी मरम्मत कर दीजिए.'' केतन ने काउंटर पर बैठे व्यक्ति से कहा.

उस व्यक्ति ने रुखाई से कहा, ''क्या आपने हमारी विक्रय नियमावली नहीं पढ़ी थी? इसमें साफ लिखा है कि हम रोबॉट की मरम्मत नहीं करते.''

कुछ दिनों के बाद, केतन की भेंट अपने दोस्त सुमित से हो गयी.

''सुमित, क्या तुम किसी ऐसी दूकान का पता जानते हो जो रोबॉट की मरम्मत करता हो? मेरा रोबॉट शरलॉक होम्स अचानक चलना बंद हो गया है.''

''शरलॉक होम्स? बंद हो गया? तुमने जरूर उसको यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की होगी कि तुम डा. वाटसन नहीं हो.''

केतन हतप्रभ रह गया. □

अनुवाद : चित्रा रानी सहाय

चलते-चलते

एक मां को अपने बड़े बेटे पर बहुत गर्व था कि उसने अपना जीवन जला कर भाई-बहनों को पाला, उन्हें किसी लायक बनाया.

वह मां एक दिन अपने उसी सदाचारी बेटे से कह रही थी, 'बेटा! तेरा बाप मूर्ख था. वह अपने भाई-बहनों पर खूब पैसा खर्च करता था और हम घर में बड़ी मुश्किल से गुजारा करते थे.'

उसी समय वहां उसके उसी सदाचारी बेटे की पत्नी खड़ी थी जो कि गर्भवती थी. –प्रदीप भगवानी

"ओह... अ छा, अच्छा! थोड़ी तंबाकू तो ला देना."

"क्या? तम ाकू! हे भगवान!" केतन ने कहा. उसकी आवाज निराशा से भरी हुई थी. वह अपने पिता के कमरे की ओर दौड़ पड़ा आहिस्ता से उस ने तंबाकू की डिबिया निकाली, अल्मारी से, और लौट आया.

जब केतन क रे में लौटा तो उसने रोबॉट को चहलकदमी करते हुए पाया. बिना एक शब्द कहे, होम्स ने डिबिया ले ली, खोली और एक चुटकी तंबाकू नि कालकर अपनी पाइप में भर ली. फिर अपनी जेब टटोलकर उसने । एक लाइटर निकालकर चुरूट सुलगायी और कश खींचने लगा. धुए के छल्ले बनाते हुए रोबॉट ने अपनी चहलकदमी जारी रखी. लगा : जैसे वह किसी समस्या पर गंभीरता से विचार कर रहा हो.

कमरे में धुआं भ रने लगा. जल्दी ही केतन अनमना हो उठा और उसे नींद आने लगी . उसने होम्स को उसी कमरे में छोड़ा और स्वयं सोने चला गया.

जैसे ही वह जागा , उसे शरलॉक होम्स याद आया और वह कमरे की ओर भागा . उसने अचंभित होकर देखा कि पूरा कमरा तंबाकू की राख से अटा पड़ा था. होम्स खिड़की के पास खड़ा था और चुरूट पी रहा था. खिड़की पर रखी दूरबीन पर भी उसका ध्यान गया. इसका मतलब है कि मेरी अनुपस्थिति में कुछ हुआ है – उसने सोचा. उसका अनुमान : ठीक था. उसने उसी व्यवहारिक बुद्धि (कॉमन सेंस) का उपयोग किया । था जिसका महत्त्व असली शरलॉक होम्स अपने जीवनकाल में लो गों को समझाता रहा था.

"तो मि. शरलॉक हो म्स , आखिरकार जिमी का पता चल ही गया, है न?" केतन ने आतुरता से पूछा.

होम्स के चेहरे पर एक मुस्कान तैर गयी. उसने कहा, "चिंता न करो, डा. वाटसन – धीरज रखो... यह तो बहुत ही छोटी सी बात है, मैंने कहा था न!"

अब तक केतन 'छोटी -सी, साधारण-सी' शब्द से ऊब उठा था. फिर भी वह चुप रहा और उसने रोबॉट से पूछा, "क्या यह संभव है कि मुझे आज ही जिमी वापस मिल जाये?"

रोबॉट ने व्यस्तता से अ पना हाथ उठाया और कोई उत्तर नहीं दिया. उसने दूरबीन उठा ली अ ौर एक विशेष स्थान की ओर देखने लगा. केतन को यह पूछने का सा हस नहीं हुआ कि वह किधर देख रहा है. पर जब उसने दूरबीन खिड़की पर ही वापस रख दी, तो केतन ने उसे उठा लिया और उसी दिशा में देखने लगा. पास वाले गैराज से आती हुई एक गाड़ी के सिवाय आसपास । और कहीं कोई उसे नजर नहीं आया.

जब केतन ने घूमकर हो म्स को देखा तो उसे गंभीर स्वर में यह सुनने को मिला – "एक फोन का इंतजार करो." ठीक आधे घंटे बाद फोन की घंटी बज उठी. होम्स ने उसे जल्दी से उठा लिया और कहा, "मिल गया? अच्छा, मैं आ रहा हूं."

"चलो चलें, डा. वाटस न," रोबॉट ने कहा और मेज पर रखे अपने टोप को उठाकर दरवाजे की ओर लपक पड़ा. पीछे-पीछे केतन था.

केतन शरलॉक होम्स के भागने के तरीके पर आश्चर्यचकित था. रोबॉट ने एक पास से गुज रती एक टैक्सी को आवाज देकर रोका और जल्दी से उसमें बैठ गया. केतन भी टैक्सी में बैठ गया. जासूस ने ड्राइवर से कहा–"पश्चिमी पशु शाला में चलो–जल्दी."

"क्या जिमी भटककर पशुशाला में पहुंच गया है? या हम सिर्फ किसी लुप्त होती जानवर जाति के किसी पशु को देखने जा रहे हैं?" ये प्रश्न केतन के दिमाग में चक्कर काट रहे थे. वह जासूस से कोई उत्तर चाह रहा था, पर जब उसने होम्स को गंभीर भाव से होंठ भींचकर बैठे देखा तो उसे टैक्सी के अंदर की निस्तब्धता को तोड़ने का साहस नहीं हुआ.

जल्दी ही टैक्सी पशुशाला के ऑफिस के सामने रुकी. गाड़ी से निकलकर होम्स ने ड्राइवर को इंतजार करने का निर्देश दिया और ऑफिस के भवन की ओर बढ़ गया. वह सीधा एक दरवाजे की तरफ बढ़ा जिस पर 'स्टोर्स' का बोर्ड लगा था. केतन भी उसके पीछे था. उसे पिंजरेनुमा खांचों में से जानवरों की गुर्राहटें और चिल्लाहट सुनाई पड़ रही थीं. परंतु उसका ध्यान, दो वर्दीधारी व्यक्तियों के हाथों से छूटने के लिए खींचतान करते एक वृद्ध व्यक्ति की ओर खिंच गया. वहीं काउंटर के पीछे एक और व्यक्ति बैठा था. जैसे ही उस वृद्ध व्यक्ति की नजर अंदर आते केतन और होम्स पर पड़ी, वह शांत हो गया और सिर झुकाकर अपने जूतों की ओर ताकने लगा.

केतन ने उस वृद्ध को पहचान लिया. वे उसी के पड़ोसी मि. सुरजीत थे. उसे यह समझ नहीं आया कि वे क्यों पशुशाला आये हुए थे. इससे पहले कि वह कुछ कहता एक वर्दीधारी ने आगे बढ़कर एक पिंजरे को खोल दिया और उसमें से निकला लपकता हुआ जिमी. केतन ने उसे उठाकर इस प्रकार गोद में भींच लिया जैसे वह कई सालों बाद उससे मिला हो.

इस बीच शरलॉक होम्स उस वृद्ध को पकड़कर केतन के सामने ले आया.

"क्या इसे पहचानते हो, डा. वाटसन?" रोबॉट ने पूछा.

"क्यों नहीं? ये तो मेरे पड़ोसी मि. सुरजीत हैं." केतन ने कहा. फिर वह मि. सुरजीत की ओर मुड़ा और पूछने लगा, "आपने जिमी को क्यों चुराया? मुझे तो याद है कि आप भी जिमी को उतना ही प्यार करते थे जितना कि मैं." केतन बहुत ही व्यथित था. उसे यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई इतना भला आदमी भी उसका कुत्ता चुरा सकता है.

वृद्ध व्यक्ति की आंखें भर आयीं. वह कह उठा, "कृपा करके मुझे क्षमा कर दो. मैं सचमुच ही जिमी को प्यार करता हूं. पर मुझे कुछ रुपयों की सख्त जरूरत थी, इसलिए मैंने इसे बेचने की चेष्टा की. मैं एक गरीब आदमी हूं. हे भगवान! मुझे इस पाप के लिए क्षमा करना."

"डा. वाटसन, क्यों हमें इसे स्कॉटलैंड यार्ड के हवाले नहीं कर देना चाहिए!" होम्स ने वृद्ध व्यक्ति की कलाई पकड़े हुए ही पूछा.

'स्कॉटलैंड यार्ड! हे भगवान!' केतन ने सोचा, 'यह अभी तक यही सोच रहा है कि अभी 19वीं शताब्दी ही है.'

परंतु प्रकट तौर पर उसने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा मत करो." लगा जैसे वह आदेश ही दे रहा हो, "मि. सुरजीत को छोड़ दो. मुझे लगता है ये अपने किये पर काफी लज्जित हैं. इन्हें क्षमा कर दो होम्स. मुझे नहीं लगता ये दोबारा फिर ऐसी हरकत करेंगे. वे सचमुच ही गरीब हैं, जरूर किसी मजबूरी में इन्होंने ऐसा किया होगा. इन्हें छोड़ दो."

होम्स ने बूढ़े को जोर से एक ओर धकेल दिया. वृद्ध लड़खड़ाया और संभलकर एक कोने में खड़ा हो गया, लज्जित, कांपते हुए. उनकी आंखों से आंसू लुढ़क रहे थे और उन्होंने केतन को उन्हें रिहा करवाने के लिए धन्यवाद दिया.

केतन को यह सब चमत्कार ही लग रहा था. सिर्फ शरलॉक होम्स ही ऐसा कर सकता था. उसने यह बूझने की कोशिश की कि शरलॉक होम्स को सही अंदाज कैसे हो गया. लौटते हुए, सारे रास्ते वह सभी संभावनाओं पर विचार करता रहा पर निष्कर्ष कुछ न निकला.

घर पहुंचकर वे जब आराम से बैठे तो केतन ने बात आरंभ की, "मि. शरलॉक होम्स, यह तो अविश्वसनीय है. तुमने तो चमत्कार कर दिखाया. मुझे तो हैरानी..."

"अरे नहीं! डा. वाटसन, यह तो अति साधारण है. ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैंने तुम्हें पहले नहीं बताया है." होम्स ने हाथ हिलाते हुए केतन को चुप करा दिया. परंतु वह काफी खुश नजर आ रहा था. उसकी आंखें चमक रही थीं. गाल लाल हो गये थे.

हालांकि, अपने आप को फिर से डा. वाटसन संबोधित किया जाने

पर मन ही मन केतन झुंझला उठा था पर अपने चेहरे से उसने कुछ प्रकट न होने दिया और खुशामदी लहजे में होम्स से बोला, "लेकिन, होम्स, तुम्हें ठीक सुराग का पता कैसे चला? मैंने तो बहुत चेष्टा की परंतु कुछ भी समझ नहीं पाया."

रोबॉट अपने दांत दिखाते हुए मुस्कराया जैसे वह अत्यंत प्रसन्न हुआ हो. उसने कहा, "डा. वाटसन, इस केस में कुछ भी नया नहीं है. यह तो अति साधारण केस है. इस प्रकार के केसों में बस जरा चौकन्नी नजर होनी चाहिए. अपने आसपास ध्यान से देखो और सोचने की चेष्टा करो कि उनसे क्या निष्कर्ष निकल रहा है. उसके बाद इन निष्कर्षों की एक-एक कर जांच करो. हो सकता है कि संयोग से भी तुम्हें सही सुराग का पता पहली ही बार में चल जाये.

"अब तुम्हें जिमी के बारे में ही बताऊं. हालांकि उसकी गले की जंजीर टूटी हुई थी, परंतु मुझे संदेह था कि यह काम जिमी के दांतों का नहीं है. इस पर यकीन मुझे कुत्ताघर में पाये गये निशानों को देखकर हो गया. जब यह पक्का हो गया कि जंजीर किसी और ने तोड़ी है तब प्रश्न यह उठता है कि जिमी को कौन ले जाना चाहेगा? इसका उत्तर मुझे आतशी-शीशे द्वारा पाये गये जिमी के कुछ बालों से मिला. बाल की लंबाई और महीनता से मुझे पता चला कि जिमी स्पेनिश जाति का है यानि स्पेनियल.

"अब मैंने एक वन्य जीवन विशेषज्ञ से फोन पर बात की. उसने बताया कि स्पेनियल कुत्ते धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं. हमारे शहर में सिर्फ दस स्पेनियल हैं. इनमें से सात विभिन्न पशुशालाओं में हैं और बाकी तीन घरों में. इससे मुझे जिमी के महत्व का पता चला. अर्थात् यह अच्छे दामों में बिक सकता है.

"मैंने फटाफट तमाम पशुशालाओं को फोन किया और यह जानना चाहा कि क्या उनमें से किसी में भी पिछले दो दिनों में कोई स्पेनियल लाया गया है. एक ने हां में उत्तर दिया. वहां के इंचार्ज ने बताया कि उनके पास एक स्पेनियल आया है परंतु उसे लाने वाले को पैसों का भुगतान नहीं किया गया है. कुत्ते के रंग वगैरह की जानकारी से मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि वह जिमी ही होगा क्योंकि मैं उसके बाल देख चुका था. बस! मैंने इंचार्ज से कहा कि जैसे ही वह व्यक्ति पैसे लेने आये, वे मुझे फोन कर दें. इसके बाद जो हुआ वह तो तुम जानते ही हो. है न साधारण-सी बात?"

"खैर, अब तो यह बहुत आसान लगती है." केतन ने कहा, परंतु वह मन ही मन आश्चर्यचकित था. वह स्वयं कुछ भी सुराग पाने में असमर्थ रहा था. उसने महसूस किया कि जिमी को ढूंढने के लिए उसने शिकारी कुत्तों का तरीका अपनाया था, आदमियों का नहीं. उसे यह भी पता चल गया कि वह क्यों असफल रहा था. उसने अभी तक यही सोचा था कि उसका कुत्ता केवल उसके लिए ही मूल्यवान है. किसी और के लिए नहीं. और पैसों की बात तो वह सोच भी नहीं सकता था.

"तुम सचमुच अपूर्व बुद्धि वाले हो, मि. होम्स." केतन बोल उठा.

"क्या मैं तुम्हारी और कोई सेवा कर सकता हूं, डा. वाटसन?" होम्स ने मुस्कराते हुए पूछा.

"अभी तो नहीं. वैसे मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूं कि मैं केतन हूं, तुम्हारा मित्र डा. वाटसन नहीं. यहां तुम मात खा गये." केतन ने ठंडे स्वर में कहा.

"नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है?" होम्स ने अविश्वास से कहा, "मुझे बहकाओ मत. डा. वाटसन ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसे मैंने साथ रहने का अवसर दिया है, किसी और को नहीं. और इसके अलावा..."

"अलावा-वलावा कुछ नहीं मि. होम्स," केतन ने टोक दिया, "तुमने बहुत बड़ी भूल कर दी है."

"नहीं, नहीं," अब होम्स परेशान हो उठा, "मैं गलती पर हो ही नहीं सकता. मेरी जासूसी क्षमता मुझे बता रही है कि तुम डा. वाटसन ही हो. मेरी क्षमता, जिसने इतनी सारी समस्याओं का समाधान किया है, इस प्रकार घटिया तरीके से मुझे धोखा कैसे दे सकती है? नहीं, नहीं, यह असंभव है. तुम मुझे बेवकूफ बना रहे हो. तुम डा. वाटसन ही हो." होम्स ने निश्चयात्मक स्वर में कहा.

"नहीं मैं डा. वाटसन नहीं हूं," केतन अब अधीर हो गया. "मेरे पास कई प्रमाण हैं. आओ, मैं तुम्हें अपना स्कूल का परिचय पत्र दिखाऊं. लगता है तुम्हारी जासूसी शक्ति गड़बड़ा रही है."

होम्स चुपचाप केतन की मेज तक उसके पीछे-पीछे चला आया. केतन ने दराज खोलकर अपना परिचयपत्र निकाला.

"लो, देखो. मेरी फोटो है और साथ में लिखा है — मास्टर केतन, कक्षा VIII, सेक्शन-डी, पब्लिक स्कूल नं. 3208. अब बताओ, तुम्हारी जासूसी शक्ति कहां है, मि. होम्स!" केतन ने जीत से उल्लसित स्वर में पूछा.

रोबॉट का चेहरा पीला पड़ गया. उसने फोटो को ध्यान से देखा और उसकी आंखें निस्तेज हो उठीं. और, अचानक केतन को आश्चर्यचकित करता हुआ, वह लड़खड़ाने लगा, कठपुतली की तरह. और फिर पृथ्वी पर गिर पड़ा. धड़ाम!!!

ओह! यह तो हार्ट अटैक है. ओह! मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था. मुझे ऐसा....हे भगवान! केतन अविश्वास से चिल्ला उठा. वह गिरे हुए रोबॉट पर झुका और उसकी नब्ज टटोलने लगा. पर वहां तो न नब्ज का पता था, न कलाई का. बल्कि शर्ट की बांह के नीचे एक धातु की पट्टी उसके हाथ में आयी. एकाएक उसे अपनी भूल का एहसास हुआ. 'शरलॉक होम्स' हाड-मांस का बना प्राणी थोड़े ही था, वह तो एक यांत्रिक रोबॉट था. यह हार्ट अटैक नहीं था, कोई यांत्रिक गड़बड़ी थी.

केतन ने रोबॉट के पुर्जे अलग-अलग किये और जिस डिब्बे में वह रोबॉट को लाया था, उसी में भरकर, उस दुकान की तरफ चला, जहां से उसने इसे खरीदा था.

"मैं यह शरलॉक होम्स का रोबॉट कल आपके यहां से खरीदकर ले गया था. कृपया इसकी मरम्मत कर दीजिए." केतन ने काउंटर पर बैठे व्यक्ति से कहा.

उस व्यक्ति ने रुखाई से कहा, "क्या आपने हमारी विक्रय नियमावली नहीं पढ़ी थी? इसमें साफ लिखा है कि हम रोबॉट की मरम्मत नहीं करते."

कुछ दिनों के बाद, केतन की भेंट अपने दोस्त सुमित से हो गयी.

"सुमित, क्या तुम किसी ऐसी दुकान का पता जानते हो जो रोबॉट की मरम्मत करता हो? मेरा रोबॉट शरलॉक होम्स अचानक चलना बंद हो गया है."

"शरलॉक होम्स? बंद हो गया? तुमने जरूर उसको यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की होगी कि तुम डा. वाटसन नहीं हो."

केतन हतप्रभ रह गया. □

अनुवाद : चित्रा रानी सहाय

चलते-चलते

एक मां को अपने बड़े बेटे पर बहुत गर्व था कि उसने अपना जीवन जला कर भाई-बहनों को पाला, उन्हें किसी लायक बनाया.

वह मां एक दिन अपने उसी सदाचारी बेटे से कह रही थी, 'बेटा! तेरा बाप मूर्ख था. वह अपने भाई-बहनों पर खूब पैसा खर्च करता था और हम घर में बड़ी मुश्किल से गुजारा करते थे.'

उसी समय वहां उसके उसी सदाचारी बेटे की पत्नी खड़ी थी जो कि गर्भवती थी. —प्रदीप भगवानी

राजस्थान साहित्य अकादमी, साहित्य अकादमी फणीश्वरनाथ रेणु, सूर्यमल्ल विष्णुहरि डालमिया आदि पुरस्कारों से सम्मानित हिंदी, राजस्थानी के कथाकार.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन

संपर्क : आशालक्ष्मी, नया शहर, बीकानेर

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

सर्वोच्च शिखर

वह उबर नहीं पा रही थी, अपने भीतरी जद्दोजिहाद से...उसने एक आम आदमी की हैसियत से उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे व्यक्ति को सुख-दुख का जायजा लिया तो उसे लगा कि....

वह आरती गुप्ता...एक प्रोफेशनल डाक्टर.....जानी-मानी डॉक्टर, भयंकर गरीबी से उबरकर कड़े संघर्ष और अपूर्व मेधा के बल पर उत्कर्ष के शिखर तक पहुंचनेवाली एक सफल महिला. सारा बचपना, किशोरावस्था और आरंभिक यौवन अभावों के साये में बीते. ...पर डाक्टरी पास करते-करते सहसा उसका परिचय प्रोफेसर सुदर्शन मनीष गुप्ता से हो गया और यह परिचय घनिष्टता में बदलता हुआ अंत में परिणय में बदल गया! ...परिचय, प्रणय और परिणय के दौरान वह मनीष पर सभी दृष्टियों से हावी हो गयी थी.

वह मनीष से संतुष्ट थी. मनीष शांत प्रकृति का था. उस पर आरती काफी हद तक हावी थी. आरती ने छोटा-सा क्लिनिक खोल लिया था. क्लिनिक चलने लगा. यहां दोनों ने एक दूसरे के विचारों की रक्षा की. यानी पेशे के मामले में दोनों में तटस्थता थी. यानी कोई किसी की कार्यपद्धति में हस्तक्षेप नहीं करता था. आरती में पेशे के मामले में एक क्रूर दृढ़ता थी. वह बिना पैसे किसी मरीज को दवा नहीं देती थी. पहले पैसा दो फिर दवा लो. उसकी इस प्रवृत्ति की मनीष कभी-कभार थोड़ी-सी आलोचना कर देता था तब उसे आरती से उपदेश सुनना पड़ता था. आरती अत्यंत ही विषाक्त स्वर में कहती थी, "जैसे घोड़ा घास से दोस्ती कर लेगा तो खायेगा क्या? वैसे ही मरीज से डाक्टर दोस्ती कर लेगा तो अपना गुजर-बसर कैसे करेगा? ....जानते हो शादी के पहले हम दोनों ने एक-दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया था."

मनीष की आंखों में एक उलाहना दपदपाता था. वह किंचित अकुलाहट से बोलता, "आरती! डाक्टरी का पेशा लोहे-चमड़े का व्यापार तो नहीं है. इसके साथ जीवन-मृत्यु जुड़ी हुई है. तुम्हारी क्रूरता व रूखापन किसी की जान भी ले सकती है....

पर आरती निरुत्तर रहती. उसे तो पैसे की बीमारी-सी हो गयी थी. उसके भीतर की सारी करुणा, संवेदना और सहृदयता जैसे पथरीली बन गयी थी. धीरे-धीरे उन दोनों के बीच विरोध जन्मता गया. जब मनीष बहस के जाल फैलाने लगता और उसे इस बात को मानने के लिए बाध्य करने लगता कि इस पेशे में मानवीय दृष्टि का बिल्कुल परित्याग एक राक्षसी प्रवृत्ति है तो आरती उसे झिड़कते हुए कहती, ''आजकल तुम अकारण ही मुझे उपदेश देने लगते हो. ...तुमने उन अभावों की दरिंदगी को न देखा है और न भोगा है. यदि कुछ अर्से ही भोग लेते तो मुझे हताश करने की बजाय उत्साहित ही करते. ....मनीष! इस क्लिनिक का संचालन मेरे जिम्मे है. ...मैं इसकी व्यवस्था में तुम्हारा हस्तक्षेप नहीं चाहती. अरे! यह हमारा देश है न, इसकी अपनी निजी मौलिक पहचान इतिहास की चीज हो गयी है साथ ही यहां के व्यक्ति के गुणों के आधारवाली पहचान भी खो गयी. ...पैसा आदमी की सबसे बड़ी शक्ति और पहचान है. ...मनीष! तुम पांच-सात साल बिल्कुल मत बोलो. फिर यदि तुम कहोगे तो मैं एक धर्मशाला बनवा दूंगी. धर्म का धर्म और नाम का नाम!''

''वाह! अपने आपसे यह कितना बड़ा मजाक है?'' वह व्यंग्य से मुस्कराकर बोला. ''लोग कहेंगे कि नौ सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली.''

आरती ने भड़कते हुए कहा, ''ठीक है, पर मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगी. तुम्हारी तनख्वाह से तो घर के नमक-मिर्च भी नहीं आते.''

मनीष ने इस आरोप को अनिच्छा से स्वीकार करते हुए कहा, ''यह मेरी तनख्वाह का दोष नहीं है. यह हमारी जीवनपद्धति का दोष है. मेरे कई सहकर्मी अपनी तनख्वाह से सारी गृहस्थी का रथ चलाते हैं. देखो आरती, केवल पैसा ही जीवन का मूल नहीं है. सुनो, हम लोगों को एक साथ सोये हुए कितने दिन हो गये हैं. ऐसा नहीं लगता कि पति-पत्नी होते हुए भी हम अजनबी हो गये हैं! हमारे बीच गृहस्थ धर्म की सारी मर्यादाएं व परंपराएं खत्म हो गयी हैं. सुबह से लेकर दूसरी सुबह तक हम यदा-कदा एक-दूसरे की शक्ल देख लेते हैं. क्या स्वाभाविक जीवन जीने के लिए इतना ही काफी है?''

''मैंने कब तुम्हें मना किया है.'' वह झल्लायी.

''यांत्रिक सह वास मनुष्य नहीं कर सकते.'' मनीष ने कहा. ''मैं तो एक भावुक आदमी हूं. तुम्हारे और मेरे बीच के संबंधों का आधार भावुकता और समान विचार है न कि पैसा!''

''तुम वस्तुत: अजीब ढंग से सोचने लगे हो, मनीष. ...सिर्फ पांच-सात साल की ही बात है. फिर सब ठीक हो जायेगा. मैं तुम्हारी सारी शिकायतें दूर कर दूंगी. बस, पांच-सात साल गम गिटलो. प्लीज!'' उसकी आंखों में याचना थी.

''क्यों?'' मनीष ने तड़पकर कहा, ''यौवन का एक-एक पल जाकर नहीं लौटता!''

''प्लीज....धीरज रखो.''

और मनीष ने मौन धारण कर लिया. वह जान गया कि आरती इस बीमारी से मुक्ति नहीं पा सकती.

फिर क्लिनिक एक छोटे साम्राज्य में बदलने लगी. एक लड़के को जन्म देने के सात साल में आरती क्रमश: दो बड़े नर्सिंग होम की मालकिन हो गयी.

अपने नये अभियान के दौरान उसने एक शानदार कोठी पॉश कालोनी में बना ली. तीन-तीन कारें. नौकर-चाकर! एक समृद्ध संसार!

आरती गुप्ता के अस्पतालों में अब गरीब का प्रवेश निषिद्ध-सा हो गया था. वैसे ही उसका चौकीदार अपनी छोटी-छोटी आंखों में एक अजीब-सी उपेक्षा और अवहेलना के भाव लाकर गरीब मरीज को इतनी तीखी निगाह से देखता था कि वह बेचारा सहमकर लौट जाता था. यदि कभी किसी ने भीतर जाने की हिम्मत भी कर ली तो वह बिगड़ैल कुत्ते की तरह गुर्राकर कहता, ''यह खैराती अस्पताल नहीं है भैया, यहां हजार-दो हजार रुपयों के बिना घुसना नहीं.'' ...कभी कभी वह चौकीदार बाज की तरह निर्मम होकर किसी आगंतुक मरीज पर झपटता और संयोग से आरती आ जाती तो उसके अधरों पर एक रक्तरंजित अर्थभरी मुस्कार नाच जाती जैसे वह अपने चौकीदार को शाबासी दे रही हो.

इस बीच मनीष आरती से बिल्कुल अजनबी हो गया था. वह आरती को लेकर इतना उदास व विरक्त हो गया था कि नौकरी के अलावा वह सिर्फ एक काम करता था, वह भी अत्यंत ही गुप्त रूप से; नर्स सौदामिनी से प्यार. पत्नी की विपुल अर्थ-जिजीविषा, अन्यायपरक कार्यपद्धति, क्रूरता भरा व्यवहार और पेशे को केवल उपार्जन का साध्य मानकर एक गतिमान जड़ता से घिरे रहने की स्थिति ने उसमें एक अदृश्य अलगाव को जन्म दे दिया था. वह कई बार सोचता था कि आरती में निर्मम आदिम प्रवृत्तियां हैं जो समय की बर्बर संस्कृति का चोगा पहन चुकी हैं. यह पूंजी व यंत्र की दोगली संतान बन गयी है.

उस दिन आरती ने उससे अनुरोधपूर्ण स्वर में कहा, ''मैं तुमसे विनती करती हूं कि तुम अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दो.''

''क्यों?'' वह चौंका.

''इसकी जरूरत ही क्या है? हमारा अपना काम है. आजकल बाहरी आदमियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता.'' न जाने क्यों अनायास ही आरती के मुंह से हठात् निकल गया, ''तुम अपनी तनख्वाह के दुगने रुपये ले लेना.''

मनीष ने एहसास किया कि जैसे आरती ने उसके गाल पर चांटा मार दिया है. वह उत्तेजित होकर बोला, ''मैं तुम्हारी नौकरी करूं?''

आरती जैसे अपनी भूल का एहसास करती हुई बोली, ''नहीं नहीं, मेरे कहने का मतलब यह नहीं था.'' वह एकदम विनम्र होती हुई फिर बोली, ''मैं तो चाहती हूं कि जब घर में काम है तो बाहर क्यों नौकरी की जाये?''

''मैं तुम्हारी नीयत समझता हूं. पर मैं तुम्हारी दुनिया में नहीं आऊंगा?'' उसने तिक्त स्वर में नाक फुलाकर कहा.

वह झल्लायी, ''ओह! तुम मुझे समझते क्यों नहीं? तुम सदा एक लिजलिजी भावुकता से घिरे रहते हो. उन आदर्शों की अर्थी उठाये हुए हो जिनकी अब कोई उपयोगिता नहीं है. फिर क्या मैंने इतने रुपये केवल अपने लिए कमाये हैं. सुख-वैभव तो हम सारे लोग ही भोगते हैं.''

वह भेदभरी मुस्कान के साथ संयत स्वर में बोला, ''मैं तो यही समझता हूं कि यह सारा रुपया तुम अपने व अपने बेटे के लिए ही कमा रही हो. मैं तो सामान्य जीवन जीता हूं. मुझ पर मैं जितना कमाता हूं, उतना ही खर्च नहीं होता.''

''तुम्हें इधर क्या हो गया है? क्यों मुझसे असहयोग करते हो? क्यों मुझे पीड़ा देते हो? आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूं.'' वह लगभग पांव पटकती हुई चीख-सी पड़ी.

मनीष ने खड़े होकर झाड़फानूस को देखा. फिर जैसे वह किसी बैरक के बंदी की तरह कमरे में इधर-उधर चक्कर निकालकर बोलता गया, ''यह कौन-सी घटिया मानसिकता, बंधन, जुड़ाव या विवशता है कि आदमी अपनी समस्त इच्छाओं के विरुद्ध जीता है. जिसे प्रेम करना बंद करके भी उस प्रेम का अभिनय करता है. वस्तुत: मैं अब संबंधों को नहीं, रूढ़ियों को जी रहा हूं, तुम मेरे लिए रूढ़ी हो और मैं तुम्हारे लिए. ...अब कितना वैचारिक अंतर हो गया है तुम में और मुझ में. ...सुबह से शाम तक...पैसा...पैसा.... जानती हो, कल अपने एकमात्र बेटे

शिरीष ने क्या पूछा, 'पापा! क्या ममी रात को सोती भी हैं!' ...क्या जवाब देता मैं उसको? ...कहता कि तेरी ममी तेरे लिए एक सोने का महल बनाना चाहती है. प्राचीन आख्यानों में वर्णित सोने का महल. और सोने का महल बनानेवाले को पहले चांदी की नदी की रचना करनी पड़ती है. ...चांदी की नदी की रचना के लिए एक लंबी यांत्रिकता भरा जीवन जीना पड़ता है."

आरती ने उसे हिकारत से देखा और कहा, "तुम...तुम मुझसे बगावत कर रहे हो? ...करोगे क्यों नहीं. ...पर मैं जानती हूं कि मैंने अपना यह साम्राज्य कितनी मेहनत और कितनी कठोरता से प्राप्त किया है....मनीष! इधर तुम्हें मुझसे ईर्ष्या होती जा रही है. क्यों हमारी जमी जमायी व्यवस्था को बिगाड़ रहे हो?"

वह तड़प उठा. उसने एक दर्दभरी निगाह, वह भी उचटती हुई उस पर डाली. एक अजीब से एहसास को पीते हुए उसने कहा, "जो व्यवस्था जड़ता का रूप ले लेती है, उसका नष्ट होना ही जरूरी है. कभी-कभी बाहरी गतियां भीतर की सारी गतियों को मार देती हैं. मुझे लग रहा है कि मेरे भीतर एक बिखराव-सा आने लगा है और कोई नयी तलाश भी शुरू हो गयी है."

वह उसकी दार्शनिकता भरी लंबी बातों से ऊबने लगी. उसके पास इतना वक्त नहीं था. उसने सोचा कि उसके अस्पताल में मरीजों की भीड़ लग गयी होगी. कौन-सा डाक्टर इस समय आ गया होगा और किसको गैरहाजिर डाक्टर की ड्यूटी पर लगाना होगा, कौन से आप्रेशन होने हैं और कौन से मरीजों को छुट्टी देनी है, ये सारी व्यवस्थाएं उसे ही करनी पड़ती हैं.

वह झटके के साथ उठी और चलते-चलते उसकी आकृति पर एक पथरीली परत जम गयी. फिर उस परत में कई तरेड़ें होने का आभास हुआ. वह अत्यंत ही सख्त स्वर में बोली, "मैं तो समझती थी कि तुम जीवन के हर मोड़ पर मेरा सहयोग करोगे पर तुम...ठीक है, तुम जो मर्जी में आये करो पर कम से कम शिरीष की तो देखभाल कर लिया करो."

उसके सिरहाने एक पेंटिंग टंगी हुई थी. उसमें घने जंगल में एक शेरनी को अपने बच्चों के संग दिखाया गया था. उस पर दृष्टिपात करके मनीष अर्थभरी मुस्कान के साथ बोला, "सैकड़ों की देखभाल करने वाली डाक्टर साहिबा क्या अपने एक बच्चे की देखभाल नहीं कर सकती?"

"ओह! तर्कों के सिवाय तुम्हारे पास कुछ रह ही नहीं गया है. लोग अपनी उन्नति से खुश होते हैं और एक तुम...." वह पीड़ार्जनित आवेश में कराह उठी.

वह चलने लगी तब उसका चेहरा एकदम सपाट था.

अस्पताल में जबरदस्त गहमागहमी. तरह-तरह की आकृतियां और आवाजें.

यमदूत की तरह निर्मम चौकीदार.

एक बुढ़िया उसके पास अपना सिर झुकाए बैठी-बैठी खामोश सुबकियां ले रही थी. चौकीदार पर उसकी बेहाली का कोई असर नहीं था. वह एक सख्त तटस्थता से घिरा हुआ था. बुढ़िया के पास उसकी उदास बहू निस्पंद-सी बैठी थी. ...वहां उसका अचेत बेटा एक गंदी दरी पर मुर्दा-सा पड़ा था.

चौकीदार ने उन्हें आते ही बता दिया था, "यह धर्मार्थ अस्पताल नहीं है. ए बुढ़िया, अपने बेटे को लेकर किसी सरकारी अस्पताल में क्यों नहीं चली जाती! वहां हर चीज मुफ्त में मिलती है."

बुढ़िया ने आर्त्तस्वर में कहा था, "सरकारी अस्पताल में हम गरीबों को कुछ नहीं मिलता. मेरे एक ही बेटा है. पिछले साल ही उसकी शादी की है. मेरे बेटे का इलाज करवा दीजिए. मैं अपने गांव का घर-खेत बेचकर आपकी पाई-पाई चुका दूंगी. बेटा नहीं तो घर-खेत कैसे?"

समीप बैठे एक मरीज ने बुढ़िया की ओर करुणा भरी नजर से देखकर सख्त स्वर में कहा, "भाई! इस अस्पताल में सांस लेने की भी फीस लगती है."

तभी आरती पहुंच गयी. किसी ने बुढ़िया को संकेत किया कि यही मालकिन है.

बुढ़िया में अनायास शक्ति आ गयी. वह लपककर उसके सामने आयी और पांवों में लोटकर फूट-फूटकर रो पड़ी, "डागधरनी जी! मेरे बेटे को बचा लीजिए...मेरे एक ही बेटा है ....भगवान के लिए....."

उसका एक-एक शब्द दर्द से पिघला हुआ था. वह प्रार्थनाएं करती ही जा रही थी.

आरती ने अत्यंत ही गंभीरता से कहा, "पैसे जमा कराके मरीज को भीतर ले आ."

"मेरे पास पैसा नहीं है....मैं आपकी पाई-पाई चुका दूंगी...अपना घर, खेत बेचकर...भगवान के लिए मेरे बेटे को..." प्रार्थनाओं के साथ आंखें भर आयीं.

आरती का चेहरा एक कठोर पाशिवकता से घिर गया. एक क्रूर तटस्थता उसकी आंखों में दहक उठी. तिरस्कार व उपेक्षा का मिला-जुला भाव लाकर वह बोली, ''सॉरी...यहां के नियम नहीं बदले जा सकते. यह खैराती अस्पताल नहीं है.''

वह अपना हाथ हवा में लहराते हुए भीतर चली गयी.

बुढ़िया के भीतर आहत व हताश मन का आक्रोश व क्रोध भड़क उठा. वह दोनों हाथ उठाकर चीखी, ''तेरा सत्यानाश हो...तुझ पर भी ऐसी ही बीते....तू औरत नहीं डायन है. भगवान से डर...''

चौकीदार आक्रमण की मुद्रा में खड़ा हो गया.

तभी बुढ़िया अपने बीमार बेटे को फिर ठेले में डालकर घुमावदार रास्तों में विलीन हो गयी.

अजीब-सा ठहराव आ गया था.

आरती के दिल पर यह सुनकर गहरा आघात लगा कि मनीष घर छोड़कर चला गया है. उसके कानों में इस बात की भनक भी पड़ी कि वहां कभी-कभी सौदामिनी भी जाया करती है. उसके अस्पताल की एक साधारण नर्स.

उसका खून खौल उठा. वह क्रोध व तनावों में घिरती गयी. एक बार उसने अपनी समृद्धि के बारे में सोचा. वह अपने रंग-रूप की तुलना सौदामिनी से करने लगी. सौदामिनी उसके सामने क्या है? ...इतनी साधारण लड़की के पीछे मनीष पागल है. उसे छोड़ रहा है वह... क्या स्तर है उसका? उसका मन मनीष के प्रति एक शिकायत भरी वितृष्णा से भर गया. ...वह सोचने लगी कि वह मनीष जो शादी से पहले सदा उसकी हां में हां मिलाता था, जरा भी तर्क-वितर्क नहीं करता था, शादी के बाद उसमें, विद्रोह-विरोध के बीज कैसे अंकुरित हो गये? उसने उसके कारणों को ढूंढ लिया. वह सौदामिनी के चक्कर में आ गया. सौदामिनी ने उसे अपने देह मंदिर का पुजारी बना लिया है. देह मर्द की जबरदस्त कमजोरी है. ...पर मैं जब कभी उसके पास जाती हूं तो वह फिर इनकार क्यों करता है? ...और एक दिन तो वह उसके समर्पण आग्रह पर बोला था, ''बर्फ की तरह ठंडी और यंत्रवत औरत क्या मन की तुष्टि दे सकती है? तुम औरत से कुछ और होती जा रही हो.'' ...इस और को वह पारिभाषित नहीं कर सकी थी. उस दिन वह एक अपमानजनित अनजानी पीड़ा से आहत हो गयी थी. वह रात भर दुश्चिंताओं से घिरी रही. अपने और मनीश के संबंधों का विश्लेषण करती रही. फिर उसने सोये-सोये घृणा व दंभ से कहा, 'माई फुट! मैं उसकी परवाह क्यों करूं? मैं कोई उसकी गुलामी कर रही हूं क्या?...सब कुछ उन्हीं के लिए कर रही हूं. ...जो भूख, गरीबी, अभाव, अभियोग और अनादर मैंने सहे हैं, कम से कम....ये तो वे न सहें?...'

भोर हो गयी. चमकीली धूप पतझड़ के एक मेघ-खंड की चिंता किये बिना उससे छन-छनकर आ रही थी. मनीष बरामदे में बैठा हुआ उस मनोरम दृश्य को देख रहा था.

जब सूर्य को मेघ-खंड ने ढंक लिया तो एक अत्यंत ही आकर्षक चित्र उभर आया. ऐसा लगा कि जैसे कोई किरणों का झरना फूट पड़ा हो.

वह मनीष से बिना बोले ही चली गयी.

दूरियां उनके बीच दिन ब दिन बढ़ती गयी.

आरती उसके प्रति और लापरवाह हो गयी. एक उपेक्षा भरा दंभ जनम आया उसमें. कैसे त्रस्त करे, ऐसा भी वह यदा-कदा सोच लेती थी. उसे विश्वास था कि इतने वैभव व समृद्धिमय जीवन को मनीष नहीं त्याग सकता. पैसा आज का सुख है, परमेश्वर है, सर्वनियंता है. ...एक दिन मनीष का सारा अभिमान खंड-खंड हो जायेगा.

उसमें खालीपन भर गया लेकिन वह भी थोड़ी देर के लिए. उसने अपने अंदर की कमजोरी पर काबू किया. फिर बहुत गहरे में पराजय का एहसास करती हुई वह दंभ से अपनी खास सहेली डा. विनीता से एक सवाल के जवाब में बोली, ''मैं उसकी खरीदी हुई बांदी नहीं हूं. वह जायें तो जायें. ...मेरे पास सब कुछ है. पैसा, बेटा और मान-सम्मान. वह उस दो कौड़ी की नर्स के साथ गलत और आवारा जीवन जीना चाहता है तो जिये.''

फिर भी विनीता काफी सोच-समझकर मनीष के पास गयी. वह चाहती थी कि कोई समझौता हो जाये. पति-पत्नी का यूं अलग होना कोई अच्छी बात नहीं थी. दोनों की ही सामाजिक प्रतिष्ठा पर प्रश्न चिह्न लगेगा. रंग-बिरंगे धब्बे उभरेंगे.

विनीता ने बिना किसी भूमिका के मनीष से सीधा प्रश्न किया, ''आप इस तरह घर छोड़कर चले आये, क्या उसे आप ठीक समझते हैं?''

''बिल्कुल ठीक समझता हूं. आत्मपीड़ा और आत्मवंचना मेरे लिए असहाय हो गयी थी. मैं बुद्धिजीवी हूं, सोचता-समझता हूं. ...मुझे सभी तरह की भूख लगती है. ...हर भूख पैसे से नहीं बुझायी जा सकती. फिर पत्नी के होते हुए कुछ भी मर्यादा के बाहर करने पर मुझे अपराध-बोध का अनुभव होता है इसलिए मैं चाहता हूं कि जो लादा-लादा-सा है, उसे उतार फेंकूं. कुछ भी करूं—वह स्वस्थ हो, मूल्यहीन न हो? ...सोचो विनीता, आरती दंभ, तानाशाही और पैसे की प्रतिमूर्ति बनती जा रही है. कहूं कि वह असंवेदनशील होती जा रही है. उसे मेरी भावनाओं, विचारों व जरूरतों की परवाह ही नहीं है और आदमी का मन एक पूर्णता की तलाश करता रहता है, एक नर एक पूर्ण नारी की और एक नारी पूर्ण पुरुष की. सदियों से यह तलाश जारी है इसलिए हमारे आसपास और इतिहास में रानियों और सेठानियों की बेटियां दीन-निर्धन पात्रों के साथ भाग खड़ी हुई. कृष्ण राधा की पूर्णता थी और संयोगता पृथ्वीराज की. वर्ना न तो परिणीता राधा कृष्ण के लिए भागती और न संयोगिता अपने राजा बाप का परित्याग करती. इसे हमें केवल भावुकता भरी सतही बात नहीं समझना चाहिए बल्कि इसे एक तलाश समझना चाहिए—पूर्णता की तलाश.''

''आप एडजेस्टमेंट क्यों नहीं करते?'' उसने दबाव देते हुए स्वर में कहा, ''यह युग की मांग है. यह आपके परिवार के हित में भी रहेगा!''

''आकाश-पाताल के बीच एडजस्टमेंट नहीं हो सकता. हम दोनो की सोच इधर सर्वथा भिन्न हो गयी है. उसे एक गुलाम चाहिए जो केवल उसके फैलते हुए साम्राज्य की रक्षा कर सके. पर मेरी बौद्धिकता इसे स्वीकार नहीं करती. विनीता जी! लगता है कि मेरे भीतर अनेक तृष्णाएं इकट्ठी हो रही हैं. ये तृष्णाएं मुझे कभी तनावों से घेर लेती हैं और कभी मुझमें खालीपन भर देती हैं. कभी निरर्थकता का बोध भी कराती हैं तो कभी विद्रोह का. भीतर भीड़ है तृष्णाओं की.''

''पर एक साधारण नर्स...?'' उसने वाक्य को कै की तरह उगला.

''जीवन के सभी आयामों में सामान्यता ही अधिक सही है.'' मनीष ने जैसे भीतर से आहत होते हुए कहा, ''इतने पैसे का हम करेंगे क्या? ले-देकर एक बच्चा है हमारे, उसे हम काबिल बनाने की बजाये लाखों रुपये का बोझ ढोने वाला जानवर बना दें यह कहां की समझदारी है? मनुष्य के लिए उसकी योग्यता ही काम आती है. ज्ञान ही आधारभूत संबल होता है और हमारा केवल एक बेटा हम दोनों के प्यार से वंचित रहकर तरह-तरह के नौकरों से घिरा रहता है. वह जीवन में सिवाय हुक्म चलाने के अलावा क्या सीखेगा? उसने मुझे तो तोड़ा है सो तोड़ा ही है, साथ ही वह हमारे बेटे शिरीष को भी तोड़ डालेगी.''

''फिर मैं क्या कहूं उसे.'' उसने निर्णय सुनने की मुद्रा में कहा.

''उसे कहना कि वह तलाक ले सकती है. वैसे मैं तलाक लेना चाहता भी हूं क्योंकि मैं सौदामिनी से शादी करूंगा.''

विनीता ने लौटकर सब कुछ बताया तो आरती बारूद की तरह फट पड़ी, ''वह मेरी उन्नति से जलने लगा है. यदि वह तलाक लेना चाहता

है तो ले ले. एक दो कौड़ी की नर्स के लिए मुझे छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है. जाये भाड़ में वह!"

विनीता ने दीर्घ निश्वास लेते हुए कहा, "तुम दोनों के विषाक्त संबंधों को देखकर न जाने मुझे क्यों डर लगने लगा है."

आरती ने भड़ककर नाक में बल डालकर कहा, "मैं किसी की परवाह नहीं करती."

विनीता ने उठते हुए कहा, "एक बार फिर से सोचना, विगत का पुनरावलोकन करना... मनीष ने कहा है कि यह बीमार मानसिकता है जो जीवन के अन्य अंगों को अपाहिज कर देती है."

आरती ने मनीष की हर बात को एक चुनौती व धमकी माना जैसे वह उसके बिना जी नहीं सकेगी? वह सब कुछ इसलिए सहती है क्योंकि उस पर पत्नी का एक मुलम्मा चढ़ा हुआ है. वह उसे उतार फेंकेगी. वह स्वयं तलाक ले लेगी. संबंधों के नाम पर अनबंधों को जीना एक आत्म-छल है. वह अपने बेटे को एक काबिल डाक्टर बनायेगी. ...इस साम्राज्य को संभालनेवाला सम्राट! वह मनीष का दर्प चूर्ण कर देगी.

आज कई महीनों के बाद सहसा उसे अपने बेटे शिरीष से भी फुर्सत से बात करने की मन में आयी. उसने विनीता को सारा कार्य सौंपकर कहा कि वह घर से थोड़ी देर में लौट रही है.

वह अपने बंगले आयी. उसका बेटा बैठा-बैठा इतमीनान से जेम्स हैडली चेज का जासूसी उपन्यास पढ़ रहा था. उसने खखारा और आधुनिक स्टाइल में "हेलो" कहा पर शिरीष ने उसकी ओर देखा फिर नजरें झुका लीं. लग रहा था कि वह मां से असंतुष्ट है.

"शिरीष डार्लिंग," उसने स्नेह विगलित स्वर में कहा.

"ओह ममी आप...." उसने अंग्रेजी में कहा, "कैसी हैं? फुर्सत मिली." उसके स्वर में व्यंग्यभरी नाटकीयता थी.

"क्या करूं बेटे? डाक्टरी पेशा ही ऐसा है."

"इस शहर में एक तुम्हीं डाक्टर हो न?"

"बताओ पढ़ाई कैसी चल रही है?" उसने सन्निकट आकर प्रसंग बदलते हुए कहा. उसके चेहरे पर ममता की चमक थी. आंखों में स्नेह का तारल्य!

"पढ़ाई बहुत जोरदार चल रही थी. आजकल मैं दिन में दो उपन्यास पढ़ता हूं. एक जासूसी और एक सामाजिक. बड़ा मजा आता है ममी."

"मैं स्कूली पढ़ाई के बारे में पूछ रही हूं." उसने जरा सख्त होकर कहा.

"वह तो मैंने छोड़ दी." उसने सरलता से जवाब दिया.

"क्या?" वह कल्पनातीत आश्चर्य से चौंक गयी. फिर उसे चक्कर-सा आया और संभलते-संभलते उस पर एक अंधेरे की हलकी परत छा गयी.

"क्या?" जैसे उसे विश्वास नहीं हो रहा है.

"हां ममी. स्कूली पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगता. विशेषतः ज्योग्राफी और मैथ्स में. ये बड़ी बोर होती हैं. फिर ममी, मेरे कई दोस्त कहते रहते हैं कि तुम्हें पढ़कर क्या करना है? लाखों रुपयों के तुम ऐसे ही मालिक हो?...और एक दिन तो ममी मेरे कुछ दोस्तों ने मुझे शराब भी पिला दी."

"शिरीष!" उसकी चीख में असमंजस और हताशपन था.

"ममी, मैं झूठ नहीं बोलता. आप कहती रहती हैं कि सच ही बोलना चाहिए. मैंने सच स्कूल छोड़ दिया है."

उसमें एक विचित्र असहायता आ गयी जो उसे गुस्से व झल्लाहट के बीच झूल रही थी. वह क्या करे और क्या न करे.

उसके बच्चे ने मां के चेहरे की प्रतिक्रियाओं से बेखबर हो पूछा, "ममी, पर मुझे अंग्रेजी का बड़ा ज्ञान हो गया है. खूब पढ़-लिख लेता हूं. ...ममी मैंने एक नावल पढ़ा था—कपल. क्या ममी जिंदगी में ऐसा भी होता है. उसके बारे में मैंने पापा से भी पूछा था. पापा सौदामिनी आंटी के साथ....? क्या सच है ममी.... और...और....तुम....."

उसने अपने सारे परिवेश को नकारते हुए अपने भीतर की सारी ताकत को समेटा और गरांकर एक चांटा शिरीष के गाल पर मार दिया. क्रोध के कारण उसने जो शब्द कहे, वे होठों के बीच बुदबुदाकर मर गये.

शिरीष कुछ नहीं बोला. तमतमाकर अपने कमरे में चला गया. उसने भीतर से दरवाजा बंद कर लिया.

आरती काफी देर तक दरवाजा भड़भड़ाती रही. उसने संबोधन बदल-बदलकर उसे पुकारा पर उत्तर में उसे छोटी-बड़ी सुबकियां ही सुनायी पड़ीं.

आखिर वह निराश हो गयी. उसने नौकरों को आदेश दिया कि वे शिरीष पर निगाह रखें. कहीं गुस्से में वह अनहोनी न कर बैठे.

वह नर्सिंग होम लौट आयी. विनीता ने उसकी ओर ताका फिर वह फाइलों में खो गयी. थोड़ी देर वह बीच-बीच में गुमसुम बैठी आरती को देखती रही फिर विस्मित-सी बोल पड़ी, "अरे! क्या बात है? उदास-उदास-सी क्यों?"

उसने झूठ ही कहा, "मुझे सहसा जबरदस्त थकान महसूस होने लगी है. मैं अभी घर जाना चाहूंगी. तुम सब कुछ देख लेना. मैं यदि न लौटूं तो भी चिंता न करना."

वह उठकर चल पड़ी.

उसने किसी से कुछ नहीं कहा. यहां तक कि चौकीदार से भी. वह आत्मलीन-सी बाहर निकल आयी. उसने रिक्शा लिया और अनेक विचारों में डूबी मनीष के नये घर की ओर चल पड़ी.

बड़ी दूर रिक्शे को ठहराया. पैदल ही चली. पर बरामदे में ही मनीष सौदामिनी को बांहों के घेरे में लिये हुए चूमने की चेष्टा कर रहा था.

वह उबर नहीं पा रही थी—अपने भीतरी जद्दोजहद में. बुत-सी खड़ी रही. फिर उसने रिक्शा लिया और लौट पड़ी. उसने एक आम आदमी की हैसियत से उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे व्यक्ति के महा-दुख का जायजा लिया तो उसे लगा कि सब व्यर्थ है. ...वह सहसा एक ऊब भरे खालीपन से भर आयी और पीड़ा का समंदर उसके भीतर ठाठें मारने लगा. उसने अनंत आकाश की ओर देखा. उसे लगा कि समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर खड़ा एक आदमी चारों ओर आतंकित-सा देख रहा है. नीचे नुकीले पत्थर और भयावह खाइयां हैं, चीखते जंगल हैं और रेंगते सन्नाटे हैं और उसकी नियति वहीं खड़े रहने की है. उन जकड़ावों से कोई त्राण नहीं, कोई मुक्ति नहीं.

उसने एहसास किया कि वह आदमी वह स्वयं है और वह मुर्दा-सी हो गयी. □

चलते-चलते

पत्नी ने सहानुभूति पाने के इरादे से कहा, "...मेरा खयाल है कि मेरे पति आफिस में अपनी स्टैनो से इश्क लड़ा रहे हैं..."

नौकरानी ने कुछ उदास स्वर में कहा, "नहीं, आप मुझे चिढ़ाने के लिए यह सब कुछ कह रही हैं." □

-राजकुमार जैन

नयन यों ही रह गये भूले-ठगे से...
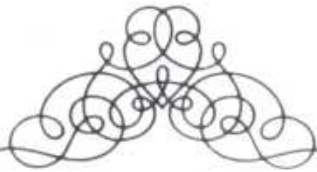
सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय रांगेय राघव की सहधर्मिणी श्रीमती सुलोचना राघव से सावित्री परमार की अंतरंग बातचीत

रांगेय राघव का सृजनकर्मी रूप सभी ने अच्छी तरह जाना समझा है तथा आगे भी जानेंगे-पहचानेंगे, लेकिन एक पत्नी की दृष्टि में एक साहित्यकार, एक पति और एक पिता का इनके प्रति क्या दृष्टिकोण रहा? जिंदगी के धरातल पर उस रूप का क्या मूल्यांकन रहा?...एक बड़े रचनाकार का सामीप्य पत्नी को कैसे-कैसे अनुभव सौंपता है?

पिछले दिनों 'सारिका' के संपादक महोदय श्री अवध नारायण मुद्गल और चित्रा जी किसी निजी यात्रा पर जयपुर पधारे थे. हाथ में केवल डेढ़ दिन और साथ में भाग-दौड़ भरी व्यस्तता. इसी अफरातफरी में छोड़ गये मेरे लिए एक संदेश कि मैं सुलोचना जी से एक अनौपचारिक मुलाकात करूं..कि रांगेय राघव का सृजनकर्मी रूप सभी ने अच्छी तरह जाना-समझा है तथा आगे भी जानेंगे-पहचानेंगे, लेकिन एक पत्नी की दृष्टि में एक साहित्यकार, एक पति और एक पिता का इनके प्रति क्या दृष्टिकोण रहा? जिंदगी के धरातल पर उस रूप का क्या मूल्यांकन रहा? एक रचनाकार का सामीप्य ओढ़कर उन्हें जीवन की हथेली पर कुछ संधि-रेखाएं खींचनी पड़ीं? अपने रचनाकार पति की बौद्धिक-मानसिकता के साथ अपनी अपनी मानसिकता का गठजोड़ क्या संपूर्ण रूप से कर पायीं? और उनके बाद की एक अकेली-लंबी यात्रा? कितने बीहड़? कितने सन्नाटे? कितने मोड़ और वर्तमान का यह पड़ाव! साथ जिये-भोगे अंतरंग क्षणों का दस्तावेज यादों के झरोखों में बैठकर पढ़ना कैसी अनुभूतियां पिरोता है आदि... यह सब लेना है और शीघ्र इस सामग्री को भेजना है.

मैं सक्रिय हो उठती हूं. कहां जाना होगा मिलने के लिए? पता मिल गया है. जवाहर नगर जाकर 2 घ 26 मिलेगा. मकान का नाम है 'भूमिका'.. और मैं फोन पर समय लेने के लिए रिंग करती हूं तो पता चलता है कि वह बाहर गयी हैं. दो दिन बाद आप फोन कर लीजिये. एक दिन और बढ़ाकर फोन करके

समय लेती हूं. स्वर की आत्मीयता पुकारती है कि शाम छः बजे आ जाइये... इंतजार रहेगा. ठीक समय पर मैं 'भूमिका' के सामने पहुंचती हूं. एक बार और सेक्टर-मकान नंबर देखकर आश्वस्त हो-लेती हूं.

हवा में फागुनी बल्हड़ता है. लॉन की दूब पसरा रही है. और 'भूमिका' को घेरे-लपेटे पानी में नहाये फूल-पौदे बड़े ताजा-ताजा लग रहे हैं. चीनी-सी गंध हौले से छू जाती है.

मैं फाटक खोल भीतर जाती हूं. आवाज होती है और सुलोचना जी की बिटिया बाहर आती है. एकदम अपने पिता की अनुकृति. कोई जाते हुए अपनी छवि का पारदर्शी रूप क्या इतने मुक्त-मन से सौंप जाता है?

आइये, अम्मा आपका ही इंतजार कर रही है. वह मुस्करा उठती है. मैं उसके साथ भीतर जाकर बड़े कमरे में बैठ जाती हूं; वह बराबर के कमरे में चली जाती है. शायद खबर देने...

रुचिकर सज्जा से कमरा दीप्त है. एक ओर गोल कलात्मक-रैक और खुली तथा शीशे जड़ी आल्मारियां... वे-विंडो और चौकियां... सभी में रांगेय राघव की पुस्तकें रखी हुई हैं. दीवान तथा जाली की टोकरी में पत्र-पत्रिकाएं और अखबार रखे हैं. एक कोने में चौकी... फूल... इष्ट-प्रतिमा और दायें-बायें चमचमाते कलश... दीवार पर डाक्टर साहब (रांगेय राघव) का चित्र... विशाल भाल... नुकीली लंबी नासिका... हंसती हुई आंखें और ओठों पर बिछलती शांत-संयत स्मिति की महीन-सी रेखा... लगा कि जैसे चित्र से 'भूमिका' पर दिव्य-आशीर्वाद निर्झरित हो रहा हो? कितनी कम आयु हिस्से में मिली और क्षण-क्षण को समेट कर कितना धुआंधार लेखन किया? मन अचंभे के चक्रवात में घिरना ही चाहता है कि सुलोचना जी कमरे में आ जाती हैं. पलकें बड़ी श्लथ हो रही हैं...

ओह! बेहद थकान हुई इस यात्रा में... न रात्रि-विश्राम, न चैनभर दिन... किसी रिश्ते की गमी का वातावरण... बंबई की लंबी दौड़... आपने फोन किये कई और मैं बाहर... बड़ा अजीब-सा लगा... संकोच का-सा आभास... वह जल्दी-जल्दी बोल रही है... धीमे-धीमे हंस रही है... बड़ा सरल परिवेश और बड़ा सहज व्यवहार...

मैं उन्हें अपने आने का और डा. साहब के विषय में कुछ अलग... लीक से हटकर जानने का प्रयोजन बताती हूं... कुछ ऐसी जानकारी, जो आपकी यादों की निजी, पूंजी है... अबूझी-अनकही-सी है... डाक्टर साहब के कई ऐसे रूपों से जुड़ी हुई है. जो साहित्यकार-परिवेश के हटकर एकांत-कोनों वाली है... एक आदमी का स्वाभाविक-चरित्र... जहां प्रणय है, क्रोध है, खीज है, करुणा है, गंभीरता है और है अधिकार का अहं... दूसरों के साथ फुर्सत के पल-संबोधन क्या हैं और अपनों के बीच कैसी मानसिकता है? कैसे रहते होंगे सोच-चिंतन और लेखन के क्षण? सृजन के बहुआयामी पक्षों का तालमेल? आर्थिक दबाव अथवा इधर से उलझन-मुक्त रहे? परिवार का क्या व्यवहार रहा? मतलब सहयोग मिला या विरोध? निजी दैनिक-जीवन और सृजनकर्मी का उत्तरदायित्व, इन दोनों का समीकरण?... और फिर ऐसी दुहरी-तिहरी मानसिकता को जीने वाले व्यक्तित्व के साथ पत्नी का, एक मां का, कुटुंब की एक बहू का और एक नारी का क्या योगदान रहा आपके द्वारा?... और भी बहुत कुछ अनछुआ-अनबुना सा...

पल भर के लिए एक बैंगनी-सी विषाद की परछाईं पलकों पर झुक आती है. उदास-उन्मनी दृष्टि उस चित्र की ओर उठ जाती है, जहां से आशीर्वाद धार-धार झर रहा है... अ-स्पष्ट-सा स्वर ओठों पर कंपित हो उठता है-

"प्राण! जीवन संतरण का खेल है,
चाह केवल सांत्वना है, सत्य केवल यातना है..."

बिटिया कान के पास झुककर फुसफुसाती है-पापा को ये पंक्तियां बड़ी प्रिय थीं...

मौन की पथराई नदी हमारे बीच फैल जाती है कुछ पहरों तक. सांसों की अंगुलियों में सुख-दुख का दस्तावेज खुलने-बंद होने लगता है... अचानक यह व्याकुलता पिघलाती है. मूर्छितमन पलकें खोल देता है. नदी नम होनी शुरू हो जाती है... आइये, स्टडी में चलकर बैठें... वहां एकांत है... बातचीत के क्रम जोड़ने में सुविधा रहेगी... और हम दोनों भारी पर्दा उठाकर स्टडी में आ जाते हैं. यहां बड़ी मेज पर केवल वे डायरियां और कागज हैं, जो विश्वविद्यालय के विषयों से संबंधित हैं. हम आमने-सामने इत्मीनान से बैठ जाते हैं... दृष्टियां टकराती हैं प्रश्न-उत्तर बनकर... वर्तमान दबे पांव चुपके से उठकर निकल जाता है और कपूर-चंदन की शुचि गंध के बीच पुनीत मंत्रों तथा शंख-गूंजों का आभास होने लगता है... यह सब कैसी अनुभूति है? सुलोचना जी मुस्करा देती हैं...

-अनुभूति सत्य है. महाराजा जयसिंह ने जब जयपुर नगर बसाया, तब हुआ महान यज्ञ. इसी के अवसर पर डा. साहब के पूर्वज यहां आये थे. पूर्वज थे ताताचार्य वंश के श्री निवासाचार्य. दक्षिण भारत, श्री भूष्पम (दक्षिण ऑरकट) से आये थे. संस्कृत के प्रकांड विद्वान. उनकी ज्ञान-मंडित वाणी और पांडित्य पर प्रसन्न होकर जयपुर नरेश (प्रथम) ने उन्हें भारी सम्मान दिया तथा भरतपुर के निकट एक स्थान है वैर. इसी के पास वैर गांव जागीर स्वरूप दिया और सीता-राम-मंदिर का निर्माण भी कराया. आज भी श्रीनिवासाचार्य, वीर राघवाचार्य, वरदाचार्य, नारायणाचार्य, विजयराघवाचार्य और रंगाचार्य के मंत्रोच्चारण तथा गुरु-गंभीर वाणी से झरते श्लोक कानों में गूंजने लगते हैं.

डा. साहब इसी ज्ञान-मंडित परिवार से रहे. इनके पिता श्री रंगाचार्य संस्कृत के बड़े भारी विद्वान थे. भाव-अर्थों के ज्ञाता. डा. साहब की सगी बुआजी (अक्काजी) बड़ी विदुषी महिला थीं. इनके पति देशिकाचार्य जी भी जाने माने विद्वान. कल्पना कीजिये कि अक्काजी अपने पति व भाई से घंटों तक संस्कृत के श्लोकों पर तथा गूढ़ विषयों पर शास्त्रार्थ किया करती थीं. हां, जब सबसे पहले मैं आयी थी, तब सभी को देखा था... मां, मौसी, बुआ, भाई और भाभी आदि... तब भाई लोग थे ये तीन... अब? केवल बीच वाले रहे हैं. वर्तमान में सुसराल पक्ष के केवल यही रिश्ते में. इन्हीं टी.एन.के. आचार्य के पास वैर का पुश्तैनी मकान और जमीन आदि हैं, हांजी, यही संपूर्ण रूप से मालिक.

■ **और आपके पीहर-परिवार की क्या स्थिति रही! उधर से क्या सहेजकर लायीं डा. साहब के यहां?**

-हिम्मत और स्वाभिमान... कन्या कुमारी के पास रहा पिता का गांव. पिता-तिरुनलवैल्ली बड़े व्यवहार कुशल थे. बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी. जब वह एनीबेसेंट के संपर्क में आये, तो इनके दर्शन का और जीवन के प्रति इनके दृष्टिकोण का ध्यान से अध्ययन किया और इन्हीं के विचार-दर्शन को अपनाया. उसी काल में कैलीफोर्निया गये. वहां से लौटे, तो जूनागढ़ स्टेट में एग्रीकल्चर-डायरेक्टर के पद पर रहे. इन्हें अध्ययन का बेहद व्यसन था. सौराष्ट्र-लायब्रेरी के विशाल कक्षों में भरी दार्शनिक पुस्तकों-ग्रंथों को रातोंरात जागकर पढ़ते. परिणाम? वही रहा कि सुधबुध खोये दार्शनिक...कभी-कभी इन पर इतना वैराग्य छा जाता कि हफ्तों तक गिरिनार की घाटियों-गुफाओं में निकल जाते. प्रकृति के रम्यस्थलों में विचरते रहते.

साधु-संतों की निरंतर संगति. घर में विद्वानों का पूर्ण आदर होता. संस्कृत और अंग्रेजी के ज्ञाता-मनीसी घर में बराबर बने रहते. श्री कन्हैया लाल मुंशी सदैव घर पर ही ठहरते. गुजरात के अतिप्रसिद्ध कवि श्री नानालाल का भी आना-जाना बना रहता. बचपन से ही पिता के यहां ज्ञान-भंडार का उजास देखा और पिता का बहुआयामी रूप भी... आगे भी जैसे कुछ और? हांजी, वही तो कि जूनागढ़ में इन्होंने वनस्पति-संसार को

बड़ा ही विशिष्ट केसर-गंधयुक्त 'आम' को जन्म दिया. तत्कालीन अंग्रेज वायसराय उस केसर-गंध और गाढ़े मिठास से बहुत प्रसन्न हुए थे. हर ओर से प्रशंसा. लेकिन आप सुनकर चकित होंगी कि प्रसिद्धि के चरम-शिखर पर बैठे पिता एकाएक ऐसे वीतरागी हो गये कि सब कुछ छोड़छाड़ आ गये. महाराष्ट्र के थाना जिले में, कोसबाड़ सघन जंगल, बंजर जमीन. बस जुट गये. बंजर भूमि को श्रम से तैयार किया. वहां की जन-जाति 'वार्ली' को शिक्षित करने हेतु स्कूल खोला. नग्न-अर्द्धनग्न आदिवासियों को कपड़े दिये तथा दैनिक जीवन के जरूरी आदर्श दिये. इसी पवित्र कार्य-साधना में ही उनका देहांत हो गया. छोड़ा हुआ कार्य-व्रत मां ने संभाला. हम नौ संतानें...चार बहनें और पांच भाई. मैं न? मेरा नंबर रहा छठा. बत्तीस वर्ष की विधवा मां. खेती-बाड़ी और संतान सभी का बोझ अपने कंधों पर ले लिया. आज वह पिचहत्तर वर्ष की है. कई भाषाएं सीखी हैं. उसे शौक है. विदेश गयी बेटे के पास, तो सीखी अंग्रेजी. दामाद प्रसिद्ध साहित्यकार-कवि, तो सीखी हिंदी, गुजराती, तमिल और क्षेत्रीय भाषाएं अलग. बेटे लोग ऊंची नौकरियों पर हैं, लेकिन रहेंगी अपनी ही जमीन पर आर्थिक-स्वतंत्रता के साथ. वर्तमान में तो कोसबाड़ में एग्रीकल्चर का बहुत बड़ा कालेज है.

इस तरह से पिता का रूप भी पाया, लेकिन अकेले रहकर भी धैर्य से पांव जमाकर खड़े होना, जीवट से संकट सहना, निर्णय लेने में पक्का मन होना, कर्मठता और स्वाभिमान से जीना...यह पूरी तरह से मां से जाना और सीखा.

■ **पति रूप में पाकर शुरू-शुरू में कैसा अनुभव किया मन में?**

शुरू में क्या, अंत तक एक आत्मिक-श्रद्धा सी बनी रही. विवाह पर मेरी और उनकी उम्र में तेरह वर्ष का अंतर था. इसीलिये आत्मिक-प्रेम और रहा मन में आदर्श-रूप. वासना? कभी नहीं. यह भाव उद्वेलित होकर उभरता ही नहीं था. अगर बीच में वासना का ही मात्र रिश्ता होता, तो हम दोनों का स्वरूप ही अलग होता. डा. साहब तो शुरू से ही 'गुरु' बन गये. तभी तो मेरी वह अल्हड़-मुग्धा उम्र किताबों के ढेर में डूब गयी. ऐसा नहीं होता, तो क्यों उन्हें एक ही जिद रहती कि सुलोचना पढ़ो...रुको नहीं, पढ़ती ही जाओ...और हम दोनों के अति अलभ्य-दुर्लभ मुट्ठीभर वर्ष पढ़ने, परीक्षाएं देने और पुस्तकालयों में दूर-दूर भटककर बिखरते उड़ते रहे. शादी से लेकर मृत्यु तक साथ-साथ सिर जोड़ बैठने वाला वक्त महज साढ़े तीन वर्ष रहा. उंगलियों पर जब हिसाब लगाती हूं, तो कुछ कम ही यह वक्त रह जाता है. इसी दौरान मातृत्व की भावना से भी दैव ने परिचय करा दिया. डा. साहब की अनुकृति-स्मृति चिन्ह के रूप में इस चिटिया सीमांतनी को भेंट स्वरूप विधाता ने मुझे दिया.

सुखद क्षणों का उजास : रांगेय राघव और सुलोचना राघव

■ **फिर भी आपको लगता है न, कि आपने मुट्ठीभर मिलन-क्षणों को भी भरपूर जीया-भोगा? या बहुत कुछ अनकहा-अनसुना रह गया? कोई बेचैनी? कुछ अतृप्ति? कहीं पश्चाताप?**

ओह! नहीं, नहीं...ऐसा कहीं कुछ भी नहीं. पश्चाताप का कण भी नहीं, बल्कि गर्व है उस पुरुष का नाम ओढ़कर. रही मिलन-क्षणों की बात, तो बहन उनके साथ इतने कीमती क्षण जी लिये, जो पूरे जीवन की अंतहीन यादें बन गये हैं. उन्नीस सौ छप्पन...विवाह के प्रफुल्लता-नवीनता भरे प्रारंभ के ताजा-ताजा दिन. बड़े चित्रात्मक, सुखद और मुखर. कब उगी भोर, कब उतरी सांझ, सब हंसी-दिल्लगी में फुर्र हो जाता दिन. उन्होंने तब अवकाश ले रखा था. मेरी बंबइया हिंदी के उच्चारण का बड़ा मजाक बनाया करते थे और चुहलबाजी के साथ-साथ हिंदी की शब्दावलियां रटाते तथा शब्दों का उच्चारण भी समझाते. मेरी बनायी वस्तुओं की तथा खाद्य-सामग्रियों की प्रशंसा करते 'मलूक-मलूक' कहकर. बहुत बाद में पता लगा कि यह 'अच्छा' के लिए कहा जाता है. मैं उनसे घंटों व्याकरण का ज्ञान और शब्दों के अर्थ-उच्चारण सीखने लगी. हो गया न प्रारंभ से ही उनका गुरु रूप?

■ **आपने कभी ऐसा नहीं सोचा उन लुब्ध मानसिक क्षणों में कि पढ़ने की गंभीर आवश्यकता को आगे भी स्वीकारा जा सकता है?**

बहुत प्रयास किया सावित्री जी. अध्ययन के प्रति घोर अरुचि भी दिखायी. 'फिर पढ़ लूंगी' वाक्य को सामने रखकर हठ भी की, लेकिन कोई अदृश्य शक्ति जैसे उन्हें बाध्य कर रही थी कि वह वैवाहिक-जीवन के उस वसंत-काल में मुझे पढ़ने के लिये स्वयं से अलग करें...

और साथ रहे तीन महीने भी अच्छी तरह नहीं बीते थे कि मुझे नैनीताल, जहां बड़े भैया रहते थे, पढ़ने के लिये भेज दिया. ट्रेन में मेरी घनीभूत उदासी देखकर बे-तरह आत्मीयता से भर उठे थे. समझाते रहे कि सुलोचना, तुम नहीं समझ पा रही हो यह कि तुम्हें शिक्षा लेना बहुत जरूरी है. मन स्थिति को इसी भाव के साथ अनुकूल बना लो. मेरी हार्दिक इच्छा है, तुम एम.ए. करो. हम पति-पत्नी हैं. एक दूसरे की क्षमता का आदर और आंतरिक इच्छा का साथ देना है. समझौता करना है. पढ़-लिखकर ही तो मुझे और मेरे सृजन को समझ पाओगी. सही अर्थों में साथ दे सकोगी...और तभी हम एक-दूसरे के पूरक हो सकेंगे. यों मैं चार दिन इनके साथ तो पचास दिन पुस्तकों में उलझी रही. इन्हीं चुटकी भर मिले दिनों में इस अपूर्व आदमी का साथ भी खूब जीया-भोगा और बीमारी की असहनीय यंत्रणा भी इनकी देखी. अंतरंग क्षणों में इनकी काव्यधारा तथा चित्रकला का अमृतानंद भी आत्मसात किया, तो तिल-तिल दर्द पिलाता हुआ मृत्यु का चिर-सत्य संफर

भी देखा. सब कुछ देख, सुन और जान लिया. इतने नीले-सुर्ख-गुलाबी अनुभव कि आज तक हर सांस में प्रत्येक आहट सुरक्षित है.

■ **कभी उनके साथ बाहर घूमने-फिरने आप गयीं? चूंकि दिन बीते उनके साथ थोड़े...आपका लगातार अध्ययन और उनका अनवरत लेखन ऐसे में समय? फिर भी मन तो आखिर मन है! मन के चंचल तुरंगों पर बैठकर आप दोनों...?**

मैं कई बार उनके साथ घूमने-फिरने गयी. शहरों की गहमागहमी से ज्यादा डा. साहब को प्रकृति की छटा, जंगलों की वनस्पति गंध और पर्वतों के उन्नत-शिखर बहुत भाते थे. नैनीताल में उनके साथ जब भी अवसर मिला मुझे सैर करने का, तब यही कुछ मैंने पाया. बड़ा आनंद आता था नैसर्गिक वातावरण में उनकी काव्य-पंक्तियां सुनने में...उनके पात्रों का विवरण जानने में और उनके मित्रों के तथा परिवार के चर्चों में. एक-एक बात को बड़ा आनंद लेकर सुनाते थे. जयपुर और दिल्ली भी मैं उनके साथ घूमी थी. बेतकल्लुफी के साथ मित्रों में बैठना, ठहाके लगाना और गपशप करना उनकी यात्राओं के पड़ावों का शगल रहता था. भौगोलिक क्षेत्रों का जब शाब्दिक-नक्शा खींचते, तब बड़ा अचंभा होता था और ऐतिहासिक स्मारकों, स्थलों तथा दुर्गों आदि की जानकारी ऐसी देते, मानो जन्म से ही गाइड हों. बड़ी गूढ़ जानकारी...सिलसिलेवार इतिहास के वर्णन...कला-संस्कृति और सभ्यता की बारीक से बारीक सूझबूझ कि मैं हैरान रह जाती. हर बात बड़ी रुचिकर शैली में...

■ **यात्रा के दौरान निकटतम क्षणों में स्वभाव के अन्य परिचय भी मिले होंगे? कुछ चुलापन? कुछ शौक?**

जी हां, कई ऐसी घटनाएं रहीं, जो अभी तक याद हैं...कभी मन होता मानो उनका मन के अंतरंग उद्गार व्यक्त करने का और सार्वजनिक स्थल है....ट्रेन का डिब्बा है, आसपास सहयात्री हैं, होटल है अथवा कोई परिवार...तब? एकदम तमिल में बोलने लगते. भाषा पर, उच्चारण पर पूरा अधिकार नहीं...वह बोलते, मैं समझ नहीं पाती..मैं बोलकर सही बताती, उनके पल्ले आधा-अधूरा पड़ता...लग रहे हैं गलत अर्थ. बढ़ रही हैं गलतफहमियां, झुंझलाहट और उनके चेहरे पर क्रोध उगने लगता...जब थोड़ा एकांत होता, तब हिंदी में सारे झंझट क्षणों में साफ...फिर लगाते कहकहे...

शौक? पेड़ों का, फूलों का, पक्षियों का और लिखने का...काव्य-पंक्तियां सुनाने की खूब रही उनकी रुचि...यों एकदम सादा-सरल लिबास रहता, लेकिन सफर में घूमने-फिरने में कपड़ों का बेहद शौक रहता. बल्कि कहिये कि यह शौक सदा ही बना रहता...कभी बंगाली ढंग, कभी पंजाबी लिबास, कभी लखनवी अंदाज तो कभी धोती-कुर्ता...हां, चूड़ीदार पायजामा, अचकन और गांधी टोपी भी खूब पहनते...कई बार इस पोशाक में नेता समझ लिये जाते. रोक-टोक से बरी...सलाम और तब बड़ी रौबदार दृष्टि से जैसे मुझे अपने रुतबे का आभास कराते. कभी-कभी यात्राओं में साहित्य-चर्चा छेड़ देते यात्रियों से और बड़ी संजीदगी से पूछते कि कैसा लिखता है रांगेय राघव? मेरी दृष्टि में तो कुछ दमदार लेखन नहीं दे रहा. लोग कहते कि लगता है आपने उनका कुछ पढ़ा ही नहीं...बहस करते. खुद की आलोचना करते और जब सामने वाले के स्वरों में बराबर खरी प्रशंसा पाते, ऐसे वक्त मैं आत्मतोष की छलछलाहट उनके चेहरे पर देखती थी. और गर्व, खुशी तथा प्रशंसा की मिली-जुली भावना से खुद भी सुखी होती थी.

दूसरों की मदद करके भी खुश होते. कोई क्या कह रहा है, कोई परवाह नहीं होती थी. एक घटना याद आ रही है कि गर्मी की एक चिपचिपी संध्या को इनसे मिलने कोई मित्र आये. घंटों वार्तालाप चला. खूब साहित्यिक कताई-बुनाई और रधुनाई चली. चाय-नाश्ते के बाद मित्र विदा हुए. हम दोनों द्वार से लौटे ही थे कि बाहर से चीख-कराहट की आवाज. दौड़े. देखा कि मित्र काफी तेज पीड़ा से छटपटा रहे थे. आसपास की खिड़कियां झांकने लगीं. मुश्किल से मित्र को जैसे बना वैसे अंदर लाये कि सुबह चिमगोइयां...रात मित्र के साथ रांगेय राघव? नशे में धुत लौटे...कि पांव भी सीधे नहीं पड़ रहे थे...जाने क्या-क्या! मैं क्रोध में, लेकिन वह आनंद ले रहे जैसे यह लांछन भी एक फूल था, जिसे उन्हें दिया गया था. बोले, तुम इतनी भगवान की कृपा मानो कि मित्र हमारे द्वार पर ही पीड़ा से गिरे और हमारे द्वारा मदद पा सके. कुशल-क्षेम से हम उन्हें घर पहुंचा आये. सोचो, कहीं बीच रास्ते गिरते, तब? दुनिया के अफसानों पर मत जाओ...

ऐसे ही वैर में रहा...बड़ा घोर पर्दा...पुरुष के साथ घूमने शाम को स्त्री जाये, कल्पना तक नहीं. शाम के झुटपुटे में यदा-कदा यह मुझे घर से बाहर ले गये. कानाफूसी...कि पप्पू किसी लड़की के साथ घूमने जाता है. हां, उन्हें मां से लेकर घर-बाहर सभी स्नेह से यही नाम लेकर पुकारते थे. जो सबसे ज्यादा कहता फिर रहा था, उसे लाकर बोले...लो भैया, देख लो इसे...यह मेरी श्रीमती जी हैं....देखने लायक थी उस व्यक्ति की हालत...जी हां, लोगों की यह धारणा भी व्यर्थ रही कि विवाह लेखन में बाधा बनेगा. सत्य यह रहा कि शादी के बाद ढेरों रचनाएं पुस्तकें प्रकाशित हुईं.

■ **लेखन प्रतिदिन का अभ्यास था, या जब मन अधिक प्रेरित होता तब? आपकी दृष्टि में यह भीतरी कल्पना का ताना-बाना था अथवा भोगे अनुभवों का यथार्थ चित्रण?**

जहां तक मैंने देखा और पाया, लेखन इनका अधिकतर भोगे-देखे अनुभवों पर आधारित था. राजनीति, अंग्रेजी शासन, क्रांतिकारी विचारधारा, नारी-शोषण, नारीमुक्ति-आंदोलन, जैन-धर्म तथा भिक्षु-भिक्षुणी-दर्शन, रहस्य-कथाएं और संस्कृत व संस्कृति आदि विषयों पर जब भी लिखा, इन विषयों का खूब अध्ययन किया. इनमें प्रवेश कर निकट से अनुभूत भी किया. जमींदारी प्रथा तथा श्रमजीवी वर्ग पर खूब लिखा. बीमारी लगी ही रहती थी. उपचार भी चलते देशी... जड़ी-बूटी, गर्म लोहे की सलाखों का सेक, मालिश...इनसे किस्से सुनते रहते और मन में इन्हें बुनते रहते...एक बार फोड़ा हुआ, जड़ी-रुखड़ी का लेप करने आता था एक सुखराम नामक नट...खूब बातून...सुनाता रहता घंटों अपनी बिरादरी के चर्चे...कि बन गया कथानक...एक भारी उपन्यास...'कब तक पुकारूं...' मेघदूत, ऋतुसंहार, कुमार संभव का सचित्र हिंदी अनुवाद भी किया. अंग्रेजी में भी किया, लेकिन हिंदी के प्रति मन में अगाध प्रेम था. बहुत लिखते थे. जैसे लिखने का दौरा पड़ रहा हो! विभिन्न विषय...लिख कर ही सांस लेते. बेहद चाय बीच-बीच में...एकांत कोठरी...बैठकर या लेटकर लिखना..अधिक उमस-गर्मी, तो छत की कड़ियों में लटके पंखे की डोरी स्वयं पैर से खींचते और कलम चलती रहती.

■ **कभी तो लिखते-लिखते ऊब जाते होंगे? ऐसे उन्मन-क्षणों में सोच चलता या अध्ययन?**

हां, क्यों नहीं ऊबते थे? ऐसे में विषय बदल डालते...उपन्यास से ऊबे, तो कहानियां...इनसे उकताये, तो चित्र पर चित्र...लाजवाब रेखांकन...इन सबमें भी यदि मन नहीं रमा तो कविताएं....

पढ़ने का भी बड़ा अजीब था उनका चुनाव...गंभीर विषयों को लेकर इतने डूब जाते कि पुस्तक के अतिरिक्त और सब गायब...इस गरिष्ठ-अध्ययन से बहुत थक जाते, तब हल्की-फुल्की कहानियां-उपन्यास पढ़ते, देवकी नंदन खत्री को उन्होंने बड़ी चाहत से पढ़ा. मैं शुरू में बड़ी हैरान रह गई देखकर कि उनका शौचालय एक छोटी-सी लायब्रेरी था, पूछा कि यह सब क्या है? हंस पड़े...बोले, यह तो भई लैटरीन-लिटरेचर है...ऊबने पर डायरी-लेखन भी चलता था...पुराने की काटपीट और नये थीम के

लिये टुकड़े-टुकड़े वाक्य लिख लेना...

■ **सुना है कि फिल्मी-संसार ने उन्हें भी अपनी ओर आकर्षित किया था. अपना एकांत लेखन-सुख छोड़कर बंबई गये, इसकी वजह और क्या रही प्राप्ति?**

वजह तो महज एक जागी हुई लालसा... आर्थिक रूप भी..और प्राप्ति रही घोर निराशा और वितृष्णा.किसी मित्र ने उनका लेखन खूब सराहा. फिल्मी दुनिया में अपने लेखन की धूम मचा देने का आग्रह भी किया. साथ ही एक प्रोड्यूसर से भी मिलवा दिया...फिल्म 'लंका दहन' की कहानी भी लिखवायी और संवाद भी, लेकिन पैसा एक नहीं दिया. इनका मन नफरत से भर गया. बंबई के कड़वे अनुभवों ने कई पुस्तकों को जन्म दिया. कोई भी किसी का शोषण करे, यह तो बर्दाश्त ही नहीं था.

अधिक तनाव के क्षणों में दिमाग के बोझ को हंसी के ठहाकों में डुबोते थे...जैसे? यही कि दोस्तों में पहुंचे...सभी के प्रिय पप्पू या आचार्या...किसी न किसी को मजाक की गेंद बनाया...आपस में लड़वा दिया...गलत-फहमियां बांटीं...फिर खुद ही जज बनकर फैसला करते...सबको फिर खिलाते-पिलाते. उस वक्त में सत्तर-अस्सी रुपये मित्रों पर खर्च कर देना उनको जरा भारी नहीं लगता था. घर आकर ऐसे ही टटके-टप्पे सुनाते. तनाव गायब. सिगरेट के बेहद शौकीन. न मिले तो बेचैन. लड़कियों के कालेज में आमंत्रण मिलने पर टालने की चेष्टा रहती क्यों? क्योंकि वहां लेडीज प्रोफेसर..छात्राएं.. सिगरेट पी नहीं जा सकती. कहते कि इतनी कड़ी सजा वाला सम्मान जरा दुखदायी है.

जरा-सी उन्होंने कागज-कलम दूर की...कि मैं उनसे खूब किस्से सुनती...एक भारी प्रलोभन. उनका बीता एक-एक पल जान लूं जैसे...हर बार दुनिया जहान की बातें सुनाकर कहते कि लो अब कुछ काव्य-पंक्तियां लिख कर देता हूं—

लो बहुत परिचय हुआ/मुझको न कहना और बाकी/भर गयी है अक्षरों से/जिंदगी की एक पांती...

■ **आर्थिक-बोझ सहना और आर्थिक-चिंता से जूझना अक्सर साहित्यकार के हिस्से में आता है...खासकर जो लेखन पर ही जिंदगी को निर्भर रहना पड़े..डा. साहब को भी ऐसे संकटों से क्या दो-चार होना पड़ा?**

दो-चार? पूछिये कि आर्थिक-दवाब कितने नहीं सहे? परिवार का बोझ..जमींदारी समाप्त...हर तरह का लेखन करना इसी 'अर्थ' के लिये...जाने कितनी पांडुलिपियां और उपन्यास कौड़ियों के भाव बेच दिये. भाई का चुनाव लड़ने का शौक...दो बार चुनाव लड़े और हारे....सिर पर खर्चा और कर्जा...आगरा छूट गया. गांव आ गये.

मैं और बच्ची साथ में...इसलिये लिखना अब मन का केवल आनंद नहीं रहा, बल्कि एक जरूरत बन गया था. वैर आने पर आगरे का मकान मित्रों के पढ़ने-लिखने को छोड़ दिया था. लिखने में खुद को जैसे घोल डाला था. न कष्ट की चिंता, न सोने-आराम करने की...गांव-घर में पेड़-पौधे खूब...तो मच्छर भी अधिक..गर्मी ऊपर से...तब बिना निवाड़ की खाट...इसमें मेज-कुर्सी...लालटेन.... ऊपर लिपटी मसहरी और गल रही है रात सृजन श्रम में..करते मुझसे कि लिखा करो...साथ गाया करो...

पुलकित अवनी/पुलकित अंबर/आओ नवरस गाओ/इस क्षण अपने काम छोड़कर/आओ हिलमिल गाओ/....

मैं पढ़ती रही...कुछ लिखना भी...जो भी था, सब उन्हीं की प्रेरणा...टाइपिंग-शार्टहैंड भी सीखती थी...क्यों आवश्यकता हुई इसकी? सोचा, इनके लेखन में सहायता हो सकेगी...

आडंबर-प्रदर्शन? नहीं जी, डा. साहब इस प्रकार के झमेलों से दूर थे...कहा करते थे...सुलोचना, मौलिकता चमत्कार में नहीं, गहरायी में है...इच्छाएं-विश्वास जितने सीमित-गहरे होंगे, हम उतने ही सुखी होंगे...हर तरह का फैलाव डर और घबराहट को जन्म देता है.

■ **आर्थिक-चिंताएं डा. साहब में परिवर्तन ला रही थीं, ऐसा आपको कभी लगा होगा शायद? आपका बाहर पढ़ना और उनका अकेले सब कुछ समेटना...कुछ विचलित करता होगा?**

बहुत ज्यादा...इंटर करके लौटी, तभी से इनमें परिवर्तन पाया...शरीर से कमजोर और चिंताओं से दबे हुए...ढेरियां लिखे कागजों की...फीकी हंसी कि चौंको मत... जाड़े का मौसम, यहां मेरे फसलों के दिन हैं...अधिक व्याकुल हो उठती है, तो कहते चिंता छोड़ पढ़ने में ध्यान दो...मैं कातर हो उठती कि आप मानव कहां से हैं यह देव रूप लेकर...झुंझला जाते...मुझे मनुष्य ही समझो और सहज व्यवहार दो...कहती कि क्यों इतना लिखते हो! औने-पौने सब बह जाता है...हंसते, "मैं तो आने वाले युग के लिये लिख रहा हूं."

वैर में दिन कष्ट से बीत रहे थे. उनकी इच्छा थी कि मैं पढ़कर नौकरी करूं तो दोनों मिलकर मंझले भाई का परिवार संभालें...वह बड़ी मेहनत से मुझे भी पढ़ाते...एक गुरु-शिष्या का रूप...भाई का हुआ आपरेशन..रुपये नहीं...मैंने कुछ रुपये और सिक्के पाउडर के डिब्बे में जोड़े थे, वही दे दिये. धन का अभाव बढ़ता जा रहा था.उस समय मुझे बेहद मोटी और घर में रंगी धोती पहने देखकर संतुष्ट होते...प्रशंसा करते थे.

घूमने जाते, तो कंकर-मिट्टी-बर्तनों के टूटे ठीकरों को इकट्ठा करते..अध्ययन करते कि ये कब-किस शताब्दी के हो सकते हैं? कई स्थानों की खुदाई कराई "भैरव-यक्ष की मूर्तियां निकलीं—बड़े खुश होते...कई बार खुशी में अकड़ते भी सुलोचना, आज बड़ा धाकड़ भाषण दिया...छुट्टी कर दी सबकी...लो—ये खाओ, वो खाओ...आज ये किया, वो किया...ऐसे पल कष्टों को कपूर सा उड़ा देते".

■ **पिता की इच्छा थी कि उनका प्रिय बेटा लेखक बने?**

—बिल्कुल नहीं. वह चाहते थे कि उनका छोटा बेटा मंदिर की पूजा-आरती संभाले. इसीलिये उन्होंने इन्हें प्रशिक्षण भी पंडितों वाला दिया था. संस्कृत में निष्णांत बनाया, लेकिन यह पढ़ने में, साहित्यानुराग में, चित्रकला में और काव्य में मगन रहते...कैसा पण्डितों वाला रूप? ...स्वभाव में कई-कई

अपने घर के सुख में मुग्ध प्राण

राजहंस तो सदा जिएगा : रांगेय राघव की चिंतन मुद्रा

विरोधाभास...विनम्रता भी, अकड़ भी... सन्कार भी...झाड़ा-गंडा भी लगवालें.. अति सरल-सादा जीव तो अभिजात्य वर्ग वाली अकड़-ठसक भी...मिजाज में बला का रईसीपन तो छोटे-गरीब लोगों के लिये बड़ी तड़प-संवेदनशीलता...विवाह के लिये गये थे मेरी बहन को देखने और चुनाव किया मेरा...वह बहन आगे चलकर इनकी भाभी बनी फिर....

■ **कोई ऐसी घटना जिसने जीवंत-व्यक्तित्व को या फौलादी-मन को हिला डाला हो? बेहद यंत्रणापूर्ण कोई हादसा गुजरा हो डा. साहब के जीवन में?**

हां, हुआ ऐसा...उन्होंने ही यह त्रासदी मुझे बतायी थी...शांतिनिकेतन में रहकर इन्होंने बौद्धधर्म का अध्ययन किया. बौद्ध-सम्प्रदाय ने इन्हें बेहद प्रभावित किया. बौद्ध भिक्षुओं के साथ तर्क-वितर्क करते-करते मन में आया स्वयं भिक्षु बनने का. लेकिन सिगरेट पीना? छोड़ दिया जायेगा... सिर के बाल...? नहीं, इन्हें ज्यों का त्यों रखना है. घने-घुघराले बालों को कैसे त्याग दें...व्यंग्य मिला सुनने को कि यह तो नश्वर है, इतना मोह? भिक्षुक क्या बनोगे?

लौटे वहां से. आरंभ की एक पुस्तक 'प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास' सुबह से शाम तक जैसे समाधि ले ली बाहरी संसार से...पूरे इक्कीस दिन...किताब पूरी हुई. बड़े प्रसन्न. इस बीच न सिर में तेल, न पानी...नहा धोकर जैसे ही कंघी की, तो हाथ में बालों के गुच्छे ही गुच्छे. पागल से हो उठे घबराकर...भिक्षुक का श्राप याद आया... जाने कितनी जड़ी-बूटियां, तेल-आलेप लगाये, फिर केश नहीं लहराये, जिंदगी में सदैव यह घटना दर्द देती रही...अखरती रही और शादी से पहले पूछ बैठे थे मुझसे कि 'तुम्हें भी यह अखरेगा?' मेरा उत्तर था,..नहीं, इसी विशाल-चिंतनशील मस्तक पर ही मेरा मन मुग्ध हुआ है..परंतु मैं जानती हूं कि सिर के बालों की कचोट सदैव उनके मन को सालती रही थी.

■ **प्रणय-क्षण अथवा प्रणय-पत्र क्या आम परंपरा से युक्त आपको प्राप्त हुए या कुछ अलग-से?**

आम परंपरावादी कुछ भी नहीं. पास बैठने के पहर मिले, तब भी साहित्य-चर्चा...या अपने लेखन का..मित्रों का जिक्र...प्रकृति से नमन का—वातावरण का तादात्म्य स्थापित करने की उमंग...अपनी कविताओं की पंक्तियों की गुनगुनाहट...रही पत्रों वाली बात...तो जितने भी पत्र उन्होंने लिखे...सभी में यही कुछ...अध्ययन, दर्शन, जीवन-भाषा, प्रकृति के कार्यकलाप...आकाश के रंग और भविष्य के इंद्रधनु...

■ **याद हैं आज भी कुछ इंद्र धनु-रंग?**

भूले भी जा सकते हैं क्या? जैसे...सुलोचना जीवन क्या है...चक्रगति-विकास और क्षय. नन्हा पौदा खिड़की पर हंस रहा है. पानी बरसा..धरती पी गई. पीपल की फुनगी पर रंग फूटा है...खुद को अध्ययन का हिस्सा बना लिया है..तुम्हारे सामने भी नीले पहाड़ पर सूरज ढल रहा होगा! मेरी संध्या का स्नेह तुम भी लो...आदि-आदि पत्रों में भी अजीब-सी वीतरागी हलचल-सी होती थी.

■ **क्या आपका नारी-मन आपकी तरुणावस्था..एक-दूसरे से दिनों-दिनों-महीनों तक का अलगाव बार-बार एक रस बयानी से झल्ला या उकता नहीं उठता था? मन कुछ ऐसा नहीं चाहने लगता था.जो नितांत आपके लिये हो?**

नहीं तो...मुझे भी यही सब अच्छा लगता था. नितांत साधारण रूप से हम पति-पत्नी वाली परिधि में रहे भी कब? वही परिवेश, वही दिनचर्या, वही पति का रूप और वैसा ही अपना संसार रोम-रोम में बस-खप गया था, फिर मन की अलग पुकार के लिये या तरुणावस्था की मीमांसा के लिये न होश था, न वक्त...मुट्ठीभर साथ में और किताबों-इम्तिहानों में उलझे रहने में कोई और खयाल आते ही नहीं थे...फिर जो नारी रांगेयराघव को पाकर अपने सौभाग्य पर इठला उठी थी, वह क्यों झल्लाती और क्यों ऊबती...न साधारण पुरुष मिला था, न था उसका साधारण जीवन...तो मेरा सोच-मिजाज भी साधारण धरातल वाला नहीं रहा था.

■ **अत्यधिक सुख की बासंती धूप में अभी आप नहा भी नहीं पाई थीं अच्छी तरह कि अवसाद की काली घटाएं छा उठीं...ऐसा कब महसूस किया आपने?**

मां की मृत्यु के बाद वह अत्यधिक उदास रहने लगे, बी.ए. (प्रथम) की परीक्षा देकर लौटी, तब देखा कि गुमसुम शून्य में ताकते रहते. तभी आया श्रावण में हिंडोलों का मौसम...मंदिर में यह उत्सव हुआ. कुछ दिन इनकी सज्जा में पुलक उठे, लेकिन फिर वही उदासी.

घर में भी तनाव रहता. भाइयों में अधिक बोलचाल नहीं होती थी. मैंने महसूस किया कि वह खुद को वहां अकेला महसूस कर रहे थे. यह भी कि उनका शोषण हो रहा है. दिन कस्तूरी-गंध खोकर बोझिल हो उठे थे. उनका चेहरा कठोर रहता. एक दिन बोले कि कहानीकार और उपन्यासकार ही क्यों रहूं! मैं एक महाकाव्य लिखना चाहता हूं. मैंने सहमति जाहिर की...चलो अच्छा है, मन का रंग बदलेगा. यह बात उन्होंने श्री मैथिलीशरण गुप्त जी से भी की थी...और 'उत्तरायण' प्रारंभ हुआ लिखना..बड़ी रुकावटें आने लगी...कोई न कोई बीमार... कभी नुकसान...डा. साहब बहुत विचलित रहते.पहले की तरह न लिख पाते...ऐसा विराम लगा कि यह अधूरा रह गया...और तभी उनकी गर्दन पर एक फुंसी-सी हुई. सोचा, यों ही है ठीक हो जायेगी, लेकिन वह बढ़ती गई. सूजन पर दर्द नहीं.

अब उन्हें जयपुर में बसने का मन हुआ...मनपसंद फर्नीचर का सपना संजोया 'मेरी प्रिय कहानियां' पुस्तक पर राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुए. प्रसन्न थे. नये जोश से भरे हुए चाय पी रहे थे कि बड़े भाई की बेटी ने एकदम कहा कि काकाजी, आपकी गर्दन में तो कैंसर है...जैसे उल्कापात

हुआ. मैं चिंता में घुलने लगी. वह भी परेशान...बायोप्सी करायी...नतीजा सामने आ गया था. सिगरेट बंद. दवाइयां-परहेज. वह अंदर ही अंदर खोखला करने वाली परेशानी–चिंता! बड़ी मारक बेचैनी... उनकी आंखों में आंसू छलछला आते.. पूछती...सांत्वना देती...इस पर सुनती कि तुम केवल चौबीस वर्ष की हो और बिटिया डेढ़ वर्ष की...क्या होगा? आगरा हम गये इलाज के लिये. मंदिर-मंदिर की प्रार्थनाएं. आगरा के सरोजनी अस्पताल में 'डीप-एक्स-रे' हुआ. गांठ गलने लगी. आशा फिर जागी. हम जयपुर आ गये. घर उन्होंने अपने हाथों संवारा...लो, अपना घर देखो. ऐसा तुम्हें देना चाहता हूं, जहां तुम्हें कोई अभाव न रहे...मैं दंग क्योंकि हर कमरा पूरा व्यवस्थित, कलात्मक, सज्जित रसोई...पहली बार 'अपने घर' का गर्व मेरे मन में जागा था. मित्र-बंधुओं का तांता बंधने लगा...फिर जिद कि हर हालत में मुझे एम.ए. करना है. नहीं, अब मां, पत्नी और गृहिणी बनकर मुझे जीने दो..उत्तर कठोर-अटल रहता. नहीं, पढ़ोगी तुम...रसोई बनाने और घरेलू अन्य झंझटों के अलावा भी दुनिया में और काम हैं. मेरी भी हठ अटल...नतीजा? यही रहा कि अच्छा बाबा, पढ़ोगी तो जरूर...रहो घर और दो प्राइवेट परीक्षा...भर आये मेरा फार्म...जी लगता नहीं था पढ़ने में, लेकिन मजबूरी... सतर्क प्रिंसिपल-सी उनकी दृष्टि का घेराव...

■ गर्दन वाली चिंता खत्म?

ऐसा ही आभास था...सुख की वर्षा में सब चिंता धुल-सी गई थी–मेरी ही नहीं इनकी भी..

■ आप इनकी ओर से कैसे आश्वस्त थीं कि इनका मन भी निश्चिंत है?

लिखना, घूमना, गप्पें लड़ाना और नित नये सपने पालना पहले से भी अधिक उत्साही जो हो उठा था...वह शाम याद है, जब बोले...देखो, कितना इत्मीनान और कितनी शांति मिली है...सब कुछ अपना...तुम और बिटिया..यह ढेर-ढेर लेखन...देवता भी करें ईर्ष्या...क्यों?

नहीं जी, देवता क्यों करेंगे ईर्ष्या? हमको तूफान से इन्होंने ही तो निकाला है. दीपावली आयी. खूब धूम-धड़ाका किया. चुपचाप एक मकान का नक्शा बनाया. मुझे दिखाया. देखो भई! हम रखेंगे इसका नाम 'भूमिका'...यही नाम क्यों? इसलिये कि यह होगा हमारा भूमि पर का घर...हमारे जीवन की 'भूमिका' भी...

■ आपने इसीलिये इस घर का नाम 'भूमिका' रखा है?

सच है यह. फिर सचमुच ही देवताओं को ईर्ष्या हो गई. फिर अस्वस्थ..बुखार.. दवाइयां...पैसे की निरंतर जरूरत..लेकिन लिखना वही धुआंधार गति से...मन लिखो इतना...फिर काम कैसे चलेगा? ज्वर बढ़ता जा रहा था. टाइपिस्ट को बुलाकर लिखाने लगे डिक्टेशन देकर..मैं फिक्र से फिर अधमरी...वे बेहद कमजोर हो गये थे.. आश्चर्यचकित होना पड़ता कि लेखनकार्य और बोलने की शक्ति तथा नये-नये विषयों का सिलसिला कहां, किस ऊर्जा से हो रहा था? बेटी का जन्मदिन मनाने का बड़ा उल्लास, मेरे भाई-भाभी को भी आमंत्रित किया कि ठंड, ज्वर और दर्द की भयानक वेदना आरंभ हो गई. जर्मनी डाक्टर हेनिंग को दिखाया. वह भी हैरान कि इतना भयंकर रोग और इतना काम? बंबई ले जाना होगा?

■ आर्थिक-प्रबंध कैसे कर पाईं आप? पहले ही रोज-रोज का बुखार, दवाइयां, डाक्टर-फीस, घर-खर्च आदि...फिर?

मेरे पास तब कुछ इंतजाम नहीं था पैसों का...चिंता भी कि वहां जाने कितना लगेगा! चांदी के बर्तन और भी सामान...वह सब इनके मंझले भाई को बेचने के लिये दिया...इनकी प्रिय चीजें भी...भाई बोले भी थे कि पप्पू को भनक न लगे, वरना दुखी होगा...कैंसर से पीड़ित लोगों का टाटा अस्पताल...बुखार के यंत्रणादायक दौर...मेरे पीहर वाले भी दुखी...मैं पागल हुई देखा करती कि प्रतिदिन आंखों का तेज और चेहरे की दीप्ति बुझती जा रही थी...बुखार की बेहोशी में बुदबुदाये...ओ ज्योतिर्मयी! क्यों फेंका है मुझको इस संसार में?... मैं चिर जीवन का प्रतीक हूं...पग-पग काल झुके हैं...

यों ही आरोह-अवरोह... बंबई के साहित्यकार आते दौड़े...सबसे कहते ठीक हो जाऊंगा...ऐसी थी जिजीविषा...दौरे पड़ने शुरू हो गये थे... संघर्ष.. वेदना... आशंका...मैं गूंगी-अवाक.. अंतिम बार मुझ पर उनकी बड़ी-बड़ी आंखें टिकी थीं. भाई बोले रोकर...जाओ पप्पू...शांति से प्रस्थान करो...हम संभाल लेंगे...और नयन मुंद गये...पीड़ा के भयानक पंजों से विहग मुक्त हो गया...नयन यों ही रह गये भूले ठगे से...

देर तक एक बर्फीली खामोशी पूरे कक्ष में फैल जाती है.

■ उसके बाद आप गांव गयीं या पीहर बंबई में ही रुक गयीं?

बड़ा लंबा सिलसिला पार किया बाद में...पीहर में कुछ दिन ठहर कर खुद को संभाला. जानती थी कि अब संग्राम-स्थल में उतरना है. ससुराल-पक्ष भी कब तक छांव दे पायेगा. उनकी भी अपनी गृहस्थी और समस्याएं हैं...फिर भी वहीं रहकर एम.ए. किया. वक्त चलता रहा. डाक्टरेट की और अपने पैरों पर खड़े होकर तभी से यात्रा जारी है. कभी संघर्ष, कभी तनाव, कभी चिंताएं तो कभी संतोष-सुख...ये पड़ाव आते रहे. आज ईश्वर की कृपा से उनके निर्देशित रास्तों को तय कर पाई हूं. सोचा करती हूं कि इसी कठिन-सफर को सफलता-स्वाभिमान से पार कर सकूं, इसी के लिये डा. साहब रात-दिन पढ़ाते,पढ़ने को प्रेरित करते और अपने से दूर भेजते रहते थे.

■ बिटिया की शादी कर दी आपने?

हां, इसे पूरी शिक्षा दी है. पिता के संस्कार पाये हैं इसने. अशोक शास्त्री के साथ विवाह किया है. दामाद बहुत होनहार है. साहित्य-अभिरुचि का है. बेटी देकर दामाद रूप में बेटा पाया है. हां, मेरे पास ही दोनों रहते हैं. दामाद अच्छे भाग्य से मिला है. जो भी पांडुलिपियां अप्रकाशित रह गयीं. और भी बहुत कुछ आधा-अधूरा, सभी को अशोक जी प्रकाशित करा रहे हैं. डा. साहब के छोड़े कार्यों का बोझ अपने ऊपर ले लिया है. मुझे भी इससे संतोष हुआ है. मैंने भी एक पुस्तक 'पुन:' लिखी है, जिसमें यही सब अतीत उकेरा है.

■ गांव में डा. साहब की बरसी लोग आदर से...प्यार से मनाते हैं?

हां, बराबर...मैं दो-तीन बार गयी थी इस अवसर पर, लेकिन फिर नहीं जा पायी..क्यों? क्यों के कई कारण हैं...मेरी नौकरी...बच्ची की पढ़ाई भी मान सकती हैं...

■ सुना है कि अब जाकर डा. साहब की पुस्तकों की रायल्टी के प्रति ईमानदारी बरती गयी है?

हां, ठीक ही सुना है आपने...जो भी मिला है, उसे मैं रांगेय राघव लेख-माला के लिये लगाती रहूंगी. उनका छोड़ा इतना काम है कि उसे पूरा किया जा सके, तो धन्य मानूंगी.

■ एक स्मृति-पर्व के रूप में न?

हां, यही ध्येय भी है. याद आया..रांगेय राघव स्मृति-पर्व आगरा के के.एम. मुंशी इंस्टीट्यूट में उत्तर प्रदेश संस्थान की ओर से मनाया गया था...कब? शायद मार्च 1983-84 को...समारोह दो दिन का रहा. पहले दिन डा. साहब के चित्रों की गैलरी लगी और उनकी पुस्तकों को प्रदर्शित किया गया. वे पुस्तकें भी, जिनमें काव्य के साथ-साथ उनके बनाये संदर्भित चित्र भी थे और दूसरे दिन उनके लेखन पर साहित्यिक चर्चा तथा पूरे चार-पांच घंटे तक संस्मरण-गोष्ठी चली... जी हां, मैं और बेटी दोनों ही शामिल हुए थे.

■ रांगेय राघव नाम आज भी आपके अस्तित्व को रोमांचित कर देता है?

जी हां, यह नाम मेरे लिये सदैव एक सुरक्षात्मक ढाल बना रहा है. गौरव-गरिमा और गर्व का प्रतीक भी. आज भी लगता है जैसे कोई भारी बरगदी छाया मेरे समूचेपन को दाबे-ढके बैठी है... □

'बंजर धरती' (उप.), 'एक और द्रोपदी' (कहानी संग्रह) के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं तथा संकलनों में कहानियां तथा लेख प्रकाशित.

संप्रति : प्राध्यापक

संपर्क : 1, मोती डूंगरी, अलवर

मोहर सिंह यादव

मंत्री जी चमेली की ओर तनिक खिसके और उसके हाथ को अपने हाथों में ले लिया, उंगलियों की सीढ़ियों पर जब उंगलियां फिसलने लगीं तो चमेली की कनिष्ठिका हाथ में आते ही मंत्री जी का हाथ जड़ हो गया...

स्कूल के खुले चौक में बैठे थे गांव के सब लोग. पांच-पांच, सात-सात जन ठलों और झुंडों में, हुक्का-चिलम पीते हुए. सबसे घना ठला मुरली के इर्द-गिर्द भेला हो गया. लोग अपने-अपने कामों के बारे में बतिया रहे थे, मुरली पंच से. उनका विश्वास था कि मुरली के इशारे से काम को सहारा मिल जायेगा. उदमी को भूमि विकास बैंक से कुआं बनवाने के लिए ऋण लेना था. समदीन को अपने छोरे का तबादला करवाना था. सुक्खा के खेत की माप में पटवारी गड़बड़ कर रहा था. दीना थाने में उलझा पड़ा था. रामदीन की जेब में कुड़की का नोटिस पड़ा था. मंगल बनिया घासलेट के परमिट को कबाड़ने के फिराक में था. हरखू का एम.ए. पास छोरा तीन साल से चपरासी तक की नौकरी पा लेने के जुगाड़ में था. भोलू चमार की बहू को हरपाल सिंह का आवारा लौंडा शहर भगा ले गया था. ऐसे ही ढेर सारे काम थे, गांववालों के, जो मुरली के सहारे और मंत्रीजी के इशारे से बैतरणी पार कर लेने का खूबसूरत ख्वाब संजोये बैठे थे.

आसोज का उतरता पखवारा था. चौमासे के बाद आकाश का धुला-स्वच्छ आंचल कोरेकट्ट तारों की चहलकदमी से जगमगा उठा. तभी दक्षिण के माथे से एक वायुयान उठा और नभ के सीने को चीरता हुआ मोती डूंगरी की चोटी से उत्तराखंड की आगोश में फिसल गया. उसकी बहुरंगी बत्तियां झपक-झपक ओझल हो गयीं. हुक्कों की आवाज, जो वायुयान की गड़गड़ाहट तले दब गयी थी, अब पुनः वातावरण में तिर आयी और दालान में बुलबुले से फोड़ने लगी.

''बंबई वाली डाक है सायद ये चीलगाड़ी!'' हरला बोला, ''सही दस बजे निकले है उरा से रोजीना.''

''डलेवर गजब का है इसका!'' मनकू ने कहा, ''अभी फट्ट देनी पालम के अड्डे पै पहुंचा देगा. दनदनाता हुआ.''

''अब तो घणी देर हो गयी, प्रधानजी, हम जायें अपने घर-बार.'' आंखें जब नींद तले दबने लगीं, तो सबला ने विषयांतर कर पूर्व प्रधान से पूछ लिया.

"मैं के बताऊं, माय!" पूर्व प्रधान ने अपनी स्थिति स्पष्ट की, "मैं बी तुम जैसा ही हूं. खानापूर्ति की खातर. जाने की पूछो उस मुरलिया से. वही बना हुआ है अब तो सगले गांव का लाट साब!"

मुरली पंच कोई बीसेक डग दूर बैठा रुतबे के साथ बीड़ी सुड़क रहा था. पूर्व प्रधान का ताना सुनते ही उसकी गगरी छलक पड़ी. उसने नहले पर दहला तपाक से टिका दिया. बोला, "लाट साब हूं, तो मैं अपने दमखम पर हूं. खैरातियां नहीं हूं औरों की तरह. बात बनाते हैं निकर्मे लोग."

"छोड़ो जी, पंच जी." मनकू ने मौका मिलते ही चिलम भर दी, "थम तो मुखिया हो गांव के."

"अरे, मैं के गोली मार रहया हूं!" मुरली खड़ा होकर बोला, "देखो, बस्ती माता! लगता है, मंतरी जी कहीं फंस गये हैं. अब घनी रात हो गयी. हारे-थके आयेंगे और रोटी-टूक खाके तनक बिसराम भी करेंगे. थम बेसक सोओ, पर दिन उगे आ जइयो. सभा होगी. लोह लाठ."

"बहोत चोखो." सबसे बेगा रामला उठा और धूल सनी लंगोटी को हथेली से झाड़ता हुआ अपने घर की राह पर चल दिया. खरामां-खरामां.

अब तो देखादेख पूरे चौक में हलचल हो गयी. बस्ती माता के भेले हुए लोग अपने घरों की ओर टुरकने लगे. कुछेक क्षणों में चौक काई फटे तालाब-सा साफ हो गया. मुरली के अलावा वहां एक चिनबच्चा भी नहीं बचा था.

स्कूल के अगली-बगली आलों में जलते हुए हांडे सूंSसाSS रहे थे. चिगरे हुए सांडों की तरह.

मुरली ने मोढ़े पर बैठकर बीड़ी सुलगायी ही थी कि तभी चंदर और सरुपा आ गये. वे खाने का सामान लाये थे.

"हमने तो सोचा कि मीटिंग खत्म हो लई." चंदर बोला.

"अरे, कहां हो लई?" मुरली के चेहरे पर चिंता चिपकी हुई थी. बोला, "खाना रखकर तुम खाट-पीढ़ी और पानी-पात का इंतजाम भी कर दो."

"वोS तो कर दिया." सरुपा ने सविस्तार बताया, "बरंडे वाले कमरे में छह खाटों पै बिस्तर कर दिये और हैडमासाब के दफ्तर में मंतरी जी का पलंग."

"खाना किंतनेक जनों का बनाया है?" मुरली का दूसरा प्रश्न था.

"चाहे खा लो बीस-पच्चीस मिनख."

"तब तो घणा ही है." मुरली ने उनकी ओर बीड़ी बढ़ायी, "लो, नेक सुस्ता लो बीड़ी के साथ."

वे दोनों धरती पर तख्त से पीठ लगाकर उकडूं बैठ गये. चंदर ने उंगलियों के बीच फंसाकर एक साथ दो बीड़ियां सुलगा लीं. उसने एक सरुपा को थमा दी और दूसरी स्वयं पीने लगा. चुसड़-चुसड़.

"पंच साब, अबके तो कोई जीपड़ी की सी आवाज आयी!" चंदर बीड़ी का गुल झाड़ते हुए बोला, "ततारपुर सामे घुर्रSघुर्रSS हो रही है."

मुरली तख्त पर खड़ा हो गया. सैंटक. ततारपुर की ओर नजर घुमाकर बोला, "रुखों के बीचाले में से चांदना तो दिख रहा है."

"कोई टैक्टर भी हो सके है!" सरुपा ने आशंका की.

"अरे यार, टैक्टर की आवाज ऐसी थोड़े ही होवे है!" चंदर ने अपने अनुभव की बात कही, "वोS तो, ससुरा, कई कोस दूर तलक भड़भड़ावे है. लुढ़कते रोड़ों की जूं. ...और यों आवाज मलूक है, रस्टन इंजन-सी."

"पक्कम जीप है." मुरली ने तोड़ करते हुए निर्देश दिया, "अब तुम फटाफट अपने काम-धाम में जुट जाओ."

जीप की रोशनी अब स्कूल की मुंडेर पर झिलमिलाने लगी थी. मुरली तख्त से नीचे उतरा और फूलों की माला लेकर आंगन पर आ गया. मंत्रीजी की आवभगत की खातिर.

"राम साब, आओ पधारो." मुरली ने माला पहनाकर हाथ जोड़ लिये.

"राम भाई!" मंत्रीजी ने मुरली के कंधे पर हाथ धरके कहा, 'यार, आज तो देर हो गयी."

"हो जावे है." मुरली के हाथ अभी भी जुड़े हुए थे. पूर्ववत.

"दोफर गिरवास में रोटी खाके बिसराम किया था." मंत्रीजी ने देरी का कारण बताया, "वहां आंख लग गयी. बघेरी की अगली सभा तीन घंटे लेट शुरू हुई. उसके बाद हरसौली, रैणागिर, पेहल और ततारपुर की सभाएं भी लेट होती चली गयीं."

"थम बिराजो तो सही." मुरली लपककर मोढ़ा खींच लाया. आगे बोला, "वैसे बी दीन दुखियों की अरज सुनबा में खूब टेम लगे है. थारो सुभाव खूब फोसरो है. लोग-बाग मनुहार करते रहे और आप टेम देते रहे."

"वोS तो है ही." मंत्रीजी ने हांकारा भरा.

पी.ए., ड्राइवर और गनमैन सारा सामान लेकर बगली कमरे में चले गये. सरुपा और चंदर उनकी आव-भगत में लगे थे. एक अन्य व्यक्ति मंत्रीजी से दसेक डग दूर आकर खड़ा हो गया. मंत्रीजी को अचानक ध्यान आया. बोले, "अरे, हां, मुरली! मैं तो भूल ही गया था. इनसे मिल. ये हैं चौधरी तोप सिंह. रैणागिर के सरपंच. रुतबेवाले ठाडाठेल माणस हैं. सारे चौखले में इनकी तूती बजती है."

"बहोत चोखा!" मुरली ने तपाक से तोपसिंह का हाथ अपने हाथों में ले लिया.

"सरपंच साब, आप पी.ए. वाले कमरे में आराम करो." मंत्रीजी ने तोपसिंह से कहा, "खाना-वाना खाके सोओ, उठ के साथ."

तोपसिंह के जाने के बाद मंत्रीजी मुरली से बातें करने लगे. बोले, "गांववालों ने खूब बाट देखी होगी मेरी."

"हां." मुरली ने कहा, "दस बजे तक सगला गांव बैठा रहा. फेर मैंने ही घर जाने की कह दी सबको."

"अच्छा किया."

"सुबह बुला लिया सबको सभा के वास्ते." मुरली ने आगे बताया.

"अरे वाह!" मंत्रीजी मुस्कराये, "तू तो मेरी रग-रग का भेदी है. सौलह आने खरा हीरा."

"चेला हूं थारा." मुरली की बत्तीसी खिल गयी.

रात स्याही-सी कजरा गयी थी. आकाश की लुगड़ी में गुथे-चिपके सितारों का जोबन संवर-निखर आया था. धरती के जिस्म से ठंडक विकिरित होने लगी थी. गांव के गलियारों में खामोशी बिछ गयी. एक चिर-परिचित-सा सन्नाटा पसर गया था सारे माहौल में. चांद के उजास में अभी देरी थी, पर अरुणाचल के आंचल पर दूधिया धार उकस आयी थी.

"तेरे कने कुछ है आज?" मंत्रीजी ने पूछा.

"हां." मुरली बोला, "कल ही लाया हूं."

"कैसीक है?"

"चौकी हिरनी-सी. फन्ने खां."

"सच्चS!....कैक साल की है?"

"होगी कोई बीस-बाईस के दरम्यान."

"रूप रंग?"

"कांसी की कटोरी है—टनाटन."

"नाक-नक्श?"

"सलीमा की रेखा-सी."

"कमाल है!" मंत्रीजी के होंठ आर्द्र होने लगे.

"गिर्राज जी महाराज की कसम!" मुरली फुसफुसाया, "छोरी ऐसी है ज्यूं जीन कसी लवानक घोड़ी."

"तो फिर चलें तेरी बैठक में."

"चलो, थाने राज-पाट से बी ज्यादा आनंद आ जायेगा."

शौर्यकथा

वीर नरबद

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

राणा कुंभा संगीतज्ञ, शूरवीर, और कूटनीतिज्ञ थे. एक बार दरबार लगा था तो एक सरदार ने योद्धा नरबद राठौड़ की स्वामिभक्ति के बारे में संदेह के बीज बो दिये. उसने कहा—नरबद जी आपके प्रति अब वैसे स्वामिभक्त नहीं है जैसे — पहले थे. उन्हें अपनी वीरता पर अभिमान है.

राणा कुंभा बोले, ऐसा नहीं हो सकता. वे अब भी एक लिंग दीवाण के प्रति अपना सब कुछ विसर्जन कर सकते हैं.

"बड़ो हुक्म, फिर परीक्षा लेकर देख लिया जाये."

बातों ही बातों में राणा कुंभा ने नरबदजी से नेत्रदान देने का परवान लिख दिया.

राठौड़ नरबदजी का एक नेत्र पहले ही युद्ध में चला गया था एक ही नेत्र था. राणाजी का विचार था कि जब वे नेत्र देने लगेंगे तो उन्हें रोक दिया जायेगा पर जब परवाना लेकर सरदार पहुंचा और उसने परवाना दिया तो स्वामीभक्त नरबद ने कुछ देर सोचा, फिर रानी सुपियार दे को स्थिति बतायी.

सुपियार दे—नरबदजी को बहुत ही प्यार करती थी. उन्होंने उसे मना किया. प्राणनाथ जिस स्वामी के लिए आपने निरंतर त्याग किया है, वे क्या इतनी जघन्य परीक्षा लेंगे. लग रहा है कि यह कोई आपके प्रतिद्वंद्वियों की चाल है."

जो व्यक्ति परवाना लाया था वह बाहर खड़ा था. वह रावले में जी नहीं सकता था.

रानी की बात से असहमत होते हुए नरबद ने कहा, "यह षड्यंत्र हो या उपहास पर मैं अपना नेत्र दूंगा. परवाने में लिखा है कि यदि आप मेरे सच्चे सेवक हैं. तो परवाना पढ़ते ही अपना नेत्र दे दीजिए."

और रानी के मना करते-करते कटार से नरबदजी ने अपना नेत्र निकाल कर दे दिया.

"वाह, भइ वाह!" मंत्रीजी की जीभ अधरों के मैदान में कदम-ताल करने लगी थी.

"लो उठो फेर." मुरली खड़ा हो गया.

मंत्रीजी ने पी.ए. को आवाज दी. पी.ए. अपनी डायरी लेकर तत्काल आ गया. मंत्री जी भी अब मोढ़े से उठ गये थे.

"खाना खा लिया?"

"यश, सर."

"ऐसा करना," मंत्रीजी बोले, "सुबह आठ बजे सभा है. मुरली के आदमियों से मिल-मिलाकर इंतजाम करवा लेना और लोगों के काम डायरी में नोट कर लेना. मैं मुरली के घर जा रहा हूं."

"ठीक है, सर." कहकर पी.ए. लौट गया.

मंत्रीजी और मुरली भी उठे और कानाफूसी करते हुए मुरली की बैठक की ओर टहलने लगे.

"तू कई दिनों से आया नहीं जैपुर." मंत्रीजी ने राह चलते मुरली से धीरे से पूछा.

"धंधे में फंसा पड़ा था."

"यार, ऐसा क्या धंधा! अब तो वैसे भी तू बेधड़क है."

"आपके मंतरी बनते ही मैं तो इमली के पत्ते पै डंड पेल रहा हूं."

"पुलिस तो तंग नहीं कर रही न, आजकल?"

"बिल्कुल नहीं. आपने एसपी अव्वल अफसर भिजवाया है. बड़ी रंगीन तबीयत का मिनख. वोऽ जो राजगोपालन था न, घणा हरामी था. कहन-सुनन मानता ही नहीं था. मजा आ गया, आपने उस कुलींच को बैरंग कर दिया."

"और थानेदार?" मंत्रीजी स्वयं की प्रशंसा सुनने में तल्लीन थे.

"थानेदार तो खैर वो भी खाउ था, पर एसपी से फटती थी साले की. और अब जो भेजा था थमने वोऽ दिलफेंक प्राणी है."

"कितनेक कमा लिये तूने?" मंत्रीजी तुरंत मतलब की बात पर आ गये.

"ठीक-ठाक जुगाड़ हो गया." मुरली बोला, "आठेक सौदे किये हैं. इनमें आधाक खर्च अफसर, किराया-भाड़ा, दारू-दपारू और खाना-खुराक में चला गया."

"अब कितनाक बचा तेरे कने?"

"बीसेक हजार." मुरली समर्पण के स्वर में कहने लगा, "आपका आधा हिस्सा अभी पेस कर दूंगा."

"अब नहीं!"

"तो....?"

"कल सुबह मेरे को माला पहना देना सभा में." मंत्रीजी ने सुझाव दिया, "चुनाव नजदीक है. अपनी हवा बनेगी. देखा-देखी दूसरे लोग भी हाथ-पांव हिलायेंगे. सहज अपना फंड भेला हो जायेगा."

"चुनाव में तो नोटों की झड़ी लगा दूंगा." मुरली ने उत्साह दिखाया.

"भई, नोट और वोट—दोनों ही चाहिए."

"दोनों मिलेंगे." मुरली ने मंत्री जी को आश्वस्त किया, "बस, आप तो टिकट कबाड़ लाना पार्टी का."

"वोऽ तो मेरी जेब में धरा है." स्वयं सिद्धि होते ही मंत्री जी ने विषयांतर किया, "खैर छोड़, तू तो यह बता प्रधान हजरत के क्या हाल है?"

"बरफ में लगा पड़ा है, ससुरा."

"अब चुनाव तक मैं उसे थोड़ा-सा मौका दूंगा."

"उस पै कहां वोट धरे हैं?" मुरली ने हिकारत से अपना मुंह बिचका लिया.

"फिर भी वो एक थोक का मालिक है."

"पर गुरु जी वोऽ ऊंची रकम है." मुरली के स्वर में चिंता थी, "एक मौका मिलते ही मेरे को आले में बैठा देगा."

"अरे नहीं." मंत्रीजी दृढ़ता के साथ बोले, "उसके ब्रेक मेरी एडी तले हैं. तू बेफिक्र रह."

"मैं तो थारे पीछे हूं." मुरली ने अपने मन की बात कह दी.

बातबातों में सारा रास्ता कट गया. मुरली की बैठक आते ही मंत्रीजी लघुशंका के लिए दीवार के आगे बैठ गये. उकड़ूं, जैसे खो-खो खेल रहे

हों.

मुरली ने दरवाजे का कुंडा खटखटाया, तो भीतरी सिटकनी खुलने की आवाज आयी. अगले ही क्षण दरवाजा खुल गया चौपट.

''मैंने दुफ्फर कहा था न, मंतरी जी आ गये हैं.'' मुरली ने अंदर जाकर धीरे से कहा.

''ठीक है.'' वह लाचार-सी खड़ी थी. एक कमसिन औरत.

तभी बैठक में मंत्रीजी आ गये. वे सोफे पर बैठकर गांधी, नेहरू और बजरंगबली की दीवार पर लटकी तस्वीरों को देखने लगे.

''यह है, चमेली.'' मुरली ने मंत्रीजी का ध्यान तोड़ा, ''बड़ी खुशमिजाज छोकरी है.''

मंत्रीजी ने निःशब्द लड़की की ओर देखा और नजर पड़ते ही दंग रह गये. उन्हें ऐसी खूबसूरती की कतई उम्मीद नहीं थी.

चमेली ने सिर पर साड़ी का पल्लू तनिक खींचा और मंत्रीजी के सामने अभिवादन स्वरूप आंवले लदी डाल-सी झुक गयी.

''मैं चलूं.'' मुरली ने पुनः मंत्रीजी का ध्यान तोड़ा, ''दवाई इस आले में धरी है और खाना चमेली खिला देगी.''

''तू भी ले लेना दो घूंट.'' मंत्रीजी ने सुझाया.

''ना. ....मेरे कने कस्तूरी धरी है.'' जाता हुआ मुरली बोला, ''मेरे कू या साली अंग्रेजी हुसकी चोखी ना लगे. गधा को सो मूत!''

नींद के बिछौने में रात की रजाई ओढ़े सारा गांव निदंड़क सोया हुआ था. चांदी की हंसली के मानिंद चमचमाता चांद पूर्वांचल की गर्दन पर लटका झूल रहा था.

पर मंत्रीजी की दृष्टि चमेली के चेहरे पर ही चिपकी हुई थी. वे भावविभोर से बैठे उसे निहार रहे थे. सारस जैसी छरहरी गर्दन पर बड़गोले-सी विशाल आंखें. पतले-पतले कागजी होंठों के बीच धाक मारती बसमातिया दंतावली. मैना जैसी सुंदर-सुडौल नासिका. गंगा के मैदान-सा समतल-सपाट ललाट. भौहें ऐसी गहरी-वक्राकार कि जैसे दो गांडीव लटक रहे हों, बराबर-बराबर, आंखों की खूंटियों पर.

मंत्रीजी से आंख मिलते ही वह मुस्करायी. उसके नथूने व होंठ एक साथ फड़के और बायें गाल के मध्य, एक गड्ढा बन गया. गोलाकार, तरण ताल-सा.

कुदरत के इस कमाल को देखकर मंत्रीजी थूक गिटकते हुए उस ताल की गहराई में डुबकी लगाने लगे. गुपच...गुपच.

''चमेली!'' बैठक की खामोशी को मंत्रीजी की कामुक जिज्ञासा ने धंधेड़ा.

''हां.'' वह भीगी ऊन-सी सिकुड़ गयी.

''बड़ा मीठा नाम है, तुम्हारा—महकदार.''

''जी...थारी पगडंडी हूं.'' उसकी पलकें पर्दे की तरह नीचे लटक गयीं. मन ऐसा पिघला जैसे कि मांटी को आकाश छू गया हो.

यह सुन मंत्रीजी बरगद की तरह फैल गये और चमेली उन्हें ऐसी लगी, जैसे तने का सहारा लेने को आतुर बेल खड़ी हो.

''ऐसा कर, आले में से बोतल उठाके पैग बना.'' मंत्रीजी बोले.

वह आले से बोतल और गिलास ले आयी. बैठक के कोने में तिपाई पर पानी की मटकी रखी थी. उसने तांबे की घंटी से पीतल का लोटा भर लिया.

मंत्रीजी के सामने मोढ़े पर बैठते हुए उसने पूछा, ''कितनीक परोसूं?''

''आधा गिलास, फिर ऊपर से पानी.'' मंत्रीजी बोले.

''चबीनी बी लाऊं.'' चमेली ने पुनः पूछा.

''क्या है?''

''बीकानेरी भुजिया.''

''ले आ, थोड़ी-सी.''

वह उठी और एक तस्तरी में नमकीन भुजिया ले आयी. जब बैठने लगी, तो मंत्रीजी जोधपुरी शैली में पूरा गिलास एक सांस गिटककर बोले, ''वहां नहीं, मेरे कने बैठ. आजा.''

वह मंत्रीजी से सटकर सोफे पर बैठ गयी. मंत्रीजी मछली की तरह लहराती उसकी कमर को टक-टक देखते रहे. एकटक.

''और परोसूं....'' उसके स्वर में मायूसी थी.

''हां.'' मंत्रीजी के मानसरोवर में अब ज्वार-सा उठने लगा था.

उसने गिलास बनाया. मंत्रीजी एक ही झटके में पैंदे तक पहुंच गये. पहले की तरह.

''और...'' वह सकुचाती हुई बोली.

''हां.'' मंत्रीजी के चेहरे पर ललाई और आंखों के गुलाबी डोरे गाढ़े होने लगे थे.

वे चमेली की ओर तनिक खिसके और उसके हाथ को अपने हाथों में ले लिया. उंगलियों की सीढ़ियों पर जब उंगलियां फिसलने लगीं, तो चमेली की कनिष्ठिका हाथ में आते ही मंत्रीजी का हाथ जड़ हो गया.

''तेरी इस चिटली का पोखा कहां गया?'' मंत्रीजी न चौंककर पूछा और उंगली को गौर से देखने लगे.

''कुत्ता खा गया था.''

''कब?'' मंत्रीजी के माथे की सिलवटें उलझने लगी थीं.

''कई बरस पहले.'' वह सायास बोली.

मंत्रीजी गुम हो गये. उन्होंने बोतल उठायी और पांच-सात घूंट निरी पी गये बोतल की नाल से. वे झटपट उठे और बैठक से बाहर चले गये.

चमेली वहीं बैठी रही चुपचाप. विचारों के धागों से लिपटी हुई.

''अरे ये छोरी कहां की है?'' चौक के उस पार पौली में जाकर मंत्रीजी ने मुरली से पूछा.

''झांसी के नीमला गांव की.''

''ब्याही है कि कुंआरी?''

''ब्याही.''

''कहां है इसका खसम?''

''छत्तीसगढ़ के किसी स्कूल में चपरासी बताया.''

''बाप और मां?''

''मां मर गयी. बाप बूढ़ा फूस है. पहले गाने-बजाने का काम करे था. अब बीड़ी बनावे है.''

''भाई-बहन?''

''भाई रसोइया था फौज में. शकरगढ़ में मारा गया बताया. बहण किसी ठेकेदार की रोटी सेके है, चंबल बांध पै.''

''नहीं, यह झूठी है.'' मंत्रीजी का रक्तचाप बढ़ गया था.

''कैसे?'' मुरली ने पूछा.

''अरे यह तो वही छोकरी है, जिसे आठ साल पहले मैं लाया था.'' मंत्रीजी बताने लगे, ''उस समय यह सोलह साल की थी. याद कर, मैं इसकी चिटली खा गया था और यह रात को भाग निकली थी.''

''अच्छा, वोऽ जिसने धौलपुर में जाकर थारे खिलाफ रपट लिखवायी थी.'' मुरली याद करता हुआ बोला, ''जिसमें हजारों रुपये का गारा करके केस रफा-दफा करवाया था.''

''हां, वही.'' मंत्रीजी के मस्तिष्क में सारी घटना चित्रपट की भांति प्रतिबिंबित हो गयी.

''अब मैं स्कूल में ही सोऊंगा.'' यह कह मंत्रीजी पौली से बाहर निकल गये. वे अपने अतीत के जाल में उलझे हुए थे. मुरली उनके पीछे था—असहाय बेचारा. उसका माथा भतूलिए की तरह चकरा गया था. □

'पानीदार तथा अन्य कहानियां', 'सुखांत के सपनों में' (कहानी संग्रह) 'धड़ंद' (राज. कहानी संग्रह) और 'भोळावण' (राज. उपन्यास)
संप्रति : नौकरी
संपर्क : कालूबास, श्रीडूंगरगढ़ (चूरू) 331 803

मालचंद तिवाड़ी

हैड मास्टर

''मैंने बड़े जोश से घर में कदम रखा था. सबसे पहले पिताजी मिले. मैंने उन्हें हुमककर बताया,'' मैं आज अकेले ने तीन गोल कर डाले पापा!''बदले में एक भरपूर झापड़ मेरे गाल पर पड़ा...''

तीस के आसपास की आयु के दीपक शर्मा को देखकर लगता मानो उनके सिर पर कोई अदृश्य पहाड़ रखा है. उनके मुंह पर उदासी का बुरादा-सा फैला रहता. न जाने कहां से, वे सदा-सदा धुंधलाये हुए लगते. वे माप-माप कर बोलते, काम से काम रखते और इस दुनिया में हंसी-खुशी भी कोई चीज है, इसका तो जैसे उन्हें कभी एहसास ही नहीं हुआ था. यह रवैया देखकर पहले कई दिन तक मुझे एक बेतुका-सा खयाल सताता रहा कि बेचारे दीपक शर्मा की यह हालत कहीं उनके अपना ज्यादातर वक्त 'डार्क-रूम' में बिताने से न हुई हो!

दीपक शर्मा का अपना स्टूडियो है. उन्होंने फोटोग्राफी कब, कहां सीखी, मुझे नहीं मालूम. लेकिन स्टूडियो उन्होंने शिक्षित बेरोजगारों को बंटनेवाले सरकारी ऋण से मेरे देखते-देखते ही खोला था. मैंने बहुत सोचा कि दीपक शर्मा इतने गुमसुम और चुप्पे-चुप्पे क्यूं हैं? और आखिर भला उनकी उम्र ही क्या है! थोड़ा-बहुत तो आदमी का हंसने-चहकने से भी नाता होना चाहिए कि नहीं! लेकिन इनमें से एक भी सवाल मैंने उनसे उनका रुख देखकर कभी नहीं पूछा. हां, मिलने पर, मैं किसी जासूस की-सी निगाह से, उनके चेहरे की एक-एक रेखा छिपकर पढ़ने की कोशिश में अक्सर अपने को पाता था. ऐसा करने में मेरे हाथ नित-नयी संभावनाएं लगतीं, जो परस्पर इतनी विरुद्ध पड़ जातीं कि किसी एक पर ठहरना ही मुश्किल हो जाता था.

इसी तरह दीपक शर्मा को देखते-भालते कई दिन बीत चुके. और एक दिन यह हुआ कि मैं अपनी धुन में खोया हुआ उनके स्टूडियो की तरफ झांके बिना ही चुपचाप गुजर गया. वह दिसंबर की कोई शाम थी जो रात की हदों में पांव बढ़ा रही थी. पाला समूचे कस्बे को फंफेड़ डालने पर उतारू लगता था. सूरज डूबते ही लोगों के कलेजे कांपने लगते और वे अपने बिस्तरों में जा दुबकते. ऐसे में, मुझ सरीखा कोई छड़ा-मलंग, जिसे घर पर रोकने-टोकनेवाला कोई न हो, बाहर नजर आता तो आता. पर मुझे अपने सिवाय कोई नजर नहीं आया था. मैं अकेला, ठंड से कांपते होंठों से सीटी बजाने की भरसक कोशिश करता, चाय की तलाश में भटक रहा था कि मुझे अपने नाम की पुकार सुनाई पड़ी. मैंने पीछे मुड़कर देखा तो गहरा अचंभा हुआ—साक्षात् दीपक शर्मा अपने स्टूडियो की सीढ़ियों पर खड़े मुझे अपने हाथ से करीब आने का इशारा कर रहे थे.

कुछ देर बाद मैं दीपक शर्मा के साथ उनके स्टूडियो में था. दीपक शर्मा ने दरवाजा उढ़का लिया था. मुझे स्टूडियो की गरमी सुहानी लग रही थी. गरमी की वजह शायद यह थी कि दीपक शर्मा ने हजार-हजार वाट के दो बल्ब जला रखे थे, जिनसे वे अपने ग्राहकों की तस्वीर उतारते वक्त उनके चेहरों पर चमक लाने में मदद लेते होंगे. वे उसी स्टूल पर, जिस पर ग्राहक को बिठाकर उसकी तस्वीर उतारी जाती, ठीक मेरे सामने बैठे थे. दोनों बल्बों की पूरी रोशनी उनके चेहरे की हर फांक तक में घंसी बैठी थी. मैं कुर्सी पर बैठा उनका मुंह ताक रहा था. वे बिल्कुल चुपचाप थे. उनकी चुप्पी से आजिज आकर मैं ही बोला, "और शर्माजी, सुनाओ क्या हाल हैं?"

दीपक शर्मा ने आंखें झपकायीं. फिर अचानक ऐसे बोले जैसे किताब में पढ़कर बोल रहे हों, "आप कहानी लिखते हैं न?"

यह सवाल और दीपक शर्मा की जुबान पर? मैंने सच्चे संकोच के साथ बताया, "हां, कभी-कभी."

वे फिर चुप. थोड़ी देर हुई, तो वे उठे और काउंटर के दराज में से टीन की दो डिब्बियां उठा लाये. एक में जर्दा था, दूसरी में चूना. उनके स्टूडियो में मेरी आवभगत का यही सरंजाम हुआ करता था. मैं जर्दा खाने के निमित्त से ही उनके पास आता-जाता था. सदा की तरह आज भी उन्होंने हथेली पर जर्दा निकाला और उस पर अंगुली से चूना मसलने लगे. उनकी गर्दन अपनी हथेली पर झुक चुकी थी.

"जब मैं एकदम लड़का ही था," दीपक शर्मा बहुत धीरे बोले और एक बार मेरे सामने देखकर आंखें झपकाने के बाद फिर अपनी हथेली घूरने लगे. कुछ देर बाद और बोले, "मुझे फुटबाल खेलने का बड़ा चाव रहता था. मैं बहुत बढ़िया खेला करता था. सब कहते थे कि मैं बड़ा होकर कोई नामी खिलाड़ी बनूंगा. और एक दिन मैं कोई मैच खेलकर घर आया था. मैंने बड़े जोश से घर में कदम रखा था. सबसे पहले पिताजी मिले. मैंने उन्हें हुमककर बताया, "मैंने आज अकेले ने तीन गोल कर डाले, पापा!"

"सड़ाक! बदले में एक भरपूर झापड़ मेरे गाल पर आ पड़ा, जिसके पीछे पिताजी गरज उठे, "हरामखोर...आइने में अपनी शक्ल तो देख जरा...इंसान की नहीं, तू किसी भूत की औलाद नजर आ रहा है. ये घुटनों तक गंदे पैर लेकर घर में कैसे घुसा? तीन गोल! जा, पहले जाकर स्नान कर, फिर मेरे पास आना."

"मेरी आंखों से चौसारे चल पड़े. मैं रोता-रोता मां के पास पहुंचा. मां ने कहा कि पिताजी आज बड़े गुस्से में हैं. मैं चुपचाप पढ़ने बैठ जाऊं, इसी में भलाई है. मैं पहले नहाया और फिर पढ़ने बैठ गया. मेरा तीन गोल करने का जोश साबुन से धुलकर पानी में बह निकला."

दीपक शर्मा इतना कहकर फिर चुप्पी लगा गये. मैं उठने की सोचने लगा, कि अचानक वे फिर बोल पड़े, "इस छोटी-सी घटना के बाद मुझे अपने अंदर-अंदर एक बदशक्ल अमूर्त उमड़ती लगने लगी थी. मैं बात-बात पर रो पड़ने लगा. दिल करता कि कुछ तोड़ डालूं, बिखेर दूं, फाड़कर फेंक दूं...पर पिताजी के खौफ से मैंने कुछ भी नहीं किया. बस, मन ही मन पिताजी से बचकर रहने में ही अपनी शरण ढूंढ़ डाली. घर से निकलना बंद हो गया घर से स्कूल और स्कूल से सीधा घर और इस रास्ते में एक ही एक बात मुझे झिंझोड़ती रहती, "तीन गोल! हूं-आ...जा, पहले जाकर स्नान कर..." सच तो यह है कि मुझे स्नान करने के नाम से ही चिढ़ होने लगी. पिताजी के सामने न पड़ने की तो मैंने कसम ही उठा ली थी.

दीपक शर्मा आज मुझे सकते में डाले, अबाध, बिना उतार-चढ़ाव के बुझे-बुझे शब्दों में बोले जा रहे थे. कहने लगे, "फिर एक दिन सवेरे क्या हुआ कि मैं छत पर धूप में बैठा पढ़ रहा था. मेरी मां आंगन में सिगड़ी जलाये रोटियां पो रही थी. पास मुढ़ी पर मामाजी आये बैठे थे. मां और मामाजी की बातचीत तिर-तिरकर मेरे कानों तक भी पहुंच रही थी. मैंने सुना, मां मेरी सराहना कर रही थी कि मैं आजकल बड़ा सयाना हो गया हूं. मैं फालतू पदड़के मारता नहीं फिरता. मैं बिना बार-बार कहलवाए पढ़ने बैठ जाता हूं और खूब पढ़ता हूं. मुझे अपनी बड़ाई सुनकर गुस्सा आने लगा. पर करूं क्या, सोचता किताब के पन्ने पलटता रहा. पलटते-पलटते एक पाठ पर मेरी निगाह पड़ी जिसका शीर्षक था "उपवास का महात्म्य." दो दिन पहले यह पाठ हमें स्कूल में पढ़ाया गया था. मुझे सारा याद था. इसे बापू याने महात्मा गांधी ने लिखा था. इसमें उनकी शिक्षा थी कि मन की शांति के लिए उपवास और मौनव्रत करना चाहिए.

"उपवास मुझे कम जंचा. लेकिन मौनव्रत का रास्ता मुझे अपने मन-मुताबिक लगा. मैं वैसे भी चुपचाप रहने लगा था. पर व्रत तो बताकर करना जरूरी था. इसलिए मैंने अपनी कापी से पन्ना लेकर उस पर लिखा, 'मैं तीन दिन का मौनव्रत रखता हूं. जो कोई मुझे बुलवायेगा उसको पाप लगेगा.' इस कागज की गेंद बनाकर मैंने आंगन में उछाल दी. थोड़ी-देर में ही मुड़ा-तुड़ा कागज पढ़ते और जोर-जोर से हंसते मेरे मामाजी ऊपर आये और मेरे गुदगुदी करने लगे. मैं हंसने की जगह रोने लगा, तो वे मां को बुला लाये. मां ने प्यार से समझाया, 'व्रत करो भले ही, लेकिन टूटने से मन और कमजोर होगा. व्रत टूटना नहीं चाहिए.'

"मेरा व्रत अटूट रहा. पूरे तीन दिन मैंने बिना जीभ हिलाये निकाल दिये. तीसरे दिन शाम को मां ने प्रसाद चढ़ाया और बड़ी खुशी-खुशी थाली मुझे पकड़ाकर बोली, "जा, सबसे पहले अपने पिताजी को प्रसाद दे आ और उनके पांव छूकर व्रत खोल डाल. अपने व्रत की बात तू अपने मुंह से ही उनको सुनाना. मैंने अभी तक उन्हें बताया नहीं है."

"मुझे अभी तक वैसा का वैसा याद है कि उस घड़ी कैसे अचानक मुझे मेरी खुशी लौटी-सी जान पड़ी थी. पिताजी जरूर मुझे प्यार करेंगे, यह भरोसा मां के शब्दों से मुझे बांध चुका था. एक अनोखे उत्साह से, मैच में तीन गोल करने से भी बड़े उत्साह से, थाली लेकर मैं पिताजी के पास जा पहुंचा. वे अपने कमरे में बैठकर रेडियो पर शाम के समाचार सुन रहे थे. उनके पास सुबह का अखबार पड़ा था जिस पर उनका भारी-भरकम चश्मा रखा था. वे सुबह का अखबार शाम को तसल्ली से पढ़ा करते थे. मुझे आते देखकर, शायद थाली हाथ में होने के कारण, वे थोड़े चौंके हुए लगे और उन्होंने चश्मा उठाकर अपनी आंखों के आगे नाक पर ऐसे रखा, जैसे कोई ताजा खबर पढ़ने की उतावली में हों. मुझे चश्मे में से देखकर उन्होंने पूछा, "क्या बात है? यह तिलक कैसे लगाया?" मैं बताना भूल गया कि मां ने मेरे ललाट पर बाकायदा रोली-अक्षत से तिलक कर दिया था. हां, तो मैंने पिताजी के पूछने पर थाली एक हाथ में थामी और एक हाथ से उनके पांव छू लिये और लाख साफ बोलना चाहकर भी सिर्फ बुदबुदा ही पाया, "मौनव्रत...तीन दिन!"

"तीन दिन? मौन व्रत?" पिताजी ने फुर्ती से चश्मा उतारकर मुझे घूरा. फिर मैंने अटक-अटककर सारी कथा बांच डाली.

पिताजी ने चश्मा वापस नाक पर रखा और थोड़ा-सा मुसकराकर बोले, "हूं-अं! तो यह बात है तुम मां-बेटों की?"

"मेरी सांस में सांस आने लगी. मैंने थाली पिताजी के आगे बढ़ाकर धीमे से कहा, "प्रसाद."

उन्होंने थाली से पेड़ा उठाया और गुरु-गंभीर ढंग से मुझे देखकर बोल पड़े, "इस बार कोई बात नहीं, पर ध्यान रहे आयंदा मेरी इजाजत के बगैर ऐसा कोई व्रत नहीं करोगे. समझे? ध्यान रहे."

यहां तक बतलाकर दीपक शर्मा ने अपनी हथेली के जर्दे पर चूना उड़ाने की नीयत से हलकी थाप दी. जर्दा रगड़ते-रगड़ते पाउडर जैसा महीन याने बेकार हो चुका, इस बात को तो वे भूले बैठे थे. थापी से सारा का सारा जर्दा हथेली से उड़ निकला.

आक-छीं!

मुझे खंख नाक में पहुंचने के कारण जोरदार छींक आयी. छींक से उबरकर मैंने दीपक शर्मा को पहली बार पूछा "आपके पिताजी काम क्या करते हैं?"

"हेड-मास्टर हैं, सरकारी स्कूल में." खाली हथेली मेरे आगे पसारते दीपक शर्मा ने जवाब दिया. □

विविध विषयों पर निरंतर लेखन
सम्प्रति : नौकरी
सम्पर्क : चांदपोल चौक, जोधपुर (राज.)

रघुनंदन त्रिवेदी

"...और यह तस्वीर विक्की ने मसूरी से भेजी थी, उसने अपने दोस्तों के साथ पिकनिक में खिंचवायी थी. पहले इस पन्ने पर बाबूजी और मां की तस्वीर थी. बाबूजी की पेंशन फाइल में लगाने के लिए उतारी गयी उस तस्वीर में बाबूजी और मां कितने बूढ़े लगते थे."

घर में सभी इसे इतनी बार देख चुके हैं कि मां, बाबूजी, जीजी, भैया, मैं—हममें से कोई भी बता सकता है कि कहां किस पन्ने पर कौन-सी फोटो लगी थी. मैं इस एलबम की बात कर रहा हूं जो इस वक्त आपके हाथ में है. करीब चालीस साल पुराना है यह. दिल्ली से लाये थे बाबूजी. तब वे वहां घूमने गये थे मां के साथ. और हम तीनों में से कोई भी पैदा नहीं हुआ था. आप शायद इसके एकदम ताजा लगने वाले पन्नों को देखते हुए मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे. वाकई कोई भी बाहर का आदमी इसे ज्यादा से ज्यादा दस-बारह साल पुरानी चीज मान सकता है. पर भला सोचिये, आपसे झूठ बोलकर मुझे क्या मिलेगा. अब इस सोफे, सामने दीवार पर लगी घड़ी, उधर टेबल पर पड़े टी.वी. और उस कोने में खड़ी अलमारी को तो मैं तो इतनी पुरानी चीजें नहीं बता रहा हूं, फिर इस एलबम के बारे में झूठ बोलकर मुझे क्या फायदा हो सकता है? आप फिर भी नहीं मान रहे! देखिये, मुंह से आप भले ही कुछ नहीं कह रहे पर आपकी आंखें साफ बता रही हैं कि आपको मेरी बात का यकीन नहीं, लेकिन इसमें मैं क्या कर सकता हूं! ज्यादा से ज्यादा सौगंध उठा सकता हूं. हालांकि प्रायः समझदार आदमी आजकल सौगंध जैसी बातों पर भरोसा नहीं करते. फिर क्या किया जा सकता है! समझ में नहीं आता, आपको कैसे विश्वास दिलाऊं! चलिये, यों करते हैं कि पहले पन्ने से ही शुरू करते हैं. मैं सिलसिलेवार हर तस्वीर के बारे में बताता जाऊंगा और बाद में आप चाहें तो भैया से पूछ सकते हैं. वे भी लगभग वही सब बतायेंगे जो मैं आपसे कहूंगा. देखिये, हिचकिचाने की कोई बात नहीं. वैसे भी आप भैया के आने तक कुछ तो करेंगे ही. इसी से मन बहलाइये. हां, अब ठीक है. यही पहला पन्ना है. यहीं से शुरू करते हैं. यह बड़े भैया की सगाई की तस्वीर है. भैया कितने जंच रहे हैं! और भाभी! हां, वह भी तो सिकुड़कर बैठी है भैया के पास! भला बताइये तो इस फोटो में नजर आनेवाली यह

सीधी-सादी शरमाती हुई लड़की आज कहीं रह गयी है भाभी में? भाभी के हाथ में 'रिंग' पहनाते हुए भैया भी सकुचा रहे हैं शायद, पर यह तो बाद में लगायी गयी तस्वीर है. बिल्कुल इसी जगह, इसी पन्ने पर बाबूजी और मां और बड़े भैया की तस्वीर थी पहले! बाबूजी तब दादाजी की अस्थियां लेकर हरिद्वार गये थे. काले-घने घुंघराले बालों वाले बाबूजी बायीं तरफ बैठे थे और मां दायीं तरफ थीं, बीच में बड़े भैया बैठे थे. बड़े भैया के मन में भले ही उस सफर की कोई स्मृति शेष नहीं, पर मां कितने चाव से बताया करती थी कि फलां जगह एक धर्मशाला में ठहरे थे...कि एक दिन बड़े भैया भीड़ में कहीं गुम गये थे और दिन भर ढूंढ़ने के बाद भी जब नहीं मिले तो कभी नहीं रोने वाले बाबूजी की आंखें भी धर्मशाला लौटते वक्त नम थीं. पर जब भैया को मां के पास धर्मशाला में खेलते देखा तो कितने खुश हुए थे बाबूजी! बाद में मां ने उन्हें बताया था कि कोई बूढ़ा-सा आदमी भैया को वहां पहुंचा गया था. खैर.

अब आइये दूसरे पन्ने पर. यह बड़े भैया की शादी की तस्वीर है. देखिये न, आजकल तो शादियों में खूब तस्वीरें होती हैं पर यह तो कोई बीसेक बरस पुरानी बात है. तब शादी-ब्याह में तस्वीरों का इतना चलन नहीं था. यह तस्वीर बड़े भैया के किसी दोस्त ने (माफ करें, अब मुझे उनका नाम याद नहीं) उतारी थी. इस पन्ने पर भी पहले जो तस्वीर लगी थी उसमें बाबूजी, मां, जीजी और बड़े भैया थे. जीजी, बाबूजी की गोद में थी और बड़े भैया मां की अंगुली पकड़े खड़े थे. तीसरे पन्ने पर चिपकी यह तस्वीर शिमला की है. जाखू हिल. आप गये हैं कभी शिमला! मैं भी नहीं गया, पर कहते हैं जाखू हिल पर खूब बंदर हुआ करते हैं! भैया शादी के बाद हनीमून मनाने शिमला ही गये थे. शिमला की तीन-चार तस्वीरें और भी हैं इस एलबम में. पर यहां इस तस्वीर की जगह पहले जो तस्वीर थी, उसमें मैं भी था. मैं, बाबूजी, मां, जीजी और बड़े भैया. यह तस्वीर बड़े भैया के जन्म दिन पर खींची गयी थी. मैं तो बिल्कुल छोटा था. शायद तीन या चार महीनों का ही. पर भैया तो बड़े हो गये थे. वे हाथ में छोटी-सी बंदूक लिये खड़े थे, ठीक बाबूजी के पास. जीजी के हाथ में भी कोई खिलौना था. आगे बढ़िये. यह तस्वीर भी शिमला की ही है. माल रोड पर स्टेच्यू के पास खड़े भैया इस तस्वीर में कितने बढ़िया लगते हैं! और ये सड़क पर आते-जाते लोग? कितने उम्दा कपड़े पहने घूम रहे हैं लोग! काश, हम भी उनमें से कोई एक होते! इन हंसते-घूमते बेफिक्र चेहरों को देखकर क्या आप भी ऐसा नहीं सोचते! इस तस्वीर की जगह पहले जो तस्वीर थी वह तो बड़ी मजेदार थी. भैया खूब चिढ़ते थे उसे देखकर. बाबूजी के साथ खड़े भैया कितने मोटे लगते थे! एकदम फूले हुए गुब्बारे जैसे गालोंवाले बड़े भैया को देखकर हर कोई हंस देता था. उस तस्वीर को बड़े भैया ने ही एक दिन फाड़ दिया था. पन्ना उलटिये. हां, यह तस्वीर दिल्ली की है. कुतुबमीनार के आगे खड़े भैया और भाभी. वे लोग तब शिमला से लौटे थे. यहां इस पन्ने पर पहले मेरी तस्वीर थी. मेरे पांचवें जन्म दिन की तस्वीर. मुझे तो याद नहीं पर बाबूजी बताते हैं कि उस दिन बाबूजी मुझे 'जू' दिखाने ले गये थे. लगता है, आपकी चाय ठंडी हो गयी. कोई बात नहीं. अभी दूसरी आ जायेगी. इसे यों ही रहने दीजिये. हां, यह तस्वीर देखिये. भैया, भाभी के बीच खड़ी इस नन्हीं-मुन्नी गुड़िया को पहचानते हैं आप! अरे, यह मोना है. वही जो अभी थोड़ी देर पहले आपके लिए चाय की प्याली रख गयी थी. यहां जो पहले तस्वीर थी, अगर वह सामने होती तो उसे देखकर आप हैरान रह जाते. काले, घने-घुंघराले बालों वाले बाबूजी की जगह थके-थके लगने वाले बाबूजी और बीमार मां की तस्वीर थी यहां. उन दिनों मां अक्सर बीमार रहने लगी थी. प्राय : घर में मां की खांसी गूंजती रहती थी और घर की अलमारियां रंग-बिरंगे लेबल लगी कांच की शीशियों से भरती जा रही थीं. बाबूजी उन दिनों बहुत उदास रहते थे. कभी नहीं चिढ़नेवाले बाबूजी उन दिनों कभी-कभी छोटी-सी बात पर मुझे मार बैठते. ऐसे में मां मुझे खींचकर अपने पीछे छुपा लेती. उन्हीं दिनों मैं बोर्ड की परीक्षा में शामिल हुआ था. पर इन सब बातों से आपको क्या? मैं तो यों ही आदतन बताने बैठ जाता हूं. आप मेरी बातों पर गौर किये बिना पन्ना उलट लें. देखिये यह तस्वीर विक्की और मोना की है. विक्की मोना से दो साल छोटा है. मोना कितने प्यार से उसके गले में हाथ डाले बैठी है. यहां, इस पन्ने पर पहले दो तस्वीरें लगी थीं, एक मां, बाबूजी और जीजी की, और दूसरी यहां नीचे इस कोने में जीजाजी की. जीजी पहली बार ससुराल होकर लौटी थी तभी वह तस्वीर उतारी गयी थी. बाबूजी उन दिनों जीजी की शादी में लिये हुए कर्जों को चुकाने की चिंता में घुले रहते थे. मां की बीमारी वैसे ही बनी हुई थी. अगर वह तस्वीर अभी होती तो आप देखते मां की आंखें कितनी धंसी हुई लगने लगी थीं. खैर, आगे चलिये. यह तस्वीर भैया के ऑफिसर मित्रों की है. भैया ने अपने प्रमोशन पर पार्टी दी थी, तभी यह तस्वीर उतारी गयी थी. इस फोटो में भैया कितने खुश नजर आ रहे हैं. पहले भी यहां जो तस्वीर लगी थी वह बड़े भैया की ही थी. वे काला चोगा पहले बाबूजी के साथ खड़े थे. आपने ठीक सोचा. भैया ने उस साल बी.ए. कर ली थी. जीजी अपने ससुराल में थी और बोर्ड की परीक्षा में मेरा वह दूसरा साल था. आगे बढ़िये. वाह! कितनी बढ़िया तस्वीर है यह. विक्की की चौथी बर्थ डे पार्टी की तस्वीर! छोटा-सा विक्की सिर पर टोपा लगाये केक पर झुका हुआ कितना समझदार लगता है. यह जो सफेद फ्रॉक पहने मुंह पीछे घुमाए लड़की खड़ी है, यह मोना है. पीछे खड़े भैया मोना को सामने देखने का इशारा कर ही रहे थे कि कैमरे का बटन दब गया. इस पन्ने पर पहले मेरी, बाबूजी की और मां की तस्वीर थी. मैंने भी भैया की तरह काला चोगा पहन लिया था. और यह देखिये. मसूरी की तस्वीर. भैया-भाभी विक्की को स्कूल में एडमिशन दिलाने वहां ले गये थे. इसी जगह पहले भैया, मां और बाबूजी की तस्वीर थी. उस दिन भैया अपना अप्वॉयन्टमेंट लेटर लेकर घर लौटे थे. मां और बाबूजी और मैं, हम सभी कितने खुश हुए थे. और यह तस्वीर विक्की ने मसूरी से भेजी थी. अपने दोस्तों के बीच लाल कोट पहने कितना बढ़िया लगता है विक्की. विक्की ने अपने दोस्तों के साथ पिकनिक में यह तस्वीर खिंचवायी थी. इस पन्ने पर पहले बाबूजी और मां की तस्वीर थी. बाबूजी की पेंशन फाईल में लगाने के लिए उतारी गयी उस तस्वीर में बाबूजी और मां कितने बूढ़े लगते थे. बाबूजी के रिटायर होते-होते मेरी भी नौकरी लग गयी थी और नौकरी लगते ही अगले महीने शादी भी हो गयी थी. उन्हीं दिनों एक छोटी-सी बात को लेकर भैया और बाबूजी के बीच मतभेद हो गये थे और भैया को अलग होना पड़ा था. दरअसल बाबूजी चाहते थे भैया विक्की की पढ़ाई पर खर्चा करने की तरह मां के इलाज की तरफ भी ध्यान दें. भैया लाचार थे. उनकी तनखा का आधा हिस्सा तो विक्की की पढ़ाई पर ही खर्च हो जाता था. ऐसे में यों ही उनका हाथ तंग चल रहा था. ऊपर से मां की जानलेवा बीमारी का बोझ बर्दाश्त करना उनके बस की बात नहीं थी. खैर छोड़िये. यह तस्वीर देखिये. यह मैं हूं और यह शोभा, मेरी पत्नी. और यह कोने लगी छोटे-से बच्चे की तस्वीर देखिये. यह सोनू है. हमारा बच्चा. बहुत शरारती है यह. तीन साल का है, पर बातें ऐसे करेगा जैसे सब जानता हो. बस अब कुछेक पन्ने रह गये हैं, वे भी देख लीजिये. यह फोटो भैया, भाभी, मोना और विक्की का है. पिछली गर्मियों में ये लोग कश्मीर गये थे, वहीं का है यह फोटो. कश्मीर के तो कितने ही चित्र हैं इस एलबम में. कहीं किसी तस्वीर में भैया बर्फ का गोला लिये खड़े हैं तो कहीं विक्की और मोना बर्फ में फिसल रहे हैं. कहीं भाभी झील के किनारे खड़ी हैं तो कहीं भैया शिकारे में बैठे हैं. अरे, आठ बज गये! माफ कीजिये मुझे. मुझे एक काम याद आ गया. क्या है कि मैंने किसी को आठ बजे मिलने का समय दिया हुआ है और आप तो जानते ही हैं किसी को समय देकर भी नहीं मिलना कितना बुरी बात है. वैसे भैया अब आते ही होंगे. तब तक आप इतमीनान से एलबम देखिये. क्या? नहीं, बाबूजी और मां की तस्वीरें इस एलबम में नहीं मिलेगी. उनकी तो आखिरी तस्वीर वही थी. जिसके बारे में मैं अभी अभी बता चुका हूं. वही पेंशन फाईल वाली फोटो जिसमें मां और बाबूजी एकदम बूढ़े लगते थे. दरअसल भैया के अलग होने के थोड़े दिनों बाद ही वे मां को लेकर गांव चले गये थे. अब यहां भैया रह रहे हैं और उधर मकान के उस हिस्से में मैं. □

शौर्यगाथा खंड

राजस्थान की शौर्य-गाथाएं

लोहे की चूड़ियां

जहां आजकल टोंक रियासत है वहां पहले राव सुरनाथ की छोटी-सी राजपूती रियासत थी. सोलहवीं शताब्दी में यवनों का जोर इस कदर बढ़ा कि राव सुरनाथ को वह प्रदेश छोड़ना पड़ा और वह अरावली की तलहटी में एक छोटा-सा प्रदेश बनाकर रहने लगे.

राव सुरनाथ की बेटी तारा बाई ही उनकी सब कुछ थी. और उन्होंने उसे पाला भी बेटे की तरह था—घुड़सवारी, धनुर्विद्या, तलवार चलाना, भाला फेंकना. वह देखते ही देखते रण-प्रिया बन गयी. और एक दिन उसने अपने पिता से कहा, "आप राजपूतों की सेना खड़ी करके आक्रमण की तैयारी करें. सेनापति का भार मैं संभालूंगी."

राव सुरनाथ ने भी उसकी जिद पूरी की. एक सेना का संचालन करती हुई ताराबाई अफगानों पर टूट पड़ी. बड़ी वीरता से वह लड़ी पर अंत में पराजय उसी की हुई. बचे हुए अपने वीरों को लेकर ताराबाई निकल आयी. युद्ध में वह हारी पर मन नहीं हारा. और फिर से आक्रमण की योजना बनाने में जुट गयी.

उसके साहस और रूप की कहानियां पूरे राजस्थान पर छा गयीं. और फिर राजकुमारों में उसके हाथ के लिये होड़ शुरू हुई. चित्तौड़ के राणा रायमल्ल के दो बेटे थे—जयमल्ल और पृथ्वीराज. जयमल्ल का संदेशा आया कि वह ताराबाई से विवाह करना चाहता है. ताराबाई ने जवाब दिया, "जो भी अफगानों को मेरे क्षेत्र से निकाल फेंकेगा मैं उसी की बनूंगी." संदेशा पाकर ही जयमल्ल एक सेना लेकर चल पड़ा और बिदूर पर पड़ाव डालकर पड़ा रहा. महीनों तक पड़े रहने पर भी उसने आक्रमण नहीं किया. देखा जाये तो वह कपट-जाल बुन रहा था और धोखा देकर विवाह करना चाहता था. जब उस दिन उसने चोरी से ताराबाई के महल में जाने का प्रयास किया तब राव सुरनाथ ने उसे मरवा डाला.

जयमल्ल के छोटे भाई पृथ्वीराज ने जब यह सुना तो कहा, "इसमें राव सुरनाथ का कोई दोष नहीं है. बड़े भैया एक राजपूतनी को धोखा देना चाहते थे. उन्हें उचित दंड मिला. मैं अफगानों को निकालने का बीड़ा भरे दरबार उठाऊंगा."

और दूसरे दिन अकेला ही पृथ्वीराज राव सुरनाथ के दरबार में आया. उसका साहस देखकर तुरंत ही सोने के थाल में एक बीड़ा छोड़ दिया गया. पृथ्वीराज ने आकर भरे दरबार में बीड़ा उठाया और कहा, "मैं अफगानों को राव जी के प्रदेश से निकालने का बीड़ा उठाता हूं."

जब ताराबाई ने यह सुना तो वह पृथ्वीराज पर मुग्ध हो गयी. उसने अपनी सहेली के हाथों संदेशा भिजवाया, "राणा जी से कहना कि मैं भी उनकी बायीं ओर अपनी सेना लेकर लड़ूंगी. उनसे कहना कि ताराबाई ने लोहे की चूड़ियां पहन ली हैं. अगर विजयी हुई तो राजकुमार अपने हाथों से लोहे की चूड़ियां उतार कर मुझे सुहाग की चूड़ियां पहनायेंगे."

और आक्रमण के ठीक समय ताराबाई लोहे की चूड़ियां पहने पृथ्वीराज के घोड़े के बायीं और खड़ी हो गयी. दोनों ने एक दूसरे को निगाहों से पिया और फिर 'हर हर महादेव' के नारे में खो गये.

ताराबाई की युद्ध क्षमता देखकर पृथ्वीराज स्तंभित रह गये. जैसे भूखी शेरनी हिरनों के झुंड पर टूटती है वैसे ही ताराबाई अफगानों पर टूटी थी. पृथ्वीराज ने भी प्राणों का मोह छोड़ दिया. भयंकर लड़ाई हुई और अंत में अफगानों के पांव उखड़ गये. राव सुरनाथ के आंगन में पृथ्वीराज ने ताराबाई की कलाइयों से लोहे की चूड़ियां उतारीं और फिर उनकी जगह स्वर्ण-जड़ित चूड़ियां पहनायी थीं.

इस मुहूर्त के बाद ही फिर विधिवत उनका विवाह हुआ था. सुहागरात को ताराबाई ने कहा था, "मेरी उन लोहे की चूड़ियों को कहीं फेंक मत देना. ना जाने कब राजपूतनी को उनकी जरूरत आ पड़े!" □

बाला दुबे

झूठ का पर्दाफाश करना हो या इंसान को उसके हक की लड़ाई में लड़ने का संबल देना....या फिर सच्चे प्रेम को पाने के लिए पराक्रम और शौर्य का इतिहास रचना... भारत के विश्वप्रसिद्ध शूरवीरों की शौर्यगाथाएं, इतिहास प्रसंग, रोमांचक दास्तानें और किस्से-कहानियां.

चित्तौड़ की रखैल

मेवाड़ के राणा उदयसिंह की वह रखैल ही थी—वीरा. वैसे जन्मी वह राजस्थान की माटी से ही थी. सुंदर, सलोनी, सांवली—कोयल जैसी आवाज पर उसके हाड़-मांस के पिंजड़े में बिजलियां कूट कूट कर भर दी थीं प्रकृति ने. गुस्से में वह और भी मन को मोहती. महाराणा उदय सिंह उसके तन और मन के अनूठे पारखी थे.

जब बादशाह अकबर ने चित्तौड़ को निगलना चाहा तब न जाने क्यों महाराणा उदय सिंह मन हार बैठे. तलवार मिलाने से कतराने लगे और फिर जैसा कि मनोबल हारने वाले का परिणाम होता है, वही हुआ. राजपूत की शान से लड़े पर उनका सिरमौर तो मन ही मन हार चुका था. मुगलों ने फिर महाराणा उदय सिंह को ऐसे पकड़ा जैसे खिसयानी बिल्ली चालाक चूहे को पकड़ती है. अकबर ने उदय सिंह को अपने जेलखाने में बंद कर दिया. जब चित्तौड़ निवासियों ने यह सुना तो वहां हाहाकार मच गया. महाराणा उदय सिंह का वीर पुत्र प्रताप सिंह यह सुनकर नतमस्तक हो गया. चित्तौड़ के मुंह पर करारा तमाचा जड़ा था मुगलों ने. जगह-जगह लोगों के सर शर्म से झुक गये. किया भी क्या जा सकता था.

और तभी वीरा ने भी सुना—उसके स्वामी महाराणा उदय सिंह को पकड़कर अकबर ने अपने जेलखाने में डाल रखा है. क्रोध से वीरा का मुंह लाल हो गया और वह चित्तौड़ के सरदारों के आगे चिल्लायी, "है कोई ऐसा चित्तौड़ का लाल जो मेरे महाराज को छुड़ाकर ला सके?"

सरदारों के सर झुक गये. यह देखकर वीरा अंदर गयी और उसने अपने सब गहने उतार फेंके. युद्ध का बाना पहनकर वह बाहर आयी और बोली, "मैं राणा को छुड़ाने जा रही हूं. जिन्होंने अपनी माता का दूध पिया हो वे मेरे हो लें."

राजपूत चौंके. बहुत दिनों के बाद उन्हें एक राजपूतनी के दर्शन हुए थे शायद. फिर उन्होंने भी प्राणों का मोह त्याग दिया और वीरा के पीछे आ खड़े हुए.

"मुझे खुशी हुई कि आज भी चित्तौड़ में राजपूतनियों के जाये रहते हैं", वीरा बोली.

सबके घोड़ों के आगे वीरांगना वीरा का घोड़ा दौड़ रहा था. 'हर हर महादेव' के घोर निनाद के साथ ही देखते ही देखते वीरा मुगलों की छावनी में घुस गयी.-भयंकर युद्ध आरंभ हो गया जिसमें लाशों के अंबार लग गये. पर वीरा अपना ध्येय नहीं भूली थी. पच्चीस सजीले जवान लेकर वह छावनी में स्थित जेलखाने पर टूट पड़ी और महाराणा उदयसिंह के बंधन काटकर उन्हें सही सलामत वापस चित्तौड़ ले आयी. अकबर ने जब यह सुना तो उसे काठ मार गया, "काश, मुगलों के खानदान में भी ऐसी कोई शेरनी पैदा हुई होती." अकबर भर्राये स्वर से बोला.

दूसरे ही दिन उसने अपने सेनापति को आदेश दिया था, "चित्तौड़ में शेरनी की मांद है. हमारा घेरा यहां कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता." और उसी दिन से अकबर ने घेरा उठा दिया.

महाराणा उदय सिंह ने भी दरबार कहा, "मेरा छुटकारा वीरा के कारण ही हुआ. वह दुर्गा बनकर यवन राक्षसों पर टूटी थी, यह मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा."

और फिर महाराणा उदय सिंह के सरदारों ने ही बाद में वीरा के विरुद्ध षड्यंत्र रचा और उसे मरवा डाला. वीरा की आवाज सदा को शांत हो गयी पर इतिहास की जबान पर कौन लगाम लगा सका है. अंग्रेज इतिहासकार कर्नल टोड ने भी स्वीकारा है—'केवल वीरा की वीरता के कारण चित्तौड़ की स्वाधीनता इस बार बच पायी.' □

बाला दुबे

मोरी टेर सुनो राणा जी

ना जाने कैसे वह मुसलमान बिसातिन रूपनगढ़ के जनाना महल में आ गयी थी. उसके पास ढेर सारे चित्र थे—महाराणा प्रताप, अमर सिंह, शाहजहां, औरंगजेब और राणा राजसिंह सबके. रूपनगढ़ की राजकुमारी ने अपनी सहेलियों के संग बैठकर सभी चित्र देखे. और जब उसके हाथ में राणा राजसिंह का चित्र आया तो ना जाने क्यों वह सिहर उठी. बिसातिन हंसकर बोली, "यह तो चित्तौड़ के राणा का चित्र है राजकुमारी. मैं आपको इनसे भी कहीं प्रतापी राजा का चित्र दिखलाती हूं. देखो, यह है बादशाह औरंगजेब का चित्र." रूपनगढ़ की राजकुमारी ने तिरस्कार भरी निगाह से औरंगजेब का चित्र देखा और जानबूझकर उसे गिरा दिया जिससे कि वह टूट गया. बिसातिन कांप उठी, "यह अच्छा नहीं हुआ राजकुमारी. अगर बादशाह को पता चल गया तो वह रूपनगढ़ की ईंट से ईंट बजा देंगे."

राजकुमारी को यह सुनकर और भी क्रोध आ गया. उसने टूटे हुए औरंगजेब के चित्र में लात मारी और अपनी सहेलियों से भी कहा, "इसमें बारी बारी से तुम भी लात मारो."

...और यह सब कुछ उस बिसातिन ने

औरंगजेब के कानों में डाल ही दिया. तभी तो रूपनगढ़ में उस दिन मातम सा छाया था मुगल बादशाह औरंगजेब का संदेशा आया था कि राजकुमारी को फौरन ही डोली में बैठाकर दिल्ली भेज दो. राजकुमारी ने जब यह सुना तो वह रो-रो कर आधी रह गयी. उधर विक्रम सोलंकी ने उल्टा यह कहा, "यह तो बड़े सौभाग्य की बात है कि बेटी हिंदुस्तान की साम्राज्ञी बनने जा रही है."

रूपनगढ़ की राजकुमारी बोली, "ठीक है, आप मुझे यवन सेना के साथ भेज दें."

इसी बीच उसने एक पत्र भेजा था राणा राजसिंह के पास.

"मेरी टेर सुनो राणा जी, मुझे जबरदस्ती भेजा जा रहा है. मैं आपको अपना स्वामी मान चुकी हूं. अगर आपकी भुजाओं में शक्ति हो तो आप मुझे ले जाइये वर्ना मेरे पास हलाहल विष की शीशी है. बस यही देखना है कि राजस्थान की धरती पर आज भी राजपूत हैं या नहीं."

पत्र पाकर राजसिंह के होंठ फड़क उठे और वह संदेशवाहक से बोले, "जाओ, राजकुमारी से कहना कि राणा प्रताप के वंश में आज भी गर्म खून बहता है."

राजकुमारी की डोली यवन सेना के मध्य भाग में चल रही थी. और तभी चित्तौड़ की आंधी ने मुगलों को ढक लिया. भीषण मारकाट हुई और अंत में महाराणा राजसिंह ने डोली पर कब्जा कर ही लिया.

जब औरंगजेब ने यह सुना तब उसने एक विशाल सेना चढ़ाई करने के लिये भेजी थी. राजपूत कफनियां बांधकर लड़े और अंत में औरंगजेब को मुंह की खानी ही पड़ी. □

रखियो लाज शरण गहे की

चित्तौड़ गढ़ का राजा रत्ना केवल पांच वर्ष ही गद्दी पर बैठ पाया. फिर उसके बाद बैठा उसका छोटा भाई विक्रमजीत—क्रोधी, अदूरदर्शी. और जब चित्तौड़ की व्यवस्था बिगड़ने लगी तब गुजरात के सुल्तान बहादुर खां को यह खबर लगी. बहादुर खां अपने पूर्वजों की हार भूला नहीं था. फौरन ही मांडू के सुल्तान से मदद लेकर यह चित्तौड़ की ओर लपका.

विक्रमजीत ने भी चूड़ियां नहीं पहन रखी थीं. उसने भी सेना संवारनी शुरू कर दी. बूंदी का राजा अपने पांच सौ सवारों के साथ आया, ऊदा का बेटा सूरजमल अपने राजपूतों को लेकर आया और फिर देवरा और मालावाड़ के वीर भी आबू के राव के साथ आ धमके.

बहादुर खां ने चित्तौड़ पर घेरा डाल दिया. गढ़ के अंदर रानी कर्णावती और उसकी सास जवाहर बाई मौजूद थी. रानी कर्णावती को फिर वह बात सूझी थी. उसने रातों रात पचास हाड़ा वीर राज्य पुरोहित के साथ मुगल बादशाह हुमायूं के पास भेजे थे. जवाहर बाई ने कहा, "क्या तुम समझती हो कि तुम्हारी राखी के जवाब में मुसलमान बादशाह तुम्हारा भाई बनकर मदद करने आयेगा."

कर्णावती ने कहा, "हां मां, मुझ राखी-बंध बहन का नेग चुकाने वह जरूर आयेगा."

और जब हुमायूं को एक हिंदू बहन का वह स्नेह का डोरा मिला तो उसका दिल भर आया, "मैं अपनी मुंह-बोली राखी-बंध बहन की मदद को जाऊंगा." हुमायूं बोला. और फिर मुगल सेना राजपूतों की मदद को चल पड़ी.

तब तक बहादुर खां ने चित्तौड़ पर बहुत दबाव डालना शुरू कर दिया था. और जब बहादुर खां के फिरंगी इंजीनियर ने सुरंग लगाकर 'बीका चट्टान' को उड़ा दिया तब वह विशाल दीवार पैंतालीस फीट तक ढह गयी. अब इस दरार की रक्षा में राजपूत जुट गये.

बार-बार फसील पर जाकर कर्णावती देखती पर उसका राखी बंध भाई बादशाह हुमायूं कहीं भी नजर नहीं आता.

फिर कर्णावती ने चित्तौड़ के वंश-बीज राजकुमार उदय सिंह को बूंदी के राजकुमार को सौंप दिया जो सुरंग द्वारा किले से बाहर निकल गया.

अंतिम बेला आ गई थी शायद. रानी कर्णावती ने सोलह श्रृंगार करके अन्य राजपूतानियों को इकट्ठा कर लिया. तब उसकी प्रतापी सास जवाहर बाई जिरह बख्तर पहनकर आयी और रानी कर्णावती का मस्तक चूम कर बोली, "तुम जौहर व्रत की तैयारी करो, बहू. मैं शत्रु से जूझने जा रही हूं."

यह कहकर जवाहर बाई ने बाकी के योद्धा इकट्ठे किये और फाटक खोलकर चिल्लायी 'हर हर महादेव'. बहादुर खां जवाहर बाई का दुर्गा-स्वरूप देखकर कांप गया. जवाहर बाई क्रुद्ध ततैया की भांति लड़ी और अंत में अपने वीर राजपूतों के साथ वीर गीत को प्राप्त हुई.

उधर कर्णावती ने जौहर किया और मान मर्यादा निभायी. चित्तौड़ के जलने के बाद ही हुमायूं की सेना आ पहुंची. हुमायूं की आंखों में आंसू भर गये. फिर हुमायूं ने बहादुर खां की सेना की धज्जियां उड़ा दी और जिस मांडू के सुल्तान ने बहादुर खां की मदद की थी उसका नगर लूटकर आग लगा दी. बहादुर खां और मांडू के सुल्तान को धूल में मिलाकर फिर हुमायूं चित्तौड़ आया. उसने रानी कर्णावती के पति विक्रमजीत की कमर में अपने हाथ से तलवार बांधी और उसे चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा कर वापस चल दिया. □

राजा और कवि

बीकानेर नरेश राजा रायसिंह की बारात जैसलमेर पहुंची. रायसिंह को देखकर एक चारण ने कहा, ''हे दानवीर, तूने बहुत दान किया है.''

इस पर एक बंद कमरे की खिड़की में से एक तेज आवाज आयी, ''अरे मूर्ख चारण, यह राजा तो एक एक दोहे पर जागीरें लुटा देता है.''

राजा रायसिंह ने उस व्यक्ति के बारे में जानना चाहा तो मालूम हुआ कि वह प्रखर और कटु यथार्थ को व्यक्त करने वाला कवि रंगरेला है जिसे जैसलमेर के महारावल ने जैसलमेर पर सच्ची बात कहने के अपराध में कैद कर रखा है...

राजसिंह ने कहा, ''यह अन्याय है. जहां कवि कैद हो, वहां विवाह कैसे होगा!''

महारावल ने कहा, ''राठौड़ प्रवर! यह कवि नहीं, यह हमारी रियासत की और हमारी निंदा करता है.''

रंगरेला ने भीतर से कहा, ''नहीं महाराज.... मैंने तो सच कहा कि हे महारावल तेरे देश में तो काठ के घोड़े और लोहे के वस्त्र हों तो आदमी जिएं. यहां आदमी पानी के बिना प्यासा ही मर जाता है...यहां सियार, जररव, गोर रहती हैं, मोरों की बोली तो सुनायी ही नहीं पड़ती? ...यही मेरा अपराध है. महाराज, आप विद्वानों के संरक्षक हैं, मेरी रक्षा कीजिए.''

राजा रायसिंह को यह बर्ताव एक कवि पर अन्याय लगा. बस, उन्होंने उसकी मुक्ति चाही.

इस बात को लेकर विवाद बढ़ गया. जब महारावल नहीं माने तो राजा रायसिंह ने कहा, ''यदि आपने कवि रंगरेला को नहीं छोड़ा तो मैं शादी नहीं करूंगा. इसने चारणों की तरह झूठी प्रशंसा नहीं करके सच कहा तो हम नाराज हो गये? मैं बारात वापस ले जाऊंगा वर्ना इसे छोड़िए.''

लाचार महारावल को कवि रंगरेला को छोड़ना पड़ा.

रंगरेला जालोर का रहने वाला था. उसका नाम वीरदास था पर अपने रंगीले स्वभाव व अक्खड़पन के कारण प्रसिद्ध हो गया.

उसने जालोर के अधिपति कमाल खां को भी सही-सही सुना दी थी. तो वह खुश हो गया. कमाल खां ने वीरदास को हर रंग की कविता करने के कारण उसे 'रंगरेला' नाम दिया.

राजा रायसिंह ने रंगरेला को मुक्त कराके उसे अपने राज्य में एक सम्मानजनक स्थान दिया.

रंगरेला का कहना था—सच कहना सुखी रहना. □

यादवेंद्र शर्मा चंद्र

दक्षिण भारत की शौर्यगाथा

पहली आवाज

दक्षिण भारत के एक सुदूर कोने में छोटी सी रियासत – किटूर. उस समय तक यूनियन जैक झंडा धीरे-धीरे भारत की भूमि पर रेंग रहा था. किटूर का राजा तभी अचानक स्वर्ग लोक सिधार गया और उसके सिंहासन पर बैठी उसकी रानी चिन्नमा. वह भलीभांति अपनी प्रजा पर शासन कर रही थी कि दक्षिण क्षेत्र के अंग्रेज कमीश्नर विलियम चैपलिन की गिद्ध दृष्टि उसके किटूर पर आ टिकी. 3 दिसंबर 1824 को उसने किसी अनजान बहाने के सहारे रानी चिन्नमा के प्रशासन से छेड़छाड़ की. रानी चिन्नमा ने उसको उचित उत्तर भी दिया कि वह अपनी रियासत का प्रशासन बगैर किसी अड़चन के चला रही है. पर अंग्रेजों की चाल ही तिरछी थी. जब उनका दबाव बढ़ने लगा तब चिन्नमा ने अपने मंत्रियों को बुलाया और सारी बात समझायी. सभी ने एक मत होकर कहा, ''अन्याय के आगे झुकना कायरता है. अन्याय के विरुद्ध यह पहली आवाज ही थी जो किटूर के वातावरण में गूंज उठी. और फिर देखते ही देखते गलियों में लोहार तलवार भाले बनाने में जुट गये. अपनी छोटी सी सेना में चिन्नमा ने काफी वृद्धि की और वह शस्त्र संभाले अंग्रेज सेना का मुकाबिला करने बैठ गयी. कागजी नोंक-झोंक थोड़ी देर ही चली होगी कि सहसा अंग्रेज सेना के बिगुल सुनायी देने लगे. चिन्नमा की सहायता को पूरा किटूर उमड़ पड़ा. किले की फसील पर तोपें जमा दी गयीं. योद्धा तैयार होकर मैदान में आ डटे.

13 जुलाई 1830 को किटूर के बाहर मैदान में संहार-नृत्य आरंभ हुआ. दोनों तरफ से लोग भारी संख्या में हताहत होने लगे. तोपों की गरज और युद्ध के नारों से वातावरण भर गया.

चिन्नमा स्वयं युद्ध का संचालन कर रही थी. पर कहां छोटी-सी रियासत की एक रानी और कहां युद्ध-पारंगत अंग्रेज योद्धा. भीषण मारकाट और खून खराबा के बाद आखिर चिन्नमा पराजित हो गयी. अंग्रेजों ने उसे बंदी बना लिया और उसे धारवाड़ के किले में कैद कर दिया.

चिन्नमा को 'दसैनी' के नाम से भी जाना जाता है. अपने हक के लिये लड़ने वाली प्रथम दक्षिण भारतीय महिला ने तलवार सूतना नहीं भूला. उसकी सूझ-बूझ और उत्साह को अंग्रेजों ने भी सराहा. □

बाला दुबे

बंगाल की शौर्यगाथा

देवी चौधुरानी

सिराजुद्दौला को तहस नहस करने के बाद अंग्रेजों का डंका बजने लगा था. जिन्होंने स्वतंत्रता-युद्ध में साथ दिया उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया या कारागार में ठूंस दिया गया. अंग्रेजों के खैर ख्वाह पोंगपंथी बंगाल में फलने फूलने लगे. दान, ऐश्वर्य, आमोद प्रमोद — उनकी हरेक रात दीवाली होती, हरेक दिन बसंत. और तभी न जाने कहां से उनके ऊपर एक विपदा टूट पड़ी. रात को डाकू आते और धनिक वर्ग का धन लूट लेते. जिस दिन जोड़ा दीघी के जमींदार ने बड़ी चपड़ की थी उसी वक्त उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया. डाकुओं का आतंक शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की भांति बढ़ता ही जा रहा था.

कलकत्ते में स्थित गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स चौंका. उसने अपनी सेना को सतर्क किया. और तभी चौबीस परगना में एक बहुत नामी अंग्रेजी खैर ख्वाह जमींदार के डाका पड़ा. जमींदार ने जो मांगा गया वही दिया, पर उसके कटु वचन ने आखिर डाकुओं के सरदार का मुंह खुलवा ही डाला, "हम टुच्चे चोर डाकू नहीं हैं, समझे, फिरंगियों के दास! हमारा उद्देश्य है फिरंगियों और म्लेच्छों को स्वर्ण बंगभूमि से निकाल बाहर करना. तुम्हारा जो धन हमने लूटा है वह सत्कार्य लगेगा — स्वतंत्रता-यज्ञ के लिये." और उसी जमींदार ने भांपा था कि डाकुओं के सरदार का स्वर मर्दाना नहीं जनाना था. उसी घटना के बाद उसने कलकत्ता खबर पहुंचायी थी गवर्नर जनरल के पास—दस्यु दल की नायिका एक स्त्री है और दस्यु दल का ध्येय हम लोगों को बाहर खदेड़ने का है. वारेन हेस्टिंग्स के कान खड़े हो गये. उसके खुफिया अफसरों ने भी जाल फैलाया तो पता चला कि स्वतंत्रता-स्वप्न देखने वाली बंगाल की इस भवानी का नाम गौरी बाई है जिसे दल देवी चौधुरानी के नाम से पुकारता है. उन्होंने देवी चौधुरानी को रानी का खिताब भी दे दिया था. उसके दल का संचालन एवं पूरी व्यवस्था वही करती थी. उसकी सूझ-बूझ और नेतृत्व में दल फल-फूल रहा था. गरीबों का खून चूसकर धन उपजाने वाले जमींदारों को वह लूटती और उस धन से वह एक सेना बना रही थी — स्वतंत्रता सेना. पहले तो अंग्रेजों ने सोचा कि भारतीय स्त्री तो पर्दे में कैद एक दासी मात्र है, वह भला दल का संचालन क्या करेगी. अवश्य ही कोई मर्द जनाने भेष में यह षड्यंत्र रच रहा है और फिर अंग्रेजों ने एक सेना देवी चौधुरानी से निबटने को बनायी.

पहली मुठभेड़ में सैकड़ों लोग मारे गये. देवी चौधुरानी के नेतृत्व में उसके स्वतंत्रता संग्रामी खूब लड़े पर उन्हें हटना पड़ा और वे अपने दुर्ग में आ पहुंचे. दुर्ग में आकर उन्होंने अपनी तोपों के मुंह अंग्रेजों की सेना की ओर मोड़ दिये. भयंकर मार-काट मच गयी. तिल-तिल भर जमीन के लिये रुंड-मुंड बिछ गये पर आखिरकार अंग्रेजों की अधिकाधिक हानि होने पर भी विजय हुई.

देवी चौधुरानी और उसके बचे खुचे लड़ाकू सुरंग से दुर्ग से बाहर निकल गये. उनका रण-कौशल देखकर अंग्रेज अफसर चकित हो गये थे कि इतनी सुंदर व्यवस्था एवं रण-क्षमता आखिर हिंदुस्तानियों में आयी कहां से.

देवी चौधुरानी को बहुत ढूंढ़ा गया पर वह ऐसी फरार हुई कि उसका पता ही नहीं चला. सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम चंद्र चटर्जी ने लिखा है कि कदाचित देवी चौधुरानी देवी ही थी जो योगबल से अंतर्धान हो गयी.

गुजरात की शौर्यगाथा

काठियावाड़ की दुर्गा

सन् 1837, बढ़वाण (काठ्यावाड़) राज्य की रस्म ही निराली थी. वहां की राज्य-डोर स्त्रियों के हाथ में रहती थी. पति और पुत्र की उपस्थिति में भी राज्य का प्रबंध स्त्रियां ही करती थीं.

सत्तर वर्ष की महारानी राज बाई का प्रशासन इतना सुगठित था कि अंग्रेज भी प्रसन्न थे. और तभी राज बाई ने तीर्थ यात्रा करने का निर्णय कर डाला. अपने अल्प-वयस्क पौत्र को गद्दी का अधिकारी घोषित करके और उसी की माता—यानी अपनी पुत्र वधू को राज्य संचालिका बनाकर वह तीर्थ करने निकल पड़ी. उसकी पुत्रवधू गोवल बाई सुयोग्य स्त्री थी और प्रशासन भी ठीक करने लगी. पर थोड़े ही दिन बाद उसे प्रभुता का स्वाद लग गया और वह स्वयं रानी बनने का षड्यंत्र बनाने लगी. धीरे धीरे उसने सैनिक अपनी ओर फोड़ लिये और गद्दी पर जम गयी.

थोड़े वर्ष बाद जब वृद्धा रानी राज बाई लौटी तो उसने नगर-द्वार बंद पाया. फिर उसे पुत्रवधू गोवलबाई का संदेश भी सुनाया गया—'आप अब वृद्धा हो गयी हैं. अब आप किसी तीर्थ स्थान में रहकर अंतिम दिन गुजारें और भगवान का स्मरण करें. राज्य झंझटों को अब छोड़िये.' राज बाई यह सुनकर दंग रह गयी. वहां से उल्टे पांव लौटकर वह राजकोट पहुंची और अंग्रेज रेजीडेंट सर विलाग्बी से सहायता मांगी. सर विलाग्बी ने दो टूक जवाब दे दिया, "यह आपके परिवार का निजी मामला है लिहाजा मैं इसमें दखल नहीं दूंगा."

निराश होकर राज बाई बढ़वाण वापस आ गयी और अपनी सेना संगठित करने लगी. उसने धीरे धीरे एक हजार सैनिक इकट्ठे कर लिये और उन्हें युद्ध-कला भी सिखलाने लगी. जब उसे विश्वास हो गया कि उसके सैनिक अब लड़ने योग्य हो गये तब उसने पिचत्तर वर्ष की अवस्था में कवच पहना, सिर पर लोहे का टोप पहना और हाथ में तलवार लेकर घोड़े पर सवार हो गयी. अपनी सेना का संचालन करती हुई यह काठ्यावाड़ की दुर्गा नगर द्वार की ओर बढ़ी.

नगर के परकोटे पर पहुंचते ही उसकी पुत्रवधू गोवल बाई के सैनिकों ने गोलाबारी आरंभ कर दी. राज बाई के सैनिक हताहत होने लगे. तभी एक गोली सनसनाती हुई आयी और राज बाई के सेनापति की छाती में लगी और वह राज बाई के चरणों पर गिरकर ठंडा हो गया. जब राजबाई ने देखा कि उसके सैनिकों का मनोबल गिर रहा है तब सहसा उसके नेत्र लाल हो गये और वह क्रोध में भरकर चिल्लायी, "आगे बढ़ो वीरो और नगर द्वार को तोड़ डालो." वह स्वयं बड़े वेग से अपने घोड़े को एड़ देकर बढ़ी. उसका अद्भुत शौर्य देखकर उसके सैनिकों का मनोबल फिर से जी उठा और वे आंधी की भांति नगर द्वार पर टूट पड़े. कुछ ही समय में नगर द्वार को तोड़ फोड़ कर राजबाई और उसके सैनिक नगर में छा गये.

यह सुनकर गोवल बाई भाग खड़ी हुई. प्रजा ने वृद्धा रानी का दृढ़ संकल्प और साहस देखकर उसकी आरती उतारी और उसका स्वागत किया. एक बार फिर वह दुर्गा-मयी रानी अपने सिंहासन पर बैठी और अंतिम दिनों तक शासन संभाला. □

बाला दुबे

पंजाब की शौर्यगाथा

राखी पत पटियाले की

वारिद्वाव के राजा जयमल सिंह की रानी थी साहिब कौर. पटियाले की बागडोर उसके भाई साहिब सिंह के हाथों थी. पर साहिब सिंह कमजोर और निकम्मा निकला. और जब पटियाले में अराजकता फैलने लगी तब साहिब कौर अपने पति से आज्ञा लेकर आयी और बहकते हुए पटियाले का शासन संभाला.

वह समय ही बड़ा खराब था. इधर मराठों का टिड्डी-दल उत्तर में आता, चौथ वसूल करता और जमीन रौंदता हुआ निकल जाता. उधर अंग्रेजों का गवर्नर जनरल वेलजली आस-पास की रियासतों को निगल रहा था. और फिर राजा जयमल सिंह का भाई फतह सिंह भी तो अपने ही भाई को डसने बैठा था. साहिब कौर के पटियाला जाने पर मौका पाकर उसने जयमल सिंह को कैद कर लिया और वारिद्वाव की रियासत हड़प ली. जब पटियाले में साहिब कौर को यह खबर लगी तो वह फौरन अपने पति को छुड़ाने आयी. उसने आते ही फतह सिंह को करारी हार दी और अपने पति को छुड़ाकर और वारिद्वाव की बागडोर देकर वापस पटियाले आ धमकी.

लौटते ही मराठों की बाढ़ चौथ वसूल करने पटियाले आ पहुंची. साहिब कौर ने मराठों को चौथ देना अस्वीकार कर दिया. फलस्वरूप युद्ध का डंका बज उठा. अंबाला से कुछ ही दूर मरदानपुर के मैदान में सिख सेना का संचालन करती हुई रानी साहिब कौर मराठों को ललकारने आ पहुंची. मंजे हुए मराठे लड़ाकू सिपाहियों से साहिब कौर लड़ी पर पलड़ा मराठों का भारी रहा. रानी साहिब कौर ने हिम्मत नहीं हारी और उसने अद्भुत साहस एवं नेतृत्व दिखाया. उसने रात को आक्रमण करने की ठानी.

आधी रात होने को आयी थी. मराठे खा-पीकर आमोद-प्रमोद में डूबे थे कि रानी साहिब कौर अपनी सिख सेना के साथ उन पर टूट पड़ी. अकस्मात् आक्रमण के कारण मराठों में भगदड़ मच गयी और वह इस कदर डर गये कि जिधर सींग समाया भाग निकले. अपनी विजयी सेना को इकट्ठा करके रानी साहिब कौर फिर से मरदानपुर के मैदान में डट गयी.

उसके उत्साह और साहस को देखकर मराठों ने आखिर उससे संधि कर ली और चले गये.

थोड़े ही दिन बाद नाहन राज्य की प्रजा ने बगावत कर दी. नाहन का राजा बगावत दबाने में असमर्थ रहा और उसने रानी साहिब कौर से मदद मांगी. एक बार फिर रण-प्रवीण रानी साहिब कौर ने अपनी तलवार निकाली और देखते ही देखते नाहन की बगावत को दबा दिया.

तभी अंग्रेजों के सेनापति सर टॉमस ने सिखों की रियासत जींद पर हमला बोल दिया. रानी साहिब कौर दूरदर्शी भी थी. वह समझ गयी कि अंग्रेज सिख रियासतों को हड़पने का जाल बिछा रहे हैं लिहाजा उसने आस-पास की सिख रियासतों को सावधान कर दिया. जब सर टॉमस अपनी विशाल सेना लेकर मेहम की ओर बढ़ा तब रानी साहिब कौर ने नीति कुशलता का परिचय दिया और उनसे सुलह कर ली. अंग्रेजी फौज को वापस करके वह वापस पटियाले आ गयी और शासन कार्य संभालने लगी.

फिर कुछ लोगों ने उसकी कार्य कुशलता से चिढ़कर महाराजा साहिब सिंह के कान भरे कि उनकी बहन साहिब कौर पटियाला राज्य हड़पना चाहती है. साहिब सिंह भी बहकावे में आ गया और उसने अपनी बहन को कैद कर दिया. पर सत्य की सुगंध कब तक नहीं फैलती. आखिरकार साहिब सिंह को असलियत का पता चल ही गया और उसने अपनी बहन को सम्मानपूर्वक रिहा कर दिया. कुछ दिन के बाद वीरांगना रानी साहिब कौर वापस अपने पति के पास आ गयी.

बाला दुबे

महाराष्ट्र की शौयगाथा

झुक गये शिवा जी

महाराष्ट्र के आंचल में छोटा-सा बिल्लारी का दुर्ग. जिस दिन वह क्षत्रिय राजा मरा था उसी दिन से उसकी रानी मलयबाई ने राज्य की रास पकड़ ली थी. और उन्हीं दिनों छत्रपति शिवाजी महाराष्ट्र को संगठित करने का स्वप्न संजोये छोटे-छोटे बिखरे राज्यों और दुर्ग-श्रृंखला को एकता की माला में पिरोने का प्रयास कर रहे थे. जब उनकी सेना बिल्लारी पहुंची तब रानी मलयबाई को संदेश मिला, "शिवाजी की आधीनता स्वीकार करो."

मलयबाई को ज्ञात था कि शिवाजी ने 'हिंदू पद पातशाही' की स्थापना का संकल्प किया है, फिर भी वह अपने मंत्री से बोली, "क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना. शिवाजी ने बिल्लारी पर आक्रमण की योजना बनायी है इसलिये हमारा धर्म है कि तलवार का जवाब तलवार से दें."

प्रजा भी युद्ध करने को तैयार हो गयी. शिवाजी का दूत अपना-सा मुंह लेकर वापस आ गया. शिवाजी को सुनकर आश्चर्य हुआ कि छोटे से किले की एक वृद्धा रानी उससे मुकाबिला करेगी!

मराठों ने बिल्लारी के किले पर दूसरे दिन धावा बोल दिया. मलयबाई ने किले की रक्षा का सब प्रबंध कर लिया था—अनाज, पानी, बारूद, चारा, अस्त्र-शस्त्र. मराठों का पहला हमला नाकारा हो गया. मराठों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने झल्लाकर फिर धावा बोला पर फिर हारकर वापस आना पड़ा. इस प्रकार बिल्लारी की वीरांगना मलयबाई ने सत्ताईस दिन तक मराठों की बाढ़ को नाकारा कर दिया. अट्ठाईसवें दिन शिवाजी ने स्वयं आक्रमण का संचालन किया और अंत में बिल्लारी का किला हाथ आ ही गया. दूसरे दिन शिवाजी ने दरबार लगाया. अपने सिंहासन की दाईं ओर उन्होंने एक और सिंहासन रखवाया. और जब वृद्धा रानी मलयबाई शिवाजी के सामने आयी तो बोली, "महाराज आप इस देश के राजा हैं और मैं इस छोटे से किले की रानी हूं. मैंने अपनी शक्ति के अनुसार राज धर्म का पालन किया और एक क्षत्राणी के धर्म को निभाया. मेरा आपसे कोई निजी झगड़ा नहीं है."

यह सुनकर शिवाजी ने उठकर रानी मलयबाई को नमस्कार किया और अपने बगल में रखे सिंहासन पर बैठाकर कहा, "राजमाता, आप आदर्श क्षत्राणी एवं राज पत्नी हैं. जब तक मेरी भुजाओं में बल है और हाथ में भवानी तलवार है आपके दुर्ग को कोई नहीं छीन सकेगा. आपके पुत्र की यही कामना है कि आप मेरे इस अपराध को भूल जायें और मुझे आशीर्वाद दें कि मैं सदा अपनी मातृभूमि की रक्षा कर सकूं."

मलयबाई की आंखें भर आयीं और वह बोलीं, "वीर पुत्र, तुम्हारी जय हो. भगवान तुम्हारा संकल्प पूरा करे. बिल्लारी से जब कभी किसी सेवा की आवश्यकता हो तो मैं तुम्हें सदैव तैयार मिलूंगी." □

बाला दुबे

शौर्यगाथाएं

उत्तर प्रदेश की शौर्य गाथाएं

बज उठी रणभेरी

"यह तुमने क्या किया रूपमती? इतना बड़ा अनर्थ करने से पहले तुमने एक पल भी नहीं सोचा!" चपावत के राजा कालीचंद ने अपना सिर थाम लिया. रानी रूपमती अपराधी की भांति सिर झुकाए खड़ी थी. उनके एक आदेश पर राजा अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहता. पर आज उसे रानी एक भयावह सपना लग रही थी.

कितना बड़ा विश्वासघात...कुलटा ने कितना जहरीला डंक मारा जिसका जहर सबको लील रहा है. ओह, मैंने क्या कर डाला! एक नहीं बाईस निरपराधों की हत्या से रंग लिए मैंने अपने हाथ. हत्यारा बन गया मैं.

"रानी दूधकेला का श्राप मुझे कभी चैन न लेने देगा. उनके पतियों के अहसान का खूब बदला दिया मैंने!" राजा को लगा पूरा अंतःपुर घूम रहा है. "मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा रानी, तुम मेरे राज्य की दुश्मन हो. राजा पागलों की तरह चिल्लाने लगे. अतीत की स्मृतियां व बफौलों की वीरता उनकी आंखों के समक्ष मूर्त हो उठी.

बाईस भाई थे बफौल. शूरों में शूर, गबरू जवान. जिधर जाते लोगों की आंखें बिछ जातीं. थे तो बाईस, पर आत्मा मानो उनमें एक ही थी. जहां जाते साथ ही जाते, साथ ही खाते. उनकी पत्नी दूध-केला भी परम सुंदरी, विदुषी व सती थी. उनकी वीरता में सागर की गहराई आकाश की ऊंचाई और धरती की गरिमा सभी समा गयी थी. शत्रु उनको देखते ही भय से थर-थर कांपने लगता. अपनी बहादुरी व पराक्रम के बल पर वह गढ़ी चपावत के सिरमौर व राजा कालीचंद के आंखों का तारा बन गए. सुर, देव, किन्नर, राक्षस किसी की हिम्मत नहीं थी जो चपावत की ओर आंख उठाए.

उस दिन सारे नगर में खुशियां मनाई जा रही थीं. बफौल भाई फिर किसी लड़ाई में विजेता बनकर आये थे. उनकी सवारी निकली जाती थी. उनयके शौर्य के किस्से रानी रूपमती ने सुने थे. अतः झरोखे में उन्हें देखने चली आयी.

रानी ने देखा तो देखती ही रह गई. उनके विषय में जो सुना था, उससे अधिक ही पाया. उसे याद आ गयी हिमालय की चोटी जिसे अक्सर अपने महल से निहारा करती थी. दुग्ध धवल चोटी जिस तरह सीना तानकर गर्व से खड़ी होती है, वही पर्वत-सी ऊंचाई, शरीर में वही कठोरता, पर मुख पर एक अलौकिक तेज और भोलापन. दूधकेला के भाग्य पर उसे ईर्ष्या होने लगी.

कालीचंद की पत्नी होने का गर्व चूर हो गया. उसकी वीरता तो बफौल भाईयों पर निर्भर थी, उनके दम पर ही वह निष्कंटक राजा बना था. अचानक कालीचंद का अस्तित्व बौना लगने लगा. "रानी रूपमती तुमने ऐसे वृक्ष का सहारा लिया है जो दूसरे वृक्ष की आड़ में खड़ा है. स्वयं खोखला और पराश्रित." उसके मन में कहीं कुछ दरक गया.

अब तो रूपमती का सुख चैन सभी छिन गया. आंखों में न चाहते हुए भी बफौल भाइयों का पराक्रमी मोहक रूप नाचने लगता. कालीचंद का स्पर्श उसे लिजलिजा लगता. बफौलों की मजबूत बाजुओं की जकड़न पाने के लिए उसका मन मचल उठता. 'रानी तुम अपनी मर्यादा भूल रही हो. जिसके लिए बेचैन हो वे तुम्हारे सेवक हैं' मन से बार-बार आवाज आती पर मन की उच्छृंखल भावनाओं ने विवेक को परास्त कर दिया. मर्यादा की लक्ष्मण रेखा के भीतर रानी अधिक देर न रह पायी. उसने अपनी दासी द्वारा उन्हें बुलवा भेजा.

रानी की आज्ञा शिरोधार्य मान बफौल महल में पहुंचे. अधलेटी अवस्था में लेटी रानी के झीने वस्त्रों को देखकर वे सकपका गए और लज्जा से सिर झुकाकर बुलाने का कारण पूछा.

"मैं कब से तुम्हारी बाट देख रही हूं राज्य के शेरो! इस राज्य की सामग्री तुम पर अपना सर्वस्व लुटाना चाहती है. तुम वीर हो. आओ अपनी वीरता के बल पर मेरा वरण करो. तुम जैसे वीरों की पत्नी बन मैं धन्य हो जाऊंगी." अपनी आंखों की मोहिनी फेंकते हुए रानी मुस्करायी. "ओफ कामुकता का घिनौना रूप! महारानी हम पैक (शूरवीर) हैं. सच्चा वीर पापी कभी नहीं होता. प्रजापालक राजा-रानी, माता-पिता के समान होते हैं. अतः हम तुम पर हाथ नहीं उठाएंगे. आपके स्थान पर कोई और होता तो ऐसी घिनौनी हरकत पर अभी तक शरीर टुकड़ों में बंट गया होता." सभी गुस्से से थर-थर कांपते वहां से चले गये.

रानी को गर्व था अपने सौंदर्य पर. 'औरत प्यार में भिखारी बन सकती है तो क्रोध में सर्वनाश भी कर सकती है.' उसकी भृकुटी तन गई. त्रिया चरित्र की माया तो भगवान ही जाने. फौरन राजा को बुलावा भेज दिया. अशांत राजा तुरंत महल में पहुंचे. रानी नागिन की तरह फुफकार उठी. "धिक्कार है तुम जैसे क्षत्रियों पर जिसकी इज्जत का सौदा सरेआम किया जाता है. तुम्हारी रानी की तरफ वासना की दृष्टि डाली जाती है."

"किसने की ये हिम्मत." राजा का हाथ तलवार की मूठ पर जा टिका.

जिनकी शूरवीरता के भय से आप उनके हाथों की कठपुतली बने हैं. वही बफौल भाई. इज्जत जाने से अच्छा तो मौत का दामन थाम लूं. रानी के आंसू राजा को विचलित कर गये. जाइए महाराज, आप सिंहासन पर विराजिए. पर क्षत्राणी का व्रत सुनते जाइए. जब तक उनके कटे सिर मुझे नहीं मिलेंगे, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी." रानी का निर्णय सुनकर राजा ने सिपाहियों को आदेश देकर उसकी इच्छा पूरी कर दी.

वासना की जिस आग में रूपमती जल रही थी वह बफौल भाइयों के साथ ही समाप्त हो गयी. इसके साथ ही शुरू हो गया रानी का पश्चाताप. राज्य की सारी जिम्मेदारी फिर से कालीचंद पर आ गयी. रानी उसके दर्शनों को भी तरस गयी. अब उसे अपनी भूल का अहसास हुआ पर बात हाथ से निकल गयी थी. तभी पास के राज्य से संदेशा आया—'या तो राजा हार मान ले और रानी रूपमती को उन्हें सौंप दे या युद्ध करे.'

कालीचंद सोच में डूबा था. ऐसा कोई योद्धा नहीं था जो दुश्मन से टक्कर ले. हां था तो एक वीर जिसके किस्से सारी वीरगढ़ी में फैल गये थे, वीर बफौलों का पुत्र अजित बफौल जिसे मृत्यु से पहले वे रानी के गर्भ में दे गये थे. कालीचंद से अपमान का बदला लेने की बात नन्हा-सा बालक सोच रहा था. बाईस भाइयों का बल था उसमें. पराक्रम में वह अपने पिताओं से कम नहीं था. असहाय रानी ने राजा से उसे बुलाने की अनुमति मांगी.

"नहीं हम आस्तीन के सांपों के बच्चे को दूध कभी नहीं पिलाएंगे." कालीचंद का स्वाभिमान जाग उठा था. रानी सोच में पड़ गयी. किस मुंह से कहेगी आस्तीन का सांप वे

नही मैं ही निकली, पर राज्य के सम्मान की बात थी. रानी ने निर्णय लिया और राजा को बुलाकर सारा अपराध स्वीकार कर लिया.

"महाराजा मैंने अपना दंड स्वयं निश्चित कर लिया है." रानी की कंपकंपाती आवाज ने राजा के स्मृतियों के घेरे को तोड़ दिया. उसने देखा रानी का मुख नीला होता जा रहा है. वह चौंक पड़ा, यह तुमने क्या किया.

"मेरे कलंक को मौत ही मिटा सकती है. महाराज वचन दीजिए कि अजित बफौल को फिर से इस राज्य की बागडोर सौंप देंगे. राज्य व प्रजा की भलाई इसी में है." इसके साथ ही रानी का शरीर ठंडा पड़ गया.

राजा ने रानी की अंतिम इच्छा पूरी की. रानी दुधकेला को सारी घटना बता अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी. अजित बफौल को उसके पिताओं की आन और वंश की शान का वास्ता दिया. राज्य के लिए मर-मिटने वाला अजित सारी शिकायतें भूल राजा के साथ चल पड़ा. एक बार फिर गढ़ी चंपावत में तुमुल नाद हुआ. और फिर से बज उठी विजय की रणभेरी. □

डा. पुष्पलता भट्ट

मिट्टी के पहाड़ तले अवध का ऊंट

अवध का नवाब शुजाउद्दौला, सफलता की शराब पीकर वह मदमत्त हो चला था. फिर उसके दोनों हाथ भी कितने मजबूत थे—उमराव गिरि और हिम्मत बहादुर. वैसे अंग्रेजों से बक्सर के युद्ध में मुंह की खाने के बाद ही शुजाउद्दौला की आंखें खुली थीं कि उसकी सेना की युद्ध प्रणाली बहुत ही घिसी पिटी है. और उसने तभी दो फिरंगी अफसरों को अपनी सेना को नयी तराश देने के लिए रखा था—स्विस अफसर मेजर पोलियर को और कर्नल चैंपियन को.

सेना का कायाकल्प करके ही वह अपनी नयी तराश के सिपाहियों को लेकर मालगुजारी वसूल करने निकला था. उसे सहसा बलवंत सिंह की याद हो आयी. उसी की प्रजा होकर इस अदने से जागीरदार ने शुजाउद्दौला को कर देना ही बंद कर दिया था. शुजाउद्दौला ने पहले पहल बलवंत सिंह को ही, 'ठीक करना' मुनासिब समझा और वह उधर ही लपक लिया.

बलवंत सिंह ने भी लोहा लेने की ठान ली और वह चुनार के किले में डट गया. शुजाउद्दौला ने घेरा वैसे सोच समझकर ही डाला था. जबरदस्त गोलाबारी और रसद-पानी पर नाकेबंदी करके उसने बलवंत सिंह के औसान खता दिये और एक रात चोर रास्ते से बलवंत सिंह बनारस की ओर भाग निकला. रास्ते में वह अपने दोस्त लतीफपुर के किलेदार के पास जम गया पर वहां पर भी शुजाउद्दौला ने उसकी नाक में दम कर दिया. फिर भागा बलवंत सिंह और अबकी बार वह अपनी सास के पिंडरा के किले में आ बैठा. पिंडरा का किला क्या मिट्टी की पुरानी गढ़ी थी. उसकी सास ने उसे आश्वासन दिया, "हमारी तलवारें भोंतरी नहीं पड़ गयी हैं. बादशाह हो या वजीर नवाब—हम लड़ेंगे."

बनारस से उन्नीस मील दूर पिंडरा के किले पर भी शुजाउद्दौला आ धमका. उसने जबरदस्त घेरा डाल दिया. बलवंत सिंह की सास हाथ में तलवार पकड़े अपने सिपाहियों का उत्साह बढ़ाती और हमले का डटकर मुकाबिला करती. पर उसका दामाद बलवंत सिंह कायर निकला जो हिम्मत हारकर एक रात किले से भागकर तराई की ओर हो लिया. पर उसकी सास डटी रही.

शुजाउद्दौला ने जब तोपों से गोलाबारी की तो उसके गोले पिंडरा की मिट्टी की दीवार में धंसकर रह जाते. और जब वह हमला करता तो बलवंत सिंह की सास के सिपाही उन्हें पत्थर और खौलते तेल से दीवाल पर चढ़ने नहीं देते.

शुजाउद्दौला तिलमिला गया और हिम्मत बहादुर से बोला, "इस औरत ने मेरी इज्जत धूल में मिला दी है." हिम्मत बहादुर ने ही तरकीब सुझायी थी कि वह सफेद झंडा लेकर बलवंत सिंह की सास के पास जायेगा और यह शर्त रखेगा—

'नवाब साहब की इज्जत रखने को आप किला छोड़कर बाहर निकल आइए और इसके बाद भले ही फौरन वापस चली जाइयेगा. मैं वचन देता हूं कि आपके साथ धोखा नहीं होगा.'

बलवंत सिंह की सास मान गयी. दूसरे दिन पिंडरा के किले का फाटक खुला और वह वीरांगना अपने घोड़े पर बैठकर अपने सिपाहियों के साथ बाहर निकली और फिर थोड़ी देर बाद किले में वापस पहुंच गयी. हिम्मत बहादुर ने भी अपना वचन निभाया. अपने माथे से पसीना पोंछकर नवाब शुजाउद्दौला खाली हाथ वापस लौट पड़ा. अपनी थोथी इज्जत बचाने के लिये उसने बलवंत सिंह की सास से वह स्वांग जरूर रचवाया था पर उसने भी धोखा नहीं दिया. □

बाला दुबे

अपनी पीढ़ी के प्रतिनिधि कथाकार. 'पराई प्यास का सफर' जैसे कहानी-संग्रह और 'किराये की कोख' जैसी बहुचर्चित, विवादास्पद कहानी के रचनाकार
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : आंगन छाया, २३ सुंदरवास, (उत्तरी) उदयपुर.

आलम शाह खान

अबला जीवन का गणित
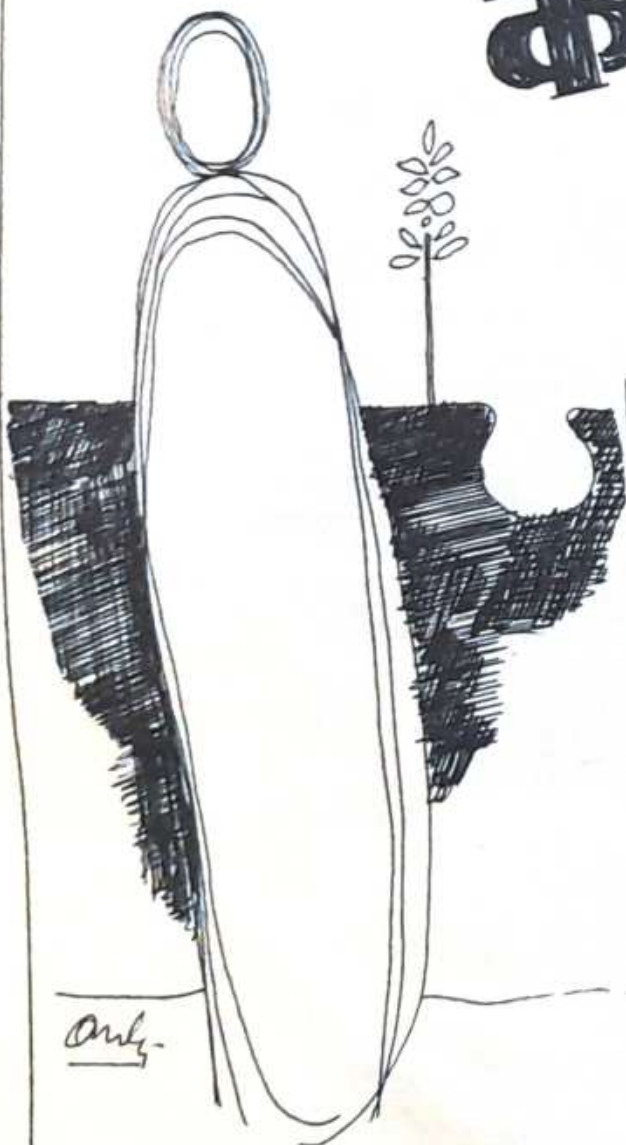
''लुगाई की उमर... उसे तो जन्म से ही मरा जान, वो जितना भी और जैसे भी जिये, दूजों के लिए जिये. अपनी जिंदगानी जीना उसके नसीबों नहीं बदा.''

मां ने नाम दिया जस्सू, दद्दा ने जसोदा और मास्टरजी ने यशोदा पर मैं हूं असल में जीरो. हां, जीरो, सिफर-शून्य. मैं यूं ही नहीं, जता-बता रही अपने को जीरो. पूरा पक्का हिसाब लगाकर कह रही हूं. हिसाब में पक्की जो रही हूं. पढ़ा मैंने दर्जा पांच तक ही क्यों न हो, हिसाब में पोच नहीं. पांचवें दर्जे में मुझे सौ में से पचानवे नंबर मिले थे. चौथे में अस्सी, तीसरे में सत्तर, दूसरे में साठ और पहले में पचास. दर्जा-बदर्जा नंबर बढ़ते गये गणित में, पर जिंदगानी में आगे-आगे नंबर घटते ही चले गये और नौबत जीरो पर आन पहुंची.

बस, बनिये के बेटे का मेरा आंचल खींचना जुल्म हो गया. वैसे जुल्म तो होना ही था. होता ही आया है. सीता-गीता, राधा-कुंती, बीना-बसंती सबके साथ. मां के साथ, मां की मां के साथ, दादी और दादी की दादी के साथ. पर मैं बहाने से पकड़ी गयी. और तेरह की उमिर में ब्याह दी गयी. सोलह के खिल्लाड़-लढंग अनाड़ी संग.

दादी की दुखती बांह पर तेल मलते हुए उसके फसक-लिथड़े मांस को अपनी उंगलियों में भरते-छोड़ते फिर उसे पोरों से हुलाते पूछा था मैंने, ''दादी, जे क्या गला.''

''जस्सो रानी, साठ की सिन में गल जावे है काया, घुन लग जावे है उसे. खास करके लुगाई जात को.'' दादी के दुखते बोल थे.

''मैं कित्ते बरस की हुई दादी.''

''दस बरस की दावड़ी है री तू तो.''

''दावड़ी. वो क्या?''

"अरी, दावड़ी, कहें, भोली, भलाईवाली को, समझ मासूम अजान."

"दस की दावडी और बीस की?"

"बीस बरस की? बीस की बावली."

"और तीस की?" मैंने हुमक कर फिर पूछा.

"और तीस की? तो फिर पूरी बात सुन-गुन. दस बरस की दावड़ी, बीस की बावली, तीस की तीखी, पचास की पकी, साठ की थकी, सत्तर की सली, अस्सी की रूली-लुज-पुंज, नब्बे की रडली, घिसट-घिसटकर चलने वाली और सौ की चली. मतलब जली, चिता चढ़ी."

"जे क्या दादी?"

"जे, लुगाई जात का जिंदगानी का हिसाब है जे. तनि बड़ी हो ले फिर तेरी भी समझ में आ जायेगा सब."

"तो सौ बरस की उमर होवे लुगाई जात की?"

"लुगाई की उमर. उसे तो जन्म से ही मरा जान. वो जितना भी और जैसे भी जिये, दूजों के लिए जिये. अपनी जिंदगानी जीना उसके नसीबों नहीं बदा." दादी ने ठंडी सांस भरी.

"वो कैसे, दादी."

"कहा ना बड़ी होने पर तू खुद जान जायेगी."

और मुझे जिंदगानी का हिसाब, जीवन का गणित, उसकी गुत्थियां धीरे-धीरे समझ में आने लगीं.

सौ साल की जिंदगानी मानकर दादी के सुझाये दस हिस्सों को जो देखना-समझना चाहा तो उसके आधे पर आकर ही ठिठक-ठहर गयी. जीवन के पचासे का ही लेखा लेने बैठी तो जीवन के बहीखाते में जो उजागर हुआ उसे ही यहां टीप रही. वैसे ही, और करूं भी तो क्या करूं?

दस की दावड़ी : हम जुड़वां जनमे थे. पहले भैया और फिर मैं, कोई आधा घंटे बाद. मां दद्दा कहते हैं, भैया खूब गोल गदराया था और मैं मरियल-गलीयल, एकदम सींक जैसे मेरे हिस्से का पित्ता गरभ में भैया ने खा लिया हो. पर जनमते हुआ यह कि भैया ने तो मां का दूध ही मुंह में नहीं लिया और मैं जोंक जो चिपट गयी मां की छाती से. चौथे दिन भैया नहीं रहा और मैं हुमकने पनपने लगी.

दादी और बुआ ने ही नहीं, मां ने भी हांक लगायी—"खा गयी बैरन भाई को!" बप्पा भी कहां चूके—"निगल गयी कुल-उजियारे को!" और फिर कब बिसारा सबने मेरे इस जनम-जुल्म को. आगे जाना—मां का दूध पीकर तब मैंने जैसे कोई पाप ही तो किया था.

मेरे बाद मां की कोख में एक बेटी—'मन्नो' और आ गयी तो ताने-तीर मुझ पर और तन गये—"भाई मारा, ऊपर से बहना का भारा." मैं समझती ही क्या थी तब जो कुछ करती, कहती. बस 'हुत-धुत' सुनती रही और जब एक बहन और आ गयी तब तो मन्नो जैसे मेरे ही गले मढ़ दी गयी. मैं सवा बरस की रही तब मन्नो आयी और जब मैं ढाई की और वह सवा साल की थी तभी छोटी रतना ने आंख-मुंह खोल जैसे मुझे नींद से जगा दिया. अब मन्नो के आगे कांसे का कटोरा रखकर बजाना और रतना के छी-छू करने पर मां को बताना-चेताना और ऐसे ही दूजे काम जो एक बार मुझ पर आ पड़े तो फिर आगे उनका तांता कब टूटा. बेटे की हौस में बेटियां पाते-पाते चौथी बेटी के पार दद्दा ने बेटा पा ही तो लिया. हम चारों बहनें तुस और भैया तुर्रा. दूध उसके लिए, खांड उसके वास्ते, घी-मक्खन जुट जाये तो उसे ही सब खिलाये-चटायें. हम देखें-तरसें तो 'कहीं नजर न लग जाये' के डर से दूध का छींट या मक्खन-चना हमें भी दे दें. नंगे आकास के नीचे बैठा भैया, इसके होंठों लगा दूध कटोरा, दूध में कोयले की कनी और बहनें-दूध की मक्खी.

पांच बरस की उमिर में मेरे कोल्हू पर टिकी तारो और आसपास जुटी मन्नो-रतनो. मां तो मगन पूत—हेत में लोरियां गुनगुनाने में. बस घर में खटनेखुटनें के लिए ही मैं बढ़ती गयी. चढ़ती गयी चढ़ान दूजों को पीठ पर लादे. आंख मीचौनी, सितोलिया चीटा-चीटी भूल जब कभी साथिन संग झूले की पेंग बढ़ाती मां हांक लगाती, दद्दा ताते हो टेरते और बहना-भैया आ घेरते मुझे. अघाकर खेलने न पायी कभी. कभी खेली तो हारी और जीतने का दांव आया, दूजे को पदाने की घड़ी आयी नहीं कि फिर वही बुलौवा—"जस्सू कहां जा मरी! यहां आन गड़."

दादी ने दबक दिखाकर डलवा ही तो दिया मुझे पाठशाले में, घर के पास ही, गांव में. पर बराबर कब जा पायी मैं पाठशाले. आज मन्नो की नाक चल रही है, कल रतनो को दस्त लगे हैं और आगे तारो का डील गरम है. अब, भला मां अकेली कैसे तो झेले-संभाले इस जंजाल को.... फिर भैया की सार-संभाल कौन करेगा! ऊपर से फिर पूरे दिन, "अब भई, लाख बूते से बाहर हो, जस्सो बड़ी है सो बड़ी ही है. दादी का डील तो चलता नहीं जो हाथ बटायें. बेचारी गठिया की मारी. दद्दा गृहस्थी का गाड़ा छोड़, पालना हिलाने से तो रहे. हां, जब घर होते हैं तब भैया को तो सर माथे रखते ही हैं. अब रही जस्सो, सो सब उसी को करना है. और फिर उसे कौन एल.एल.टप बनना है. न गयी पाठशाले तो कौन मियां मर गये और रोजे घट गये. रोज-रोज नहीं, कभी कभार भी जायेगी तब भी हमारी जस्सो पिछड़ने वाली नहीं बड़ी स्यानी है हमारी बिटवी. बनिये के बेटे को नीचा दिखा दिया इसने हिसाब में." मैं सुनती सब और पाटी-बस्ता पटक, मुंह फुला, मां के सामने जा खड़ी होती. मां कभी रीझी होती तो होले से थपतियाकर कहती—"जा भी जस्सू रानी, अपने राजा भैया के लिए तनि दूध गरम कर ला, भली." और जो खीझी-खिसियायी होती तो चट हुक्म दाग देती, कहती—"अब खड़ी क्या तके है, टल भी और पूतनियों के लत्ते धो-समेट. मुई एक पे एक घर भर गया डाकिनों से. ऊपर से एक और लाख बरजा अपने सतफेरे को पे मां-बेटे इतराये बोले, 'एक आंख में आंख नहीं, एक पूत में पूत नहीं...' अब दो पूत हो जायें तो लगायें चस्मा और जो बेटी आन पड़े कोख में तो रहे—काने के काने! हकालें बेटियों का रेवड़." मेरी समझ में न आता कि बेटी क्यों बोझ और बेटा क्यों दीप? किस हिसाब से एक धूल और दूजा फूल?

छोटी बहनों के बाल संवारते-संवारते उन्हें अपने बूते भर, नहलाते धुलाते, उनकी हारी-बीमारी में खटते-खटते मेरे अपने बाल गुजलाकर रह जाते. मैं बिन नहायी, मैली इस-उस मांदगी से घिर जाती. दद्दा कहते—"जस्सो हमारी सेणी है लच्छी. आठ बरस की जान और अस्सी काम. टेढ़ी-बांकी ही सही, रोटियां सेक दे, दाल-सब्जी छौंक दे, बर्तन-बासन कर दे और झाड़ू-पौछन कर दे. एक महतारी है इसकी, पलंग चढ़ हुकम तोड़ा करे."

"हां, हां, तुम्हारे घर में राज करूं मैं. हिंडोले चढ़ पैर दबवाऊं मैं.... कंचन सी मेरी काया को पेल चींचड़ पे चींचड़ चढ़ा दिये. साल के साल को आंखों में आवे तब ना." मां ताती हो गुर्रायी.

"अरे, चुप भी कर. हया सरम कुछ रही भी या वो भी चली गयी कंचन-कंचन संग. काम के लिए हौसला बढ़ाने हेत जरा बेटी की पीठ थपथपा दी, मीठे दो बोल बोल दिये तो मां की जीभ कड़आ गयी."

मां और क्या कुछ कुरलायी पर मेरा मन उसके कड़वेपन से नहीं दद्दा की मीठास से भर गया—तो दद्दा मुझे मन से नहीं सराहते, काम में जोतने के लिए मुझे फुसला-बहला रहे. ठीक, तो फिर मैं क्यों खट मरूं अकेली? मैंने अपने मन को मनाया और लाड़ी-लड़ी तोड़ मन्नो को भी इस-उस पर चढ़ा दिया. रतना भी पांच बरस पूरे कर गयी, तो उसके हाथ में भी झाड़ू बर्तन थमा चैन की सांस लेने की ठानी. इतना ही नहीं, जब तब उन्हें धबीक भी देती अब. मैं मां-दद्दा के कपड़े धोती-छांटती तो मन्नो-रतना घर-आंगन बुहार बासन-भांडे मलती, तारो उन्हें नन्हें हाथों सहेजती जमाती रसोई में.

मन्नो ने बहुत रस्सी तुड़वायी पाठशाले जाने के लिए पर यह कहकर उसे बरज दिया कि जब जस्सो नाम लिखाकर भी पाठशाले

नहीं जा पाती ता भन्ना रतना कैसे जायेगी. काम-धाम छोड़ के. फिर चली भी गयी तो जस्सो का हाथ कौन बटायेगा. दोनो ना पास होंगी. अच्छा है, जस्सो ही दो अक्खर पढ़ जाये. पांचवी पार हो ले तब उसे छुड़ा रतना को पाठशाले में डाल देंगे. यही कहते-सुनते वह सातवां साल पार कर गयी पर पाठशाले न जा सकी. नन्हीं तारों की तो बिसात ही क्या!

इधर पांचवां दर्जा पास कर मैं 'पंडिताइन' बनी. सब घर में मुझे जब-तब इसी नाम से टेरते. उधर मां दूसरे बेटे की मां बनी. अब हम छह भाई-बहन थे.

"कौन नौकरी-अफसरी चढ़ाना है बेटी को. भौत हो गयी पढ़ाई-लिखाई. अब तो इसे कसीदा-कढ़ाई सिखा री बहू." मेरे अव्वल पास होने की, एक दिन, चर्चा चली तो दादी ने कहा.

"मुझे खुद आवे है ऐसा कुछ जो इसे सिखाऊं मैं." मां चेंट हुई.

"महतारी अपनी ने इतना भी नहीं गुनाया-सिखाया...बस गर्र-गर्र घर भर बच्चे!"

"सिखा न दे कहने वाली, अपनी पोती को और कोई बच्चे मुझ अकेली के हैं. आज घर की माई ताना मार बैठी तो कल पास-पड़ोस की तो उंगलियों पर उठा लेंगी. आने दो आज इन्हें!" मां ताती-राती हो गयी.

और दद्दा के आने पर घर में वह कुहराम मचा कि बस. दद्दा ने दादी के, अपनी मां के, ब्याह जापे-जचगी के बखिये उधेड़कर मुंडेर पर सुखा दिये. तो पड़ौसी राम-राम उचार गये. दादी अबोल गुमसुम और हम दुबके छिपे दूर.

बीस की बावली : बुआ आयी थीं अपने नैहर चार दिन को, पर बीरा भौजी चने चबवा गयीं सालों साल के लिए.

"भौजी री. घमेगी भी या दूधों नहाये पूतों फले जायेगी. घर आंगन दूध का कीचड़ हुआ रहा." आंगन में मचलते भैया को लख उन्होंने कहा, "और देख, बस-बेल फल मुंडेर लांघ गयी." रतनो मन्नो को मुंडेर पर चढ़ा देख वह बोली, "खूब कर ली बस खेती...अब बेटियों के सगाई सगपण की भी सोचोगे के शिव जी की बरात ही बना कर दम लोगे?"

बुआ दद्दा से बड़ी थीं. आसूदा भी. कभी-कभार भाई की गिरस्ती गाड़ी को सहारा-धक्का भी देती थीं. इसीलिए उम्र के तीते-तीखे मां झेल गयी और दद्दा ने आंखें नीची कर लीं.

"और ये क्या सुना मैंने! बनिये के बेटे ने जस्सो का आंचल खींच कंकरी उछाली उसकी तरफ...अब भी अकिल आयी कि नहीं. कित्ते बरस की हुई हमारी जस्सो लाडो? बताओ तो भला."

"तेराह पार कर चौदहवां चढ़ी है, दीदी." मां ने गम खाते हुए कहा.

"तिलचट्टे के छह पैर होवें पर वो भी जाने है कि कौन सा पग कब उठाना है. एक तुम हो पूत-प्रेम जगाये जा रहे. तनि सोचा है, चार-चार पूतनियां हैं घर में. कन्या कोरे माटी घड़े सी, पानी परेंडे से उतरने में क्या देर? अब मुझे ही टोना साधना पड़ेगा कुछ," बुआ कुछ सोचकर बोली.

और बुआ ने वह साधन साधा कि चौदह की चौखट पार करते न करते छनका ही तो दी मेरे पैरों में दुल्हन की पैंजनियां. हथेलियां पर रचा ही तो दिया महावर, पूर ही तो दिया बावली मांग में सुहाग-सिंदूर. यूं मेरे पीले हाथ कर एक छौने के गुलाबी छोर से बांध बिधवा ही तो दिया मुझ कच्च कली को. बिध गया सो मोती और बिध गयी सो मां. पंद्रहवें की दहलीज पर पैर रखते न रखते मेरे पैर भारी देख कैसे तो हुलस गयी सासजी पहले पोते का मुंह देखने को. और जब वह जनमा तो उसे कांस में भर निहाल ही तो हो गयी वो. घर में दो-दो गायें-भैंसें बंधी हों और तब बहू की गोद गराये. पोता पायें सास जी तो ठाकर जी को सीस नवा क्यों न अपना भाग सराहें सास जी. उनकी अपनी कोख तो बस एक पूत पड़ा था उसे घी-दूध की धार चढ़ा, अखाड़े की तेल-मठ्ठा पिलायी मोटी में रमाकर परवाने चढ़ाया था उन्होंने और अब आंगन भर पोते देखने का सपना संजोये थी वह.

चौधरी घराने से परले गांव के मुखिया घर से बैर जो बंधा है. आखिर चौधरी के खून का बदला, खून ही तो होना है. अपने दो कम आधा कौड़ी बेटों के जट्ट पर ही इतराना है न. बांके बजरंग को रंग मेरा एक पोता बैरी के पांच प्रेतों पर भारी पड़ेगा. सास चौधराइन ने ऐसा ही कुछ धार. पोते को गर्वीली आंखों से देखा और नीचे नयनों वाली बहू का भाल चूम लिया और फिर मैं अपनी मां की तरहों ही सवा साल के फेर से फलती चली गयी-निहाल (?)होती चली गयी. बीस बरस पार करते करते मेरी कोख में पांच-बेटे बेटियां अलाव था. मैं बौखला गयी-बावली ही तो हो गयी. बीस बरस की उमिर का बावलापन होता है. हौंस-हुमक का, खेल-खिल्लाड़ का, मौज मन का, बेसोच-बेसध भले-भोलेपन का, झंझट को झठला बेमौसम झूलों पर

वीरांगना तारामती

बात सोलहवीं शताब्दी की है. जब राजस्थान छोटी छोटी रियासतों में बंटा हुआ था. उस समय टोंक रियासत पर राव सुरनाथ का अधिकार था. किंतु अफगानों द्वारा चढ़ाई करने और उनके अत्याचारों से राव सुरनाथ को अपनी रियासत छोड़कर अरावली पर्वतों में अज्ञातवास का जीवन बिताना पड़ा. उनकी वीर तथा रूपवती पुत्री तारा उनके साथ थी. अपनी पत्नी के स्वर्गवास होने के पश्चात तारा का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा राव सुरनाथ ने स्वयं ही की थी. वीरांगना तारा ने घुड़सवारी, तलवार चलाना और युद्ध संचालन की शिक्षा अपने पिता से ही ग्रहण की थी.

युवा होने पर तारा को राव सुरनाथ ने टोंक पर अफगानों के हमले की कहानी सुनायी. तो तारा ने टोंक को मुक्त कराने का निश्चय कर लिया. उसने विश्वास पात्र राजपूतों की सेना तैयार की और अफगानों पर आक्रमण कर दिया. किंतु अफगान सेना अधिक होने के कारण राव सुरनाथ और तारा की पराजय हुई.

इस आक्रमण से तारा की वीरता का गुणगान आस-पास के राज्यों में होने लगा. बहुत से राजकुमार तारा से विवाह के लिए लालायित हो उठे. इनमें चितौड़ के राजकुमार पृथ्वीराज और जयमल भी थे. जयमल ने जब राव सुरनाथ को तारा से विवाह की इच्छा प्रकट करते हुए संदेश भेजा तो तारा ने कहलवा दिया कि वह उसी वीर से विवाह करेगी जो टोंक राज्य को अफगानों के पंजे से मुक्त कराएगा.

चितौड़ के दूसरे राजकुमार पृथ्वीराज ने यह बीड़ा उठाया और राव सुरनाथ को टोंक को स्वतंत्र करा देने का विश्वास दिलवाया.

चितौड़ की वीर राजपूती सेना के साथ पृथ्वीराज ने टोंक पर आक्रमण कर दिया. वीरांगना तारा भी सैनिक वेश में पृथ्वीराज के साथ युद्ध में बराबर अफगानों को गाजर मूली की तरह काटती रही. राजपूती शौर्य के सामने अफगान सेना के छक्के छूट गए और वे टोंक छोड़कर भाग खड़े हुए. टोंक पर बार फिर राव सुरनाथ का अधिकार हो गया. उन्होंने अपनी वीरांगना बेटी तारामती का विवाह राजकुमार पृथ्वीराज के साथ कर दिया.

कुछ दिनों बाद मेवाड़ की प्रजा के पृथ्वीराज को पत्र लिखकर यवनों से रक्षा की प्रार्थना की. पृथ्वीराज तथा उसकी वीरांगना पत्नी तारामती ने साथ-साथ राजपूती सेना का नेतृत्व किया और मालवा के सुल्तान और उसके पिछलग्गू सूरजमल को हराया. उस युद्ध में भी तारामती ने अत्यंत वीरता दिखायी. □

भी पेंग बढ़ाने का.... पर यहां वैसा चहेता बौराया बावलापन कहां. यहां तो जान झमेलों में जकड़ झूल गयी और मैं भूल गई दादी की बतायी वह बावली बेला. इस छोर पर मैं अजान-मासूम नहीं सुजान-स्यानी हो गयी. इतनी कि समझ दर्दीली हो जाये और अपना मन अपने को ही मार गेरे.

कितना तो सुहाग सगे को समझाया गुनाया. न माना तो पगरों में माथा रख चिरौरी चाहकी पर चौधराइन का इक्कीस साल का सवा छत्तीस का छह फुट से ऊंचा, सपूत भला कब मानने लगा बात, वह भी पैर की जूती, लुगाई जात, की. तैल पिलाये मुगदर घुमाना, अखाड़ा लड़ना, लाठी के पेच निकालना और चौपाल में बैठ चिलम चेताना उसका काम दिन-सांझ में.... और रात को! सारी दम साध घरवाली को पीस-कूट उसे बिछा देना. चाहे उसका जीव ऐसा-वैसा ही क्यों न हो. डील उसका ठंडा-गरम रहे तो रहे. पूतखेती उसका धंधा. ब्याहता की देह-माटी तोड़ बीज बखेरना उसका बिनज ब्यौहार. कभी रोकूं-टोकूं तो लाल आंखें देखूं घुड़की-मुक्का खाऊं सुनूं सीख-धर्म:

''देह धरम पे रोक, पोथी बांच पति-परमेश्वर की बान बिसरा गयी.... हम पसीना पीकर अपना गाढ़ा इसमें गेरें.... मर्दानगी का जादू जगावें इसके हेत और जे दे उपदेस.'' अक्खड़ अखाड़ची के ये मर्दाना तेवर.''

''हरि! हरि! पाप न लगाओ!! देह-दीप अपना आस-उजास सब तुम पर वारूं, भला मैं तुम्हें आड़ दे अपनी कायाँ सहेजूंगी. मैं तो संयम नेम को कह रही. देखो ना, उजला डील तुम्हारा कैसा कजला गया. नसा-नुसी, मेहनत-कसरत अखाड़े की, उस पर रोज-रोज की यह देह-मजूरी.... घर में तंगी तुर्सी.'' हारे हिरसाये, धीमे और डरे-डरे बोल मुझ 'बींदणी' के बिछते हुए.

''एक सांस में इतनी 'सीख' खींच गयी. संयम नेम हमें सिखावै. हमारी कसरत कमाई देह को नजर लगे गांव की जवानियों की अब भी. और तू. सुहागन सुहाग सेज न साधे तो और क्या करे.... मीरां बाई तो बने ना.... और हां, तंगी-तुर्सी को भली. चौधरी का घर है आखिर तो गया-बीता भी सवा लाख का.... याद रख.''

और फिर भिनसारे कमर की कसक लेकर उठी तो कच्ची अमिया, सौंधा गारा, खाने जी हुमका. बावली होकर ही तो खाट में जा दली मैं. बावली. न पूरी पगली और न पूरी समझू.

तीस की तीखी : तीस बरस के तरकस पर चढ़ी जिंदगानी तीखा तीर ही तो होवे. दादी ने कहा था ये उमिर अपने आगे किसी को न गिने धीरे. अपनी 'रहनी' को अपने हिये-हिसाब से ढाले-बनाये. और 'तीसे' के दौर में बना हिया जिया उसका मन-मानस और सोच-विचार और तब डाली गयी दाग-बेल आगे की इमारत, जिंदगानी को ऊपर उठाये-बनाये. पर मैं क्या बन पायी? तीस बरस की मेरी उमर के तरकस में तो कोई तीर नहीं. बस तुस ही तुस है. इस तुस से जिंदगानी की कौन तो इमारत बने और क्या तो कोई अपनी 'रहनी' सधे.

खोखले मन और नोचे-निचुड़े तन से कौन सा तो विचार-सार बने और दाग-बेल. दाग-बेल नहीं, दाग ही दाग उभर आये हैं, काया-कलेजे पर. और क्यों नहीं? एक पूत पतला झाले तो दूजा कांख में अंगिया उघाड़े, तीजा कोख में लात मारे तो बाकी बचे कांव-कांव कर रात-दिन कपाल छेदें.

यों मेरे 'वो' भरते गये मुझे, मेरी कोख को, और मेरा आवा रीतता चला गया. मैं खाली होती चली गयी-तन, मन दोनों से. आठवें सपूत के आते-आते तो 'वो' मेरे भरतार भी चुककर टूट से गये. उनसे अब न इस मुस्तैदी से मुग्दर सधते और न अखाड़ा ही गुदता. सासजी रही तब तक खेत-खलीहान हरे-भरे रहे. पर उनके बाद बटाईदार बटमार बन गये. और 'वे' घर-घुसरे, घुन लगे से बांदे और बीमार. उधर सासजी के जाने से घर-चौके की चिंता ने भी मुझे सूखा तिनका ही तो कर दिया. कुल्फी का मलाई-मावा चुस-झड़ गया उसकी बांस खपच्ची हाथ में रह गयी. गाल धंस गये. जबड़े के हाड़ उभर आये. आंखों की पुतलियां पनियल कोटरों में डूब चलीं और पपोटों के नीचे काले-कलसाये साये चिपक गये. नाक की डंडी उघड़ गयी. होंठ पपड़ा गये. हाथों की नसें केंकड़ों-सी तैर आयीं छान-छितारा कर पी ही तो गये पिल्ले-सूखे खजूर खारक सी खंगलाकार लिथड़ ही तो गयी.

जो सब बीती मुझ पर उससे मैं उतनी बेहिस और बेहिसाब न रह सकी. जितनी कि मेरी मां रही. मां के संग जुड़ी हम भाई-बहनों की संगत को लख मौसी जब-तब तान तोड़ ही तो देती. ''जीजी. तेरे जायों का जाल और तू भड़ूरी, सुवरिया ही तो लगे.... उसके बारह और तेरे!''

मां, जैसी भी लगती हो, मैं अपनी आंखों में भड़ूरी, सुवर जात, ही हो गयी खुद, मेरे जाये भी मेरी छाती छेदते-चिचियाते मेरे पीछे वैसे ही तो लगे रहे. सच मैं सुवरिया से भी गयी-गुजरी रही. उसमें सोच नहीं. मुझे मेरी सोच-समझ ने साल कर रख दिया. जो हुआ-गुजरा, मां ने सब मान लिया. पर जो बना-बीता मुझ पर उसे कब मान पायी मैं मन से. सब को झेलकर भी उखड़ी-उदास और बुझी-बैरायी रही मैं. सोचती, यह सब न हुआ होता, सामने जो आया, न बना होता तो कैसा होता जीवन-जगत. मां ने सब सहा मौन. सहा मैंने भी पर कूक-करलवा के. 'देह-धरन का दंड ज्ञानी भुगतें ज्ञान ते, मूरख भोगें रोय.' मैं मूरख ही रही, चार अक्खर उघाड़ने से क्या होता है? पर ऊंच-नीच उजागर सा हो गया मुझे. इसीलिए अपनी जून का यह लेखा ले रही मैं-मां का जन्म जीकर भी.

चालीस की फीकी : चालीस की चोहट्टी पर खड़ी जिंदगानी के अनलिखे लेख बांचूं-जांचूं तो मन तिरसा जावे. अब काया दरक-मुरककर कुजला गयी फिर भी सोच सही-साबुत होने लगा. चिंता चेत देने लगी और 'रहनी' बेस्वादी हो गयी. नसीबोंवाली होंगी वो जो घर-धन की कचोट चेट झेल संभल गयीं. बेटे-बेटी फिर नाती पोतों के नाते रिश्तों की लेन-देन ने कौंचकर ही तो धर दिया मुझे. बन्ते-बिदकते समधाने उनकी इस उस चाह-चहक और उठा-पटक ने खोखला ही तो कर दिया मुझे. इनके किये तो कुछ तब बनता था न अब. बनती बिलम उपजती खांसी और फिर लकवे की लपेट में आये 'ये' ऊपर वाले की आंख बचाकर ही तो जीते रहे. पर मैं इनकी सेवा-टहल में मरती चली गयी, दिन-दिन जीना दूभर हो नीरस हो गया, फीका थू. गन्ने की चुसी गंडेरी सी फुस्स-तुस जलने जोग में.

घर-घेर से घबराकर नैहर जाने की सोची. थोड़ा तो बदल आये, धानी-बेल-घुमनी से. पर सबको, खासकर, 'इन्हें' खाट-खटा छोड़ कैसे तो जाती? फिर याद आया एक बार पहले भी तो गयी थी, मां-दद्दा के यहां जब मेरी तीजी कोख फलने वाली थी और मां की आठवीं, भावज की पहली और टुटकी बुआ की भी. पीहर का घर जच्चा-घर बनने चला था तभी मैं लौट आयी यही सोचकर कि पूरे दिन हैं मेरे भी और यहीं कोख खुल गयी तो दद्दा पर और बोझ आ जायेगा. उनके घर की हालत वैसे ही बोदी हो चली थी.

पीहर से अपने घर आयी तो यहां भी वही लग्गा लगा था. बड़ी बहू के पैर भारी थे. मंझली बेटी आ गयी आस लिये और ननदजी भी यहीं आ रहीं अपने कुल की जोत-जगाने. किसी स्याने ओझे ने कह दिया था उन्हें, नैहर में आंख खोलेगा तो जीयेगा. जगमगायेगा. उनका लाल. ससुराल में तो उनके होते गये चलते गये. अपनी, इसकी उसकी चगी झेलते-संभालते अब तो जी ऊब गया. ऊपर से परायी हंसी.

''बहू, संभाल ललना अपना.'' मैंने टेरा.

''वो नहीं, आपके वो लाला जी रोवे हैं.''

''लल्ली. ताने छाती से भी लगायेगी इसे या रुलाये चली जायेगी.''

''अपना तो मेरे पास है. भाभी वाला तालू से जीभ नहीं रहा.''

"ननद रानी, अब तो दूध दो अपने लाड़ले को."

"वो नहीं, भाभी. आपकी बिटिया का कुछ रहा."

ये ही सब पास-पड़ोस के सुनते और ठठाकर हंसते. स्यानियां कहतीं, "मां-बेटी और बहू-ननद, सभी एक साथ बांध तोड़ बैठीं." छी अपनों में ये तेरा मेरा. मैं सुनती और लाजों डूब जाती.

जो भी हुआ, सहा मैंने. पर सासजी के लेखे मैंने बेटे नहीं, तीर-तलवार, भाले-बरछे या फिर दनाने बारूद-गोले जने थे, जो परवान चढ़ते ही चढ़ दौड़े थे चौधरी घराने का बैर चुकाने, अपने दादा-बाप का खून उफानकर अपनी दादी मां का खून ठंडा करने और ये आये दिन की रण-राड़ में आखिर को एक उधर का गिरा और एक इधर मेरा खेत रहा. सबसे बड़ा पाटवी बेटा. दूजा मेरा जेल में और इसकी घरवाली यहां मुझसे कलप काढ़े है. रोज-रोज. बड़े की सेवा आन से और रो-कलप से मुझे कलपावे है रात-दिन कमाऊ मझले बेटे की ब्याहता ताने-गाने तीरे चुभावे है मेरे जब-तब :

"हां हां, जेल से रेल तकमना है हमारी सासजी की कोख का कीचड़."

"जेल-रेल. तो ठीक, पर तेरे पीहर तो नहीं पड़ा मेरा जाया-जनमा."

"मेरे पीहर में कुत्तों की ठौर जगह नहीं ऐसे हया मारे हत्यारे-हेठे-नीचे के लिए!"

"तो अब हम हेठे-नीच हो गये तो फिर हमारों के तुख्म-बीज क्यों पाल रही अपनी कोख?"

"वो तो जो बदा मेरे भाग में. भोग रही. पर थू-थू हो रही गांव की चौपाल से कूंए की जगत तक. बड़े ऊंच काम जो किये तुम्हारे जाये तुख्म-तीरों ने. एक मानुस बेटा उमर कैद काट रहा, दूसरा सपूत तीन सालों के लिए भीतर इसके संग. और तीजा छोटा-छूट अपनी ही भाभी का आंचल खींच रेल चढ़ भाग खड़ा हुआ. और जो बचे, रोटियां तोड़ रहे सेंत-मेंत." मैंने सुना और जहर का घूंट पीया और चुप.

"बोलती बंद हो गयी ना, बहती होगी कभी चौधरी के घर में घी दूध की नदी. अब तो खीर कुत्तों में बंटती है, वह भी नाम की. अब एक मेरा घर वाला जो हाथ खींच ले तो मक्खियां मर जायें मां के. बेटा-बेटियों के मुंह में."

"कह लिया सब या और कुछ?" मैंने कड़ककर कहा.

"और कुछ? अपनी बेटियों की भी सुध है कुछ! छोटी बेजात जट्ट के संग कुंआरी देहरी लांघ गयी. और बड़ी ब्याहता ससुराल छोड़, बीरा-बन्ना के घर आन पड़ी. अब तो एक तुम और दूजी जिठानी बचीं हैं. कर लो तुम भी कोई होल, कर लो कुछ. क्यों रहो पीछे."

बड़ी बहू ने भी सुना और कसमसाकर रह गयी. मैंने भी सुना सब और नजर-नाड़ नीची कर ली. कमाऊ बेटे की ब्याहता बोले जा रही थी.

"भई, बच्चे ऊपर बच्चा....बच्चों की मालगाड़ी जोतोगे तो जे ही तो होगा....वो तो बैकुंठ बोल गये ससुरजी, नहीं तो पूरमपूर कोढ़ी पूरी करतीं हमारी सास जी."

बहू के बिषैले बैन से बचने के लिए बेटी का हाथ झाल परली कोठरी में जा घुसी मैं ऊपर से पट भेड़ दिये. फिर भी बहू कहां चुप हुई, बोल के गोल दागती रही.

"सुने हैं, चौदह की ब्याहकर आयी थीं सासजी. दस-दस लौंडे लौंडे जने. और चालीस के चौराहे पर अपने मरद को मार गेरा....मैं पूछूं सास जी, बच्चे ही जनती रही या और कब भी जिंदगानी देखी कभी?.... बच्चा-बच्चा और कुछ न सच्चा. बस मेरे संग जो करे ऐसा तो ठेंगा दिखा दूं ऐसे अपने मर्दए को...लुगाई न हुई, मसीन हो गयी पूत डालने की....दूध पूत के अलावा और कुछ नहीं क्या लुगाई की जून में? सासजी हमारी की तो गू-मूत समेटने और पोतड़े छांटने में ही कटी...कितनी तो जिंदगानी जी उन्होंने अपनी खातिर. हिसाब लगाओ तो भला." हिसाब बहू ने नहीं, मैंने लगाया और पाया. सिफर. जस्सो मायने 'जीरो'.

पचास की पकी : पचास के पके मुकाम पर तो मान जस्सो कि 'जग बानी जगदीस जानी' ही तो होता है. सोच-बिचार तो तनि, ठीक ही तो कहा बहू ने कि गू-मूत करने, पोतड़े धोने-निचौने और पालने हिलाने-डुलाने में ही तो कटी मेरी. कितनी जिंदगानी जी मैंने अपने खातिर. लगाऊं हिसाब...समझ तोलूं अबला जीवन का गणित.

आज तक मैं मरती ही तो रही हूं. एक लंबी मौत, रिस-रिसकर...मौत की रेत घिसती ही तो रही मुझे तिल-तिल और मैं बहुरिया से बुढ़िया हो गयी इसी घर आंगन में–

यही अंगना, यहि देहरी यही ससुर को गांव
दुलहन-दुलहन टेरतां बुढ़िया पड़ गयो नांव..

तो अब मैं पड़ूं अपनी मां सास जी की गेल और पचास में पककर साठ में थक जाऊं और आगे जीना बदा हो तो सुल-सड़कर जीऊं और आगे रूल-हुलकर चिता चढ़ जाऊं. जल जाऊं बस...और कर दूं इस मानुस जनम को अकारथ, जो कहे हैं पूरब जनमों के पुन्न से मिले.

पूरब जनम के तप-पुन्न से पाया यह मानुस जीवन कैसे और कब जीया मैंने अपने लिए.

मैं चौदह की 'बन्नो' और 'ये' सोलह के 'बन्ने' मुझसे दो बरस बड़े. चालीस की उमर पाकर 'ये' 'सद्गति' पा गये. यूं इनका मेरा सुहाग साथ चौबीस बरस रहा. पूरे दो जुग में से दो बरस की अपनी
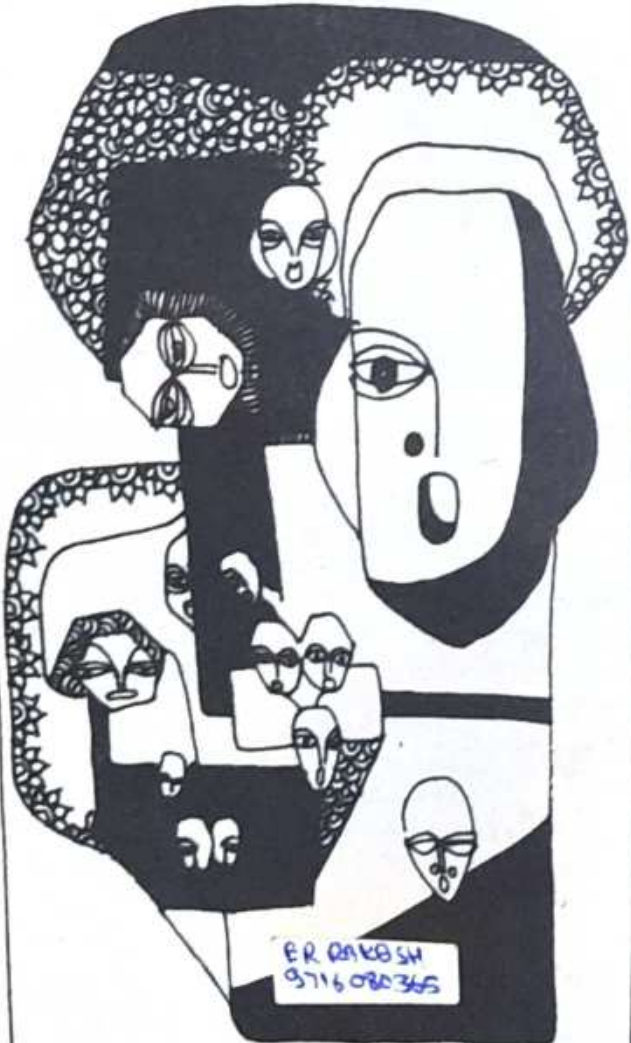
मांहगी की छोड़, मर्दानगी के क्या कुछ गुन नहीं खिलाये इन्होंने मुझे लेकर. अपनी सतफेरी की, अठवाड़े में तीन-तीन रज-धरम की बेला को टाल भी दूं तो भी औसत दो-दो बार, रेल-पेल करने से 'ये' कब चूके. उसे ओढ़ने-बिछाने के पहले और बाद को यूं सहलाते-महलाते रहे कि मेरे दो-दो घंटे खारिज हो गये उनकी मरद मान रखते. महीने का हिसाब लगाऊं तो आठ घंटे. झूठ क्यों बोलूं, इनमें से दो घंटे में अपने रस-रंग के बाद कर दूं तो भी साल के 6 x 12 — 72 यानि पूरे तीन दिन बनें और आगे 24 x 3 — 72 दिन तक तो मैं अपने पति-परमेश्वर के हेत कपड़े ही पहनती-उतारती रही. बस धारे हुए को उतारो, बिछ जाओ, उतारे हुए को धारो और उठ जाओ. यही सुहागिन का सांग और यही इसका भाग.

कच्चे दो और पूरे आठ, कुल दस आस औलाद की महतारी रही मैं, एक को दस माह के हिसाब से धरम में धारने के हिसाब से 10 x 10 — 100 माह, चार महीने कच्चे छोड़कर भी, आठ बरस मैंने कसे तने ढोल नाईं गरभ ढोने में गुजार दिये. जापा-जचगी और पहरेज-परचनी, उन्हें पालने-पोसने में आठ बरस यूं खपा दिये जैसे 'दूधों नहा पूतो फल' मेरा अपना 'आपा' कुछ रहा ही नहीं—कभी बेटा मांद है तो बेटी ताली, छुटकी को पीलिया है तो नन्हें को खसरा. इतनों की साजू-मांद में अपना जागना-जलना कैसे गिनाऊं. इस रीत आठों ने एक-एक बरस भी मेरा लिया हो तो आठ बरस मेरे यूं खुट खरच गये. नारी जनम लिया तो नारी के रोग भी तो भुगते. सुहाग स्वामी की सतायी महीने बीस दिन के फेरे से लाल-सफेद पानी से भीगी गलती-घुलती रही. पांचवीं जचगी ने तो ऐसा जकड़ जोर दिखाया कि मरते-मरते बची. कोई दस महीने बिस्तर नं छूटा. और न छूटे बिस्तर के धरम. क्या कहती उनसे. इस तरह मोटे हिसाब से 8 -8-1 --17 बरस ढाई मास, ढाई माह अपने नारी धरम के नाम छोड़ भी दूं तो नक्की सत्राह बरस. खुल गये मेरी उमर गठरिया से.

हुक्के चिलम को पीते रहे, पर जब इसका उलट हुआ तो मेरे आंचल में ढलते-ढलते 'ये' खटिया में ही तो जा ढले—दमे का दौर-दौरा लिये. आगे लकवे का लपेटा. दो बरस इनकी सेवा-टहल में खर्च करती रही अपने 'आपे' को. न रात की नींद और नैं दिन का चैन. पर 'वो' तो बचे नहीं. इनकी महतारी की खांसी खों-खों चलती ही थी. अब बेटी की कच्ची गृहस्थी में, अकाल मौत उन्हें दिक का रोग दे गयी. अब उनकी सार-संभाल, बूढ़ी लोथ को सब खटिया में ही करवाना. फिर उसे समेट फेंकना रोज का सिलसिला बना. सासजी ऊंची सांस भर टूटी सो टूटी, मेरे कोई तीन साल तोड़ समेट गयी. ससुराल में यूं खटे बीस बरस.

मां दद्दा के यहां नैहर में कौन सुख पाया. सेंत-मेंत में चुक ही तो गये चौदाह में से दस बरस. हां, दस बरस मेरे भैया-बहना के नाम चढ़ गये. इस तरह बीस और दस, जमा तीस, बरस, भेंट हो गये नदीदे ससुराल और नेह-निथरे नैहर को. और तब बहू-बेटों बेटों की 'करनी' से नरक-नदी ही तो चढ़ आयी... मैं गले-गले तक डूब उतर ही तो गयी उसमें. अब पचासे के पके कोर-किनारे पर खड़ी सोचूं कि कितना तो बचा पायी अपने लिए जीवन-जल? बूंद ही तो बची अब... दो-चार बरस बूंद. इस बूंद बिंदिया को भी नरक नदी में मिला मिटा दूं और पा जाऊं नरक समाधि? नहीं, नहीं, मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगी. सीस माथे चढ़ाऊंगी बचे बूं-बूंद जीवन को. जिंदगानी की नदी नरक हुई तो हुई अब इसकी बची बूंद को बैकुंठ बनाऊंगी. काल-कूट नदी का धार में मैं अमृत कमल, एक नन्हा अमृत-कमल, खिलाऊंगी और पान करूंगी अपने लिए जीये गये जीवन के अमृत कण का. देखूं तो सही कैसा होवे अपनी खातिर-बसर की जिंदगी का हरख-हुलास.

छोटे की बहू जब-तब बोल तोल मारती ही रहती थी, पर आज तो उसने मेरी जात-औकात बखान दी... मेरे जनम-जमारे को गाली दी, आज तो उसने मेरी कोख-कांख को उघाड़, मेरे अंगिया आंचल को चीर, लत्ते-लीतरे ही तो बखेर दिये उसने. और मैं मर ही तो गयी इसकी मारक मार से.... पर नहीं, मैं मरी नहीं, मरकर नया जनम लिया है और एक नयी जोत जाग गयी है मेरे मानस मंदिर में और मैं एक नया जीवन जीने को उतावली हो गयी हूं.

तो अब मैं जस्सो... जीरो जस्सो... सूनी-शून्य जस्सो, अपने नाम सिफर के पहले किसी अंक का सिरजन करूंगी... जीरो के पहले अंक धरकर उसे मोलवान... कीमती बनाऊंगी. अब मैं जीऊंगी अपना और अपने लिए जीवन. इसमें किसी की हिस्सेदारी नहीं. न बेटा-बेटी की और न नाती-पोते की. मान-मर्जाद की मेख न कुल-कानि की कुरेद, इसमें सब मेरा अपना मन भाता, रंग राता होगा. जो मुझे जचेगा वह मैं करूंगी, किसी के रोके न रुकूंगी. और अपनी तरंग में आप बहूंगी. जहां चाहूं जैसे रहूंगी, जहां मन ले जायेगा, वहीं जाऊंगी. मन ने कहा तो बढ़ जाऊंगी और जी चाहा तो रुक जाऊंगी. बीस कोस पे ताजमहल, वह नहीं देखा, उड़ने-कूद पर संगम स्नान, वह नहीं किया और रेत भर का रस्ता पर हरिद्वार-कासी नहीं देखा-जाना. अब मैं यात्रा-धरम सब करूंगी. पर संन्यासिन फिर नहीं बनने की. अपनी मुट्ठी भर माया से एक रत्ती-मासा सफेद-पीला तार न तोडूंगी अपने किसी सगे खातिर. जो है सब... वह मेरी देह-मजूरी इसमें दखल किसका?

माता देवकी को तो एक भाई कंस ने कल्पाया. मुझ जसोदा को तो मात-पूत और कांत-कंस सबने सताया. तो अब मैं इनकी क्या और कैसे. अब ये मेरे न मैं इनकी. अब तो दूबे सभी मेरे और मैं सबकी और खुद अपनी सगी-सुहाती. नसवार की डिबिया के ढक्कन में मढ़े शीशे में अपनी सूरत देख आज मैंने अपने को जाना उसे अपनी ममता-मोह दिया तो क्या गजब किया. मैं अभी 'पचास की पकी' नार हूं 'साठ की थकी' या 'सत्तर की सूली-गली बुढ़ियल' नहीं, जो अपने घर-घेरे में दुबककर बैठ जाऊं, अपने सगों की लांछत झेलूं, उठा-पटक सहूं और फिर खाट-खटिया में समा जाऊं. चिता चढ़ने के लिए. आगे यह सब नहीं चलने वाला. अब मैं जाग गयी हूं तो अपनी बहनों-बेटियों को भी जगाऊंगी. उन्हें बताऊंगी कि वे मेरी, मेरी मां की, गैल न पड़ें. अपना जीवन भी जीयें.

दूसरे दिन तड़के जागनेवालों ने देखा जस्सो मां. कांख में पोटली दबाये और सर पर बक्सा धरे अपने खेतों की तरफ जा रही है. सूरज-किरन चमकी तो घर के बेटे-पोतों को भी चेत हुआ तो दौड़े उधर ही. पहुंचे तो पाया वह खलीहान के बाजू में खड़ी झोंपड़ी में अपना सामान सहेज रही. सबने पूछा—

''घर छोड़ यहां क्या कर रही अम्मा?''

''हां, दादी यहां क्यों चली आयी?''

''अलग रहेगी-बसेगी यहां?'' उसने सुना और सहज-सधे बोल बोली, ''सांझ आरती बेला को आना बताऊंगी.'' इतना कह वह कोरे कलसे पर नारियल चढ़ाने लगी. एक दम चुप.

सांझ अब आकास में लाली फूट रही थी. आरती के झालर झनझना रहे थे. अपने-पराये बालक-स्याने सभी वहां पहुंचे. देखा, वह खलिहान के पास बने चबूतरे पर चढ़ी है और लड्डू भरी टोकरी उसके पास पड़ी है. उसने सबको आंखों में तोला और हलसा कर बोली :

''आओ... आओ... लो, लड्डू खाओ.'' बेटे-बहुओं ने सुना तो आंखें फटी की फटी रह गयीं. बालक-टाबर तो दौड़ ही पड़े.

''आज कौन पूजा-परब है दादी या फिर तेरा जनम दिन?'' उससे खूब हिला-मिला एक चंचल समझू पोता पूछ ही तो बैठा.

''हां, मेरा जनम दिन है.... आठारहवां जनम दिन... समझ ले, बस कि आज मेरा पुनर्जन्म है, दो कम पचास बरस बाद आज मैंने नया जनम लिया है अपनी रीत से जीने के लिए.'' उसने उसके आगे लड्डू बढ़ाते हुए कहा.

बेगानों ने सुना अचरच में पड़ गये. अपनों ने गुना तो कहा बुढ़िया बौरा गयी.

□

माधव नागदा

अब तक लगभग दो दर्जन कहानियां एवं लघुकथाएं प्रकाशित.
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : रा.उ.मा.वि., राजसमंद

साफ पानी की तलाश
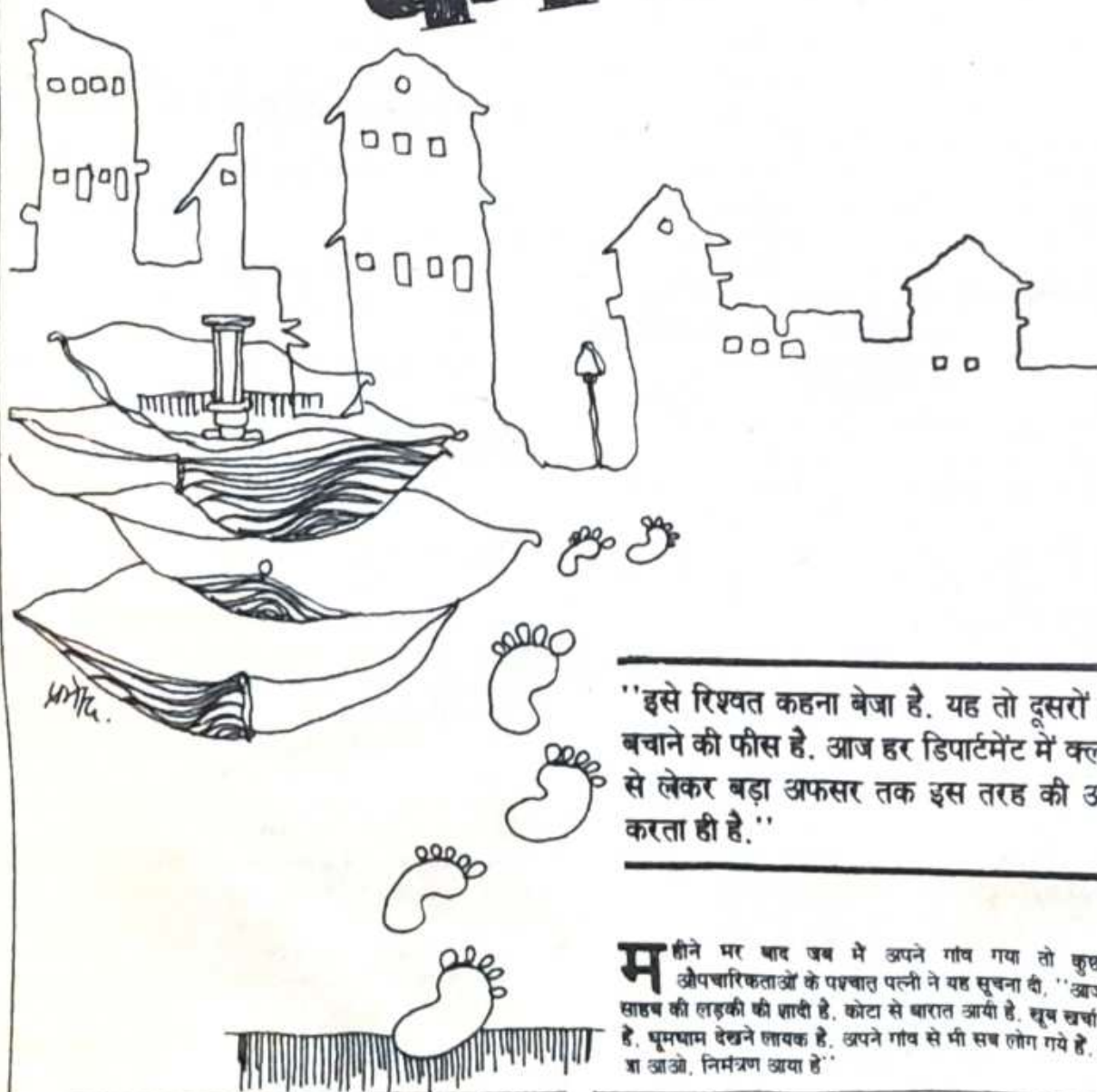
''इसे रिश्वत कहना बेजा है. यह तो दूसरों को बचाने की फीस है. आज हर डिपार्टमेंट में क्लर्क से लेकर बड़ा अफसर तक इस तरह की आय करता ही है.''

महीने भर बाद जब मैं अपने गांव गया तो कुछ खास औपचारिकताओं के पश्चात् पत्नी ने यह सूचना दी, ''आज चौहान साहब की लड़की की शादी है. कोटा से बारात आयी है. खूब खर्चा कर रहे हैं. धूमधाम देखने लायक है. अपने गांव से भी सब लोग गये हैं. आप भी आ आओ. निमंत्रण आया है''

चौहान साहब हमारे क्षेत्र की एक प्रसिद्ध हस्ती हैं. वे पिछले कई वर्षों से परिवहन निगम में एक बड़े ओहदे पर काम कर रहे हैं. इधर के कई बेरोजगार युवकों को नौकरी पर लगाया है. सबसे बड़ी बात उन्होंने इस नौकरी में खूब पैसा भी बनाया है. यह बात गौण है कि यह पैसा उन्होंने कैसे कमाया. लोग तरीके नहीं देखते, नतीजा देखते हैं.

उनका गांव हमारे यहां से एक मील के फासले पर है. मैं वहां पहुंचा तब तक दिन ढले लगभग एक घंटा हो चुका था. मैंने देखा कि उनका बंगला और उनका आसपास रोशनी से जगमगा रहा है. गांव में बिजली आने का एक लाभ यह भी है. रईस लोग अपनी रईसी का खुलकर प्रदर्शन कर सकते हैं.

बाराती स्वागत टैंट में बैठे हुए थे. कई ट्यूब लाइटों एवं नियोन बल्बों की रोशनी में सभी के चेहरे दमक रहे थे. इत्र की खुशबू वातावरण में अजीब मदहोशी घोल रही थी. जो सोफा पर विराजमान थे, वे समधी थे. अन्य बाराती कुर्सियों पर तनकर बैठे थे. यों तो विशेष तौर पर बनाये गये ऊंचे मंच पर स्थापित दूल्हे राजा का रीढ़ खंभ भी तना हुआ था किंतु बारातियों की अकड़ निराली थी. निराली इसलिए कि उनकी आंखों में कोई झिझक नहीं थी.

स्वागत भी अपने आप में विशिष्ट था. एक सज्जन ने माइक पर आकर संस्कृतनिष्ट शब्दों में बारातियों का अभिनंदन किया. फिर स्वयं का परिचय देने के बाद कि वे पेशे से प्रोफेसर, डिग्री से डाक्टर और शौक से साहित्यकार हैं एकदम कविता पर आ गये. इस अवसर पर जो सेहरा उन्होंने लिखा था उसकी एक-एक छपी प्रति समस्त बारातियों को बांटी गयी.

तत्पश्चात् कवि महोदय ने अपने मीठे गले से स्वागत गान आरंभ किया.

इस सारी चमक-दमक, तड़क-भड़क, भीड़-भाड़ और स्वागत गान की मधुर स्वर लहरी के मध्य मेरी नजर एकाएक उस पर पड़ गयी. यों तो वह भीड़ का ही एक हिस्सा था. भीड़ जो टैंट के भीतर सजी कुर्सियों पर सलीके से पसरी हुई थी. वो नहीं, बल्कि चारों ओर खड़ी तमाशाई भीड़. इसके बावजूद मुझे लगा कि वह भीड़ से अलग है. दुबला-पतला, लंबा-तड़ंगा, हल्की-हल्की मूंछें, ढीले-ढाले अधमैले सफेद वस्त्र और तितर-बितर बाल..

खास आदमियों के त्योहार में बिलकुल आम आदमी की तरह, पर जो चीज उसमें खास थी, वह थी, उसकी तेज-तर्रार पैनी आंखें और होंठों पर क्रूर व्यंग्य भरी मुस्कान. इर्द-गिर्द खड़े चापलूस और भव्यता से अभिभूत चेहरों से कहीं परे उसका चेहरा कठोर और निर्मम था. आंखें कहीं गढ़ी-गढ़ी सी जैसे इस सारी टीम-टाम के पीछे छिपी किसी रहस्यमय असलियत पर टिकी हों. मैं उसके पास खिसक आया.

स्वागत गान जारी था.

''बिक गया साला.'' उसने अपने निचले होंठ को वीभत्स तरीके से बायीं ओर फैलाया. उसकी आवाज जिसने भी सुनी उसे हथौड़े की चोट की तरह लगी. एक मुछंदर ने जो बहुत भागमभाग कर रहा था, उसे घूरा.

''मेवालाल, कोई ऐसी-वैसी बात मुंह से मत निकालना.'' शायद मुछंदर उसकी आदतों से वाक़िफ था. मेवालाल पर इस धमकी का कोई असर नहीं हुआ.

चौहान-साहब तेज रफ्तार से इधर-उधर आ-जा रहे थे. उन्होंने धवल सूट और सिर पर कीमती केसरिया साफा धारण कर रखा था. ऐसा लगता था जैसे गणतंत्र दिवस पर कोई कलक्टर ध्वजारोहण के लिए आया हो. उनकी व्यस्तता देखकर कोई भी अनजान व्यक्ति आसानी से अनुमान लगा सकता था कि बेटी का बाप यही है. जब वे काम के लिए किसी एक को आवाज लगाते तो दस दौड़े आते. दौड़कर आने वालों में मामूली कंडक्टर तो होते ही, वे ए.टी.आई. और टी.आई. भी होते जिनका नाम सुनकर बड़े-बड़े परिचालकों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है. इससे साफ जाहिर था कि चौहान साहब का अपने विभाग में कितना रौब और कितना व्यवहार है. व्यवहार नहीं होता तो स्टाफ का इतना बड़ा हिस्सा यहां क्योंकर आता!

लोग तो आ ही रहे थे. कोई कार में, कोई जीप में, कोई स्कूटर-मोटरसाइकिल पर तो कोई-कोई बसों में. चौहान साहब लपककर जाते और यथायोग्य सत्कार करते. यानी मोटी मछली होती तो उसे गले लगाते, छोटी से कसकर हाथ मिलाते, और छोटी के सिर्फ हाथ जोड़ देते. सबसे छोटी मछलियां! उनकी तरफ चौहान साहब नहीं देखते. उनके लिए तो पिताजी थे. चौहान साहब के पिताजी, जिन्हें यों तो आज साफ-सुथरा कोट और साफ-सुथरी धोती पहनायी गयी थी. साफा भी ठीक-ठाक था. लेकिन कंधे पर वही मैला अंगोछा झूल रहा था. छोटी मछलियों का स्वागत पिताजी ही कर रहे थे. किंतु इस स्वागत में कृत्रिमता नहीं थी. स्नेह की स्वाभाविकता थी. मेरा स्वागत पिताजी ने ही किया था.

स्वागत गान कुछ लंबा खिंच गया था. कोई-कोई बाराती वाह-वाह उगल रहे थे. कुछ का सर झूम रहा था जैसे उन्हें डाक्टर की कविता खूब पसंद आ रही हो. मैं वहां से बाहर निकल आया.

ठीक सामने चौहान साहब का बंगला था जिस पर बिजली की रंग-बिरंगी आकृतियां लपक-झपक कर रही थीं. गांववालों ने इतना प्रकाश एक साथ पहली बार देखा था और वे अलग-अलग झुंडों में साहब का मुक्त कंठ से प्रशस्ति गान कर रहे थे.

''इतरो खरच तो बड़ा-बड़ा रावला भी नी करे.'' एक सामंत युगीन बूढ़ा बोला. उसकी दाढ़ी के सफेद बाल छाती तक झूल रहे थे.

''पांच हजार रुपया तंबू और कुर्सियों का तय हुआ है. गद्दा कितरा मस्त है. बैठो तो आधा भीतर पोंच जाओ.''

''और यो बिजली को अडंगो कित्तो जोरदार है. इंका भी होगा हजार दो हजार तो.'' केसरिया साफेवाला व्यक्ति बोला जो नन्हें लट्टुओं की आंख-मिचौनी देख रहा था. उसे शेर और बकरी की लुकाछिपी खूब पसंद आ रही थी.

''भाई, भाग्यवाना के भूत कमावे. मोकलो पइसो है. पंद्रह हजार को तो विलायती दारू ही आयो है. साथ में जयपुर की रंडियां भी.''

''अच्छा रंडियां भी? जद तो चौहान साहब को ठाठ राजा-महाराजा सूं किणी तरे कम नी है.'' एक नया मेहमान बोला जो कुछ देर पहले ही आया था.

''जद? आजकल राजा-महाराजा भी एड़ा ठाठ नी राख सके. आज की रात तो मजो आ जायेगा. अंग्रेजी दारू अर जयपुर की रंडियां.'' इस रसीले आदमी ने जीभ से 'डक' की आवाज निकालकर बोतल खोलने का अभिनय किया.

''हां, हां नचाओ रंडियां और उड़ाओ दारू! इसी में तो तुम्हारे राजपाट गये हैं.'' मेवालाल यहां भी पहुंच गया था.

''मेवा, तुझे क्यूं-जोर पड़ रियो है. दारू, वाला की दारू पइसा वाला का पइसा. भैंस ब्यावे और पाड़ा की फटे.'' डोकरा बोला. उसकी बात सुनकर उपस्थित समुदाय में हंसी फूट पड़ी.

''तुम लोगों के दिमाग पर तो चांदी का ताला लगा हुआ है और उसकी चाबी ऐसे लोगों की जेब में पड़ी है.'' मेवा ने वाक्य का अंतिम हिस्सा चौहान साहब की ओर इशारा करके कहा जो किसी जरूरी कार्य के लिए नजदीक से गुजर रहे थे. उनके पैरों में वैसी ही तेजी थी जैसी कि अब से एक घंटा पूर्व थी. मेवा को सुनकर उनके पांव जरा ठिठके, फिर रुके और एक कार्यकर्ता को इशारे से नजदीक बुलया. वे उसके कान में कुछ फुसफुसाये और तुरंत अपनी रफ्तार पकड़ ली. कार्यकर्ता हमारे पास आकर खड़ा हो गया. हमारे इर्द-गिर्द खड़ी छोटी सी भीड़ चौहान साहब की दूर सरकती पीठ को श्रद्धा से तकती रही.

''देवता मनख है. इण एरिया में एड़ो आदमी आज दियो ले न ढूंढो तो भी नी मिले.'' उसी वृद्ध ने कहा.

''हां, कलियुगी देवता है. एम.पी., यू.पी. में तो गांव वाले डाकुओं को भी देवता ही मानते हैं.''

बूढ़े ने मेवा को गौर से देखा.

"फर्क यही है कि वे डाकू अमीरों को लूटकर गरीबों की परवरिश करते हैं. और आपके ये 'देवता मनख' जनता को लूटकर खुद अमीर बनते हैं, अमीरों की जेबें भरते हैं." मेवालाल का स्वर अस्वाभाविक रूप से तेज होता जा रहा था. लगता था कि उसके भीतर कोई आग है जो लावा बनकर बाहर निकलना चाहती है.

"तेरा तो मेवा, दिमाग खराब है. कंडक्टरी क्या छूटी, नीम पागल हो गया." एक अन्य व्यक्ति बोला जिसका ऊपर का होंठ थोड़ा कटा हुआ था

राजस्थान की शौर्यगाथा

हीरोल

महाराणा प्रताप के बाद उनका पुत्र अमरसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा तो उसे भी मुगलों का मुकाबला करना पड़ा.

जहांगीर ने मेवाड़ को अपने कब्जे में रखने के लिए नये आक्रमण की तैयारी की. इसकी सूचना मिलते ही अमरसिंह ने सेना का संगठन शुरू कर दिया किंतु सेना में इस बात का विवाद उठा कि हीरोल (सेना की अगुआई) का अधिकारी कौन होगा? इस बात को लेकर चूंडावत और शक्तावत सरदारों में तनाव बढ़ने लगा क्योंकि वे दोनों अपनी श्रेष्ठता का दावा करते थे. दोनों सरदारों में इस तनाव को देखकर महाराणा अमरसिंह ने यह निर्णय किया कि उंटाला दुर्ग पर पहुंचकर जो उस पर पहले अधिकार कर लेगा वही हीरोल का अधिकारी होगा. दोनों सरदारों में उंटाला विजय करने की होड़ लगी. उस समय उंटाला मुगल के हाथ में था. अतः पहले मुगल को पराजित करना था. दोनों सरदारों ने उंटाला के लिए दलबल सहित चढ़ाई आरंभ कर दी. किंतु चूंडावत मार्ग भूल गये तथा वे उंटाला देर से पहुंचे. जबकि शक्तावत पहले पहुंचे और दुर्ग पर आक्रमण कर दिया.

इसी बीच चूंडावत भी पहुंच गया. उन्हें दुर्ग की स्थिति का ज्ञान था अतः वे अपने साथ लंबी सीढ़ी लाये थे. उस सीढ़ी की सहायता से वे दुर्ग पर चढ़ने लगे. उधर शक्तावत सरदार हाथ पर सवार था, दुर्ग के प्रवेशद्वार को तोड़ने का प्रयत्न करने लगा. हाथी को इस हेतु आगे बढ़ाया किंतु किवाड़ों पर लगे नुकीले शूलों के आघात से हाथी चिंघाड़ मारकर पीछे हट गया. तब शक्तावत सरदार द्वार पर लौह-शूल पर पीठ लगाकर खड़ा हो गया ताकि हाथी शूल का भय न रहने से भीषण आघात कर सके. महावत ने हाथी को आगे बढ़ाया और भीषण प्रहार से दरवाजा टूट गया. किंतु शक्तावत सरदार का शरीर शूलों से छलनी हो गया.

इस समय चूंडावत सरदार अपने साथियों सहित शत्रुओं का मुकाबला करते हुए सीढ़ी द्वारा दुर्ग पर चढ़ रहा था. इसी बीच उसने हाथी की चिंघाड़ सुनी, उसने सोचा दुर्ग के किवाड़ टूट चुके हैं...और शक्तावत दुर्ग में प्रवेश करने ही वाले हैं. अतः उसने अपने साथियों को आज्ञा दी कि वे उसका सिर काट कर दुर्ग में फेंक दे ताकि शक्तावत के प्रवेश से पूर्व वहां पहुंच जाये. सैनिकों ने ऐसा ही किया. दुर्ग में चूंडावत का सिर पहुंचते ही चूंडावतों ने विजय का जय घोष कर दिया. इसी सफलता के कारण हीरोल का अधिकार चूंडावतों को प्राप्त हुआ. □

प्रस्तुति : बीथिका

और उस कटे हिस्से में से एक दांत बाहर को सर निकाल रहा था.

"अगर मेरे पास साहबों की जेब भरने लायक रिश्वत होती तो नौकरी नहीं छूटती. और नौकरी नहीं छूटती तो मुझमें यह हिम्मत कहां से आती कि इस चमक-दमक के पीछे छिपे अंधेरे से आपकी मुलाकात करवाऊं."

"बड़ा आया मुलाकात वाला! पता नहीं लगेगा साले का! तू जानता नहीं है अभी तक चौहान साहब को. अच्छे-अच्छों के होश ठिकाने लगा दिये हैं!" इतनी देर से चुप कार्यकर्ता अब बोला. उसने गर्व से उन सफेदपोश नवयुवक बारातियों की ओर देखा जो स्वागत गान से उकताकर बाहर आ गये थे.

"चलिये साहब, स्वागत गान समाप्त हो चुका है. अब कुछ खान-पीने का दौर शुरू हो जाये." वह बारातियों को पुन : स्वागत टैंट में ले गया.

मेवा वहां से हट गया, और मैं भी किसी अदृश्य धागे से बंधा हुआ उसके पीछे.

आगे कुछ युवक खड़े थे. इनमें कुछ चुस्त, सजे-संवरे और खुशबूदार थे तथा कुछ सुस्त और थके-थके से. जाहिर था कि पहली प्रकार के युवक बाराती एवं दूसरी तरह के मंडपी थे. सब पढ़े-लिखे प्रतीत हो रहे थे.

"चौहान साहब भी क्या दरियादिल आदमी हैं, गजब के. पचास तोला तो सोना ही दे रहे हैं." एक मंडपवाला बोला. उसने बारातियों पर एक नजर डाली लेकिन उसे यह जानकर थोड़ा अफसोस हुआ कि चौहान साहब की दरियादिली वाली बात ने उन्हें कोई खास प्रभावित नहीं किया है.

"हम उनके डिपो में ही काम करते हैं. तीन दिन से यहीं हैं, व्यवस्था में. किसी भी चीज की जरूरत हो तो साहब फट से सौ का नोट पकड़ा देंगे. यह भी पूछने की परवाह नहीं करते कि कितनी चाहिए और कितने लोगों के लिए."

"फिर तो आप लोगों की यहां भी चांदी है." बाराती ठहाका मारकर हंस पड़े. डिपोवालों ने उसे घूरकर देखा. उसके होंठ बायीं ओर विशिष्ट अंदाज में फैले हुए थे और आंखों में तिलमिला देने वाली उपेक्षा थी. सौ वाट के लट्टू का प्रकाश उसके चेहरे को उजागर कर रहा था. यह मेवा था.

"सुना है चौहान साहब ने खूब पैसा झाड़ा है." एक बाराती ने अपनी अधमुंदी आंखों से देखते हुए पूछा.

"अजी साहब पूछो मत, हाथों हाथ लेते हैं और एट द स्पॉट मामला रफा-दफा कर देते हैं. किसी को ज्यादा परेशान नहीं करते. अफसर हो तो ऐसा...!"

"रिश्वतखोर!" मेवा ने रिक्त स्थान की पूर्ती की.

मंडपी ने, जिसके चेहरे पर घनी काली दाढ़ी और बड़ी-बड़ी मूंछें थीं, मेवा के कमेंट पर आंखों ही आंखों में रोष प्रकट किया.

"इसे रिश्वत कहना बेजा है. यह तो दूसरों को बचाने की फीस है. आज हर डिपार्टमेंट में क्लर्क से लेकर बड़ा से बड़ा अफसर इस तरह की आय करता ही है."

"इसीलिए यह पुनीत कार्य है. सरकार को इसका राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए. जनता का बड़ा भला होगा." मेवा ने चोट की.

"अगर इसे रिश्वत भी कहें तो इसे लेने में बुराई क्या है. इससे बेचारे सामने वाले का भला ही होता है. जनता का इसमें क्या बिगाड़ है!" एक नावागंतुक बोला. मैंने देखा कि भीड़ धीरे-धीरे बढ़ रही है.

"नहीं, नहीं. जनता पर तो बहुत बड़ा उपकार है." मेवा ने विचित्र आवाज बनाकर कहा. फिर एकदम से विषयांतर कर दिया, "क्या आपने भोजन कर लिया है?"

"जी हां." नवागंतुक ने कृतज्ञतापूर्ण जवाब दिया!

"तभी, तभी आपका दिमाग कुंद हो गया है. रिश्वत की कमाई का खाकर आप रिश्वत को सही ठहरा रहे हैं." मेवा एकदम पैना हो गया. मुझे रोमांच हो आया. एक लंबे बालों वाला बाराती मुस्कराया. शायद उसे भी मेवा की बातें पसंद आ रही थीं. वही कार्यकर्ता जिसके कान में थोड़ी देर

पहले चौहान साहब ने कुछ मंत्र फूंका था,पुन: आ गया था. उसके पैरों में हल्की लड़खड़ाहट थी और श्वास में विलायती शराब की गंध.

मेवा जारी था. ''ये अपनी बेटी की शादी में डेढ़ लाख खर्च कर रहे हैं तो कमाया कितना होगा? निश्चित रूप से दुगुना-तिगुना.एक भ्रष्ट अफसर पच्चीस साल की नौकरी में तीन बसें पचा जाता है. इनमें से एक बस की कीमत आपके सामने है.'' उसने चारों ओर बिखरे नजारों पर अपनी दृष्टि फेंकी. एक मकान से पांच नर्तकियां निकलकर मदभरी किंतु धीमी चाल से स्वागत कक्ष की ओर प्रस्थान कर रही थीं. नीम के पेड़ तले हाथी बंधा था जिस पर दूल्हे द्वारा तोरणबंदन किया जाना था. सुना था कि पांच मिनट के तोरणबंदन के लिए हाथी के एक हजार रुपये तय हुए थे. उधर रोड़वेज की एक जीप रोड़वेज का डीजल फूंकने के लिए चौहान साहब की सेवा में तीन दिन से तत्पर खड़ी थी.

''बसें पचा जाता है तो इसमें बुराई क्या है. आखिर देश का पैसा देश में ही तो है. कोई विदेशों में थोड़े ही जा रहा है.'' नवागंतुक ने पुन: दलील दी. उसका कुतर्क सुनकर मेरे भीतर कुछ उबला. लेकिन उसके पहले ही मेवा का तेज स्वर सुनायी दिया.

''अगर 'देश का पैसा देश में' की बात करते हैं तो बहुत बढ़िया है. हम अभी चौहान साहब का सब कुछ लूटपाट ले जाते हैं. आप में से किसी को एतराज नहीं होना चाहिए.''

कुतर्की नवागंतुक ढीला पड़ गया. उसकी उंगलियां जो कुछ देर पहले मूंछों के बट मार रही थीं, अब वहां से हट चुकी थीं. मेरा दायां हाथ अनायास ही मेवा के कंधे पर पहुंच गया. लंबे बालों वाले बाराती ने मेवा से कसकर हाथ मिलाया. डिपो वालों ने उसे आंखें फाड़कर देखा और कार्य-कर्त्ता ने भद्दी सी गाली निकाली.

''चलिये साहबान, नाच आरंभ हो चुका है.'' कार्यकर्त्ता के इस अनुरोध के साथ ही सब रवाना हो गये. मैं जाते-जाते एक बार मेवा की तरफ पलटा. वह हम सबको वहीं खड़ा-खड़ा हिकारत भरी नजरों से देख रहा था. मेरी नजरें उससे टकरायीं और उसके होंठों पर हल्की मुस्कराहट भी थी लेकिन वह मुस्कराहट एक क्रूर गाली का काम दे रही थी.

पांच में से तीन मोटे और थुल-थुल शरीर की थीं. इन मोटी औरतों में एक बूढ़ी थी. वे जाम ढालकर नाचती हुई किसी रईस बाराती की ओर बढ़ती. जाम उसके होंठों से लगाती और रईस के हाथों में लहरा रहे कागज के टुकड़े को छीनकर बूढ़ी को थमा देती. मुझे लगा कि सामने एक रुपहला पर्दा है और जो कुछ भी घट रहा है, वह यथार्थ न होकर फिल्मी है.मगर सब वास्तविक था. स्वागत टैंट का 'सीन' बदला हुआ था. फर्नीचर के बजाय गद्दी-मसनद लग गये थे. किंतु चारों ओर खड़ी तमाशाई भीड़ वही थी. लोग वाह-वाह कर रहे थे. वाह-वाह...चौहान साहब के आयोजन की, नाचने वालियों की खूबसूरती की, रईस बारातियों द्वारा नोट लुटाने की.

मैंने कहीं पढ़ा था कि गुलाम ही अपनी गुलामी का सबसे बड़ा हिमायती होता है. यहां का दृश्य देखकर मैंने इस कथन का सामान्यीकरण किया कि शोषित ही अपने शोषण का सबसे बड़ा समर्थक होता है.

मेरे दिमाग पर मेवालाल छा रहा था. चौहान साहब के रुतबे का जो जादू अन्य लोगों की तरह मुझ पर भी असर कर गया था, धीरे-धीरे उतरने लगा और मेरे भीतर चीजों को परखने का बिल्कुल नया अंदाज पनपने लगा. मुझे चिंतन का बहुत तीखा मौजूं मिल गया था जो तथाकथित देवता लोगों की सिंदूर मालीपन्ना छीलकर भीतर के बेडौल पत्थर से साक्षात्कार करवाने में सक्षम था. मेवालाल यह साक्षात्कार कर चुका था.

कितनी भयंकर बात है कि ये लोग बसें की बसें डकार जाते हैं लेकिन यात्रियों की सुविधाओं का रत्तीभर खयाल नहीं करते. जानवरों की तरह ठुंसे-ठुंसे सफर करने वाले यात्रियों के लिए हर वर्ष इंतजार करता है बस भाड़ा. कंडक्टर से लेकर बड़े-बड़े अफसरों के पेट में समाये किराये, डीजल, टायर और कल-पुर्जों की मार भुगतनी पड़ी है, वाह-वाह करने वाले इन निरीह इनसानों को. इन्हीं की जेब से निकला पैसा इन्हीं पर रौब गालिब करने के काम आता है. कितना दु:खदायी दुष्चक्र है. किंतु आज इस दुष्चक्र की बाबत सोचने वाला मूर्ख समझा जाता है और दूसरों की जेब पर हमला करने वाला देवता मनख.

यहां का सारा माहौल मुझे अब बदरंग लगने लगा. मैं वहां से खिसका. घुंघरुओं की छनक, तबले की थाप, शराब की गंध और रोशनी की लपक-झपक, सब पीछे छूटता जा रहा था. मेरे सम्मुख बिछी थी साफ-सुथरी, ठंडी-ठंडी चांदनी.

पगडंडी के किनारे, खेत की बाढ़ के नजदीक से आती किसी की कराहट ने मुझे चौंका दिया. जाकर देखा. मेवालाल था. मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ. यह तो होना ही था, इसलिए मैंने उससे पूछा भी नहीं कि यह कैसे हुआ.

''तुम मुझे थोड़ा पानी पिला सकते हो?'' उसने अटकते-अटकते अपना अनुरोध उगला.

''जरूर.'' मैंने उसे सहारा देकर बैठाया. चोटें ज्यादा थीं. सर से काफी खून बह चुका था.

''सुनो. उधर से मत लाना. वहां के तमाम कुओं का पानी जहरीला है मेरी प्यास भड़केगी, नजर धुंधला जायेगी.''

''मुझे पता है. चलो मेरे सहारे. आगे बढ़ते हैं. कोई तो कुआं मिलेगा जिसका पानी साफ-सुथरा हो.''

''इस देश में, औं साफ-सुथरा कुआं?'' वह हंसा. एक विद्रूप हंसी.

''बस! इतनी जल्दी हिम्मत छोड़ने लगे!'' मैंने उसके बालों में हाथ फिराया. कोई चिपचिपी चीज मेरी उंगलियों पर फैल गयी. मेरी बात सुनकर उसका बदन झनझनाया. उसने खुद को संभाला और दृढ़ स्वर में बोला, ''चलो मेरे अनजान दोस्त. चलो. चलते हैं. नहीं मिलेगा तो हम खोदेंगे. और ऐसे लोग जुटायेंगे जो हमारे खोदे कुएं का साफ पानी पीकर अपनी नेत्र-ज्योति सिक्स बाइ सिक्स रख सकें.''

''चलो.''

उसने उठने की असफल चेष्टा की और एक कराहट के साथ जमींलोट हो गया. मैंने उसे अपने कंधे पर डाला और पथरीली राह पर चल पड़ा. कोलाहल और पीछे छूटता गया. हम दोनों साफ पानी की तलाश में बढ़ते रहे. □

चलते-चलते

तबादला हो जाने पर रमेश जी जब नए शहर में पहुंचे. और घर का सामान सजाने-संवारने में इतना रमे कि उन्हें अपने प्रिय कुत्ते का ख्याल ही नहीं रहा. नयी जगह, कुत्ता भी तफरीह में घूमता-घूमता कुछ दूर चला गया और रास्ता भटक गया. ख्याल आने पर रमेश जी ने कुत्ता ढूंढना शुरू किया लेकिन कुत्ता नहीं मिला. अपने प्रिय कुत्ते के गुम होने का उन्हें बहुत गम हुआ. उन्होंने एक-दो दिन बाद अखबारों में भी इश्तहार छपवाये और कुत्ता पहुंचाने वाले को ईनाम देने की भी घोषणा की, मगर इस पर भी उन्हें अपना कुत्ता नहीं मिला. परेशान हो, अंतिम प्रयास के रूप में उन्होंने म्युनैसपिलटी के 'कुत्ता घर' जाने का फैसला किया जहां शहर भर के आवारा कुत्तों को पकड़-पकड़ कर बंद किया जाता था. 'कुत्ता घर' पहुंचने पर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा. गंदगी में लिपटे होने के बावजूद उन्होंने उसे पहचान लिया. और वहां मौजूद अधिकारी से कहा, 'यह मेरा कुत्ता है, इसे मेरे साथ जाने दें.' अधिकारी ने उन्हें एक बार शंका की नजरों से देखा और फिर कुत्ते को वहां बुलवाया. कुत्ते ने आते ही अपने मालिक की टांगों के बीच उछल-कूद शुरू कर दी. अधिकारी ने अपनी इस हरकत का स्पष्टीकरण देते हुए कहा, ''दरअसल, साहब हम लोगों की बातों का यकीन नहीं करते. जब तक खुद कुत्ता ही अपने मालिक की शिनाख्त न कर ले....'' □

धारा के विरुद्ध

राजेंद्र राव

मृगतृष्णा

प्रेमचंद से लेकर आज की युवा पीढ़ी तक हिंदी कहानी का प्रमुख स्वर किसी भी प्रकार के शोषण के विरोध का रहा है. जमींदार, पूंजीपति, मिलमालिक, नेता, पुलिस और माफिया सरगनाओं के मखौटे उतारकर उनके असली चेहरे कथा साहित्य में दिखाये जाते रहे हैं. कहने की जरूरत नहीं कि शोषक के इस विरोध और भर्त्सना के स्वर को पाठकों ने समर्थन दिया है और यह एक परंपरा का रूप धारण कर चुकी है. नये और युवा लेखकों के शोषण–उत्पीड़न विरोधी तेवर देखते ही बनते हैं. हालांकि संपर्क और प्रतिष्ठानों की छत्रछाया में सुख भोग रहे वरिष्ठ लेखक भी इस रंग में, खासे आक्रामक दिखाई पड़ते हैं लेकिन मसल है कि नया मुल्ला ज्यादा प्याज खाता है.

दूसरी ओर हिंदी कहानी लेखकों की एक पूरी जमात कुछ प्रकाशकों के शोषण की शिकार हो रही है लेकिन किसी ने भी इनका विरोध करने का साहस प्रदर्शित नहीं किया है. दिल्ली और आसपास के इलाकों में कुकुरमुत्तों की तरह उग आये बहुत से प्रकाशन संस्थान नये से नये और अर्वाचीन कथाकारों का कथा संकलन छापने को तैयार रहते हैं बशर्ते वह कागज, छपाई और बाईंडिंग का खर्च उठाने को तैयार हो. अब कोई पूछे इनसे कि इसके अलावा प्रकाशन में खर्च ही कौन–सा है. लेकिन कौन पूछ सकता है. जिसने रुपया निकाल कर के दिया उसकी किताब छप जाती है. और क्यों न छपे! बिल्कुल नये लेखकों को ज्यादा देना पड़ता है जबकि बीच के दर्जे के लेखकों से बाद में लौटाने का सम्मानजनक बहाना बनाकर दो से पांच हजार तक की राशि वसूल की जाती है. बाद में सौ पचास किताबें देकर हिसाब साफ कर दिया जाता है.

कुछ ऐसे नाम हैं जो कथा पत्रिकाओं में बराबर दिखाई पड़ते हैं और पाठक इनको इनकी कहानियों के माध्यम से पहचानने लगते हैं. जब ये लोग कथा संग्रह की पांडुलिपि लेकर पहुंचते हैं तो इनसे पैसा तो नहीं ऐंठा जाता मगर रायल्टी के नाम पर विशुद्ध आश्वासनों के अलावा कुछ नहीं. हजारों बार तकाजा करने पर हजार रुपये भी किसी को अगर मिल जायें तो वह अपने आप को बहुत सौभाग्यशाली समझता है. यह नहीं कि सभी प्रकाशक ऐसा करते हों मगर लेखकों की लूटखसोट का बाजार गर्म है.

सवाल उठता है कि ऐसा क्यों होता है और चे ग्वावारा या पाब्लो नेरुदा का नाम लेकर जीने वाले क्रांतिदूत इस जुल्म को चुपचाप क्यों बर्दाश्त करते हैं. बहुत होगा तो यही कि किताब नहीं छपेगी या देर से छपेगी, जब कोई अच्छा प्रकाशक तैयार हो जायेगा. महज एक किताब छपवाने के लिये लेखकीय नैतिकता की ऐसी निर्मम बलि चढ़ाना कहां तक जायज है?

विभूति नारायण राय

यह सब एक व्यवसायिक साजिश के तहत होता है. प्रकाशकों ने बार-बार दोहरा कर यह धारणा लेखकों के गले उतार दी है कि उपन्यास तो बिकते हैं मगर कहानी–संग्रह नहीं बिकते. इसलिये इन्हें छापना घाटे का सौदा है. इस घाटे को पूरा या आंशिक रूप से उठाने के लिये लेखक को मजबूर किया जाता है. असल तो कथा संकलन भी उसी तरह कमीशन और घूस खिला कर बेचे जाते हैं जैसे अन्य विधाओं की पुस्तकें–सरकारी खरीद में, दूसरे अगर यह घाटे का सौदा है तो करते क्यों हो भाई? और जब पैसा देकर ही किताब छपवानी है तो लेखक स्वयं ही क्यों न प्रकाशित करे!

ऐसे प्रकाशकों के शिकंजे से मुक्त होना आसान नहीं है क्योंकि लेखक राजीखुशी उनके जाल में फंसता है. अगर किताबें छपाने का मोह किसी तरह दूर हो जाए तो दर्जनों लेखकों की गाढ़ी कमाई ठगों और पिंडारियों की जेब में जाने के बजाए उनके घर-परिवार की बेहतरी के लिये खर्च होने लगे. इस तरह गलत समझौते करके किताब छपाने मात्र से ही लेखकों का भ्रष्टाचरण नहीं रुकता. प्रकाशन के बाद उसकी चर्चा और प्रशंसात्मक समीक्षा की व्यवस्था में जुटना पड़ता है और आजकल की घनघोर महंगाई में यह भी खासा खर्चीला शगल है. खैर, इनके

शैलेश मटियानी

बारे में फिर कभी.

(लगभग) नयी बोतल, नयी शराब

जबसे से. रा. यात्री ने 'वर्तमान साहित्य' का संपादन संभाला है यह आकर्षक और कथाविधा को लगभग समर्पित पत्रिका हो गयी है. अच्छे ऑफसेट प्रेस से छपकर यह नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है. गाजियाबाद के पुलिस अधीक्षक विभूति-नारायण राय इसके संपादन मंडल में हैं. रूपांतरण के मोड़ पर कहानी प्रतियोगिता वाले टोटके ने बड़ा काम किया है. पत्रिका का कहानी पुरस्कार अंक सहज ही ध्यान

आकर्षित करता है क्योंकि न सिर्फ कहानियां अच्छी हैं बल्कि छपाई में परंपरागत टाइप को हटाकर हस्तलिपि शैली का अभिनव प्रयोग किया गया है. प्रथम पुरस्कार तारा पांचाल की कहानी 'खाली लौटते हुए' को तथा द्वितीय पुरस्कार ज्ञान प्रकाश विवेक की 'एक खाली दिन' को दिया गया है. दोनों कहानियां मार्मिक और अत्यधिक करुणा का स्राव कराने वाली हैं. लेकिन इससे क्या, कहानी प्रतियोगिता में तो यही नुस्खा कारगर साबित होता है. कहानियों के साथ ही लेखकों के थोड़े कम सुंदर और लेखिकाओं के सुंदर चित्र भी छापे गये हैं. इससे कहानियां पढ़ने के प्रति पाठकों का उत्साह निश्चित रूप से बढ़ेगा. पुरस्कार अंक के बाद व.सा. में धारावाहिक रूप से प्रकाशित लेखमाला 'कहानी की तलाश' पर कुछ शोरोगुल हुआ. 'चौथी दुनिया' में शैलेश मटियानी ने जिरह स्तंभ में लेखमाला के लेखक सुधीश पचौरी की खूब खबर ली. खासतौर से इस दुस्साहस के लिए कि उन्होंने गुलशन नंदा को प्रेमचंद से कहीं ज्यादा बड़े जनाधार वाला लेखक घोषित कर दिया. इस पर गरमा-गरमी बढ़नी चाहिए थी मगर पाठकों ने सब कुछ निरपेक्षभाव से लिया. कोई प्रतिक्रिया नहीं. मानो कहना चाहते हों कि छोड़ो बहस, एकाध अच्छी कहानी लिखकर बताओ.

बीच के लोग

हिंदी के कुछ अच्छे ख्यातिप्राप्त प्रकाशक अपने लेखकों के सम्मान के प्रति सजग रहते हैं. पांडुलिपि स्वीकार करके लिखित अनुबंध करते हैं और रायल्टी का चेक (बिना मांगे) प्रतिवर्ष समय से भेज देते हैं. रायल्टी की दर लेखक की प्रतिष्ठा के अनुरूप होती है, दस प्रतिशत से लेकर 25-30 प्रतिशत तक. लेखक की प्रतिष्ठा से तात्पर्य उसकी सामाजिक स्थिति से है कि वह सत्तासीन व्यक्तियों और सेठ साहूकारों पर कैसा प्रभाव रखता है. विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम में जिनकी किताबें लग सकती हों ऐसे लेखकों के दर्शन को भी प्रकाशक तरसते हैं. विभिन्न अकादमियों और अनुदान देने वाली संस्था के संचालन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिनका हाथ होता है उन्हें साहित्य आकाश का सूर्य मानने में किसी को भी हिचकिचाहट नहीं होती. लेखन की गुणवत्ता और पाठकों के बीच लोकप्रियता इनके लिये कोई महत्वपूर्ण मानदंड नहीं हैं. इसके बावजूद कभी–कभार ये अच्छे प्रकाशक नये लेखकों की पांडुलिपियां भी स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन सीधे नहीं, अपने सलाहकारों के माध्यम से. ये सलाहकार कई किस्म के हैं मगर बड़े प्रकाशन संस्थानों से जुड़ कर इनकी भूमिका साहित्यकारों के भाग्यविधाता की बनती गयी है जिसका भरपूर फायदा ये नये लेखकों का अनेक प्रकार से उठा रहे हैं. इन बीच के लोगों में कुछ रसिक हृदय भी हैं जिनकी युवा लेखिकाओं पर विशेष कृपा हुआ करती है.

हिम्मते मरदां मददे खुदा

विज्ञापनों के बूते पर कथासाहित्य की नियमित पत्रिका प्रकाशित करना आसान हो सकता है परन्तु उसे बीस

वर्ष तक निकालते रहना बहुत बड़ी बात है. वाराणसी से प्रकाशित होने वाली कहानीकार पत्रिका का 100वां अंक हमारे सामने है जो संपादक, प्रकाशक कमल गुप्त की लगन, सूझबूझ और कर्मठता का प्रमाण है. उन्होंने सितंबर 1967 से इस द्वैमासिक का प्रकाशन आरंभ किया था. शतांक वस्तुतः सिंहावलोकन अंक है. इसमें पुराने अंकों से चुनी हुई सामग्री दी गयी है. लगभग बीस कहानियां हैं जिनके लेखक जानेमाने कथाकार हैं. हां एक नाम पर दृष्टि अटक गयी—पुष्पा भारवि. कुछ अन्य अंक उलट–पलट कर देखे तो पता चला कि आप पत्रिका की सह–संपादक हैं. पहले इनका नाम पुष्पा अवस्थी था. अंक 99 में सूचना दी गयी है अब इनकी रचनाएं पुष्पा भार्गव के नाम से छपेंगी. जितने अंक हमने देखे उनमें पुष्पा अवस्थी. भार्गव की रचनाएं एक स्थायी स्तंभ—'एक समसामयिक कहानी: कविता' के अंतर्गत छपी हैं. यह भी एक नया प्रयोग ही माना जायेगा कि सहसंपादक की एक कहानी—एक कविता प्रत्येक अंक में, स्थायी स्तंभ के रूप में हो. पुष्पा जी की कहानीकार (अंक 95) में प्रकाशित कहानी 'अपरिभाषित' से एक उद्धरण साभार प्रस्तुत है—''अतीत की मधुर स्मृतियों में रस लेती शालू का ध्यान अपनी तरफ मोड़ते हुए राहुल पूछ बैठा, 'शालू, तुम्हारी हथेलियां बहुत कोमल हैं. मेरी हथेलियां तुम्हें कैसी लगती हैं?'—'वैसी ही कोमल जैसे तुमको मेरा स्पर्श कोमल और मीठा लगता है.' शालू ने प्रेमरस निचोड़कर कहा.''

वे मतवाले

आज की बुझी-बुझी-सी तेवरविहीन हिंदी पत्रिकाएं देखकर नहीं लगता कि आज से 60-65 साल पहले 'मतवाला' जैसी तेजतर्रार–निर्भीक पत्रिका निकलती थी. वह भी ब्रिटिशराज में. मध्यप्रदेश साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित होने वाली 'साक्षात्कार' ने 'मतवाला अंक' प्रस्तुत करके मार्के का काम किया है (नहीं तो सरकारी पत्रिकाओं में भरती की रचनाएं ही हुआ करती हैं). इस अंक में मतवाला की जीवंत झांकियां हैं. लेख, स्तंभ, टिप्पणियां और यहां तक कि मास्टहेड और प्रतिनिधि विज्ञापन भी पुराने टाइप में ही छापे गये हैं. यह निस्संदेह एक साहित्यिक पत्र था. आइये अपने पूर्वजों की जिंदादिली का एक नमूना देखें—मतवाला में एक कालम होता था, 'चाबुक'. उसे कोई श्रीमान गरगज सिंहवर्मा साहित्य शार्दूल लिखते थे. कुछ इस तरह—रघुपति सहाय (फिराक गोरखपुरी)—(पुलिंग) आप हजारों में एक बी.ए. हैं, खूब नौजवान हैं, आंखें खुलती ही नहीं, पूरा छायावाद. शीयों (एस. एच. ई.), से अधिक हीयों (एच. ई.) को इंपार्टेंस देने वाली उर्दू शायरी के मास्टर. एक शब्द में आप एक नमकीन शेर हैं.

सुमित्रानंदन पंत—(स्त्रीलिंग) यद्यपि आपका रंग चाकलेटी नहीं है फिर भी, हजारों चाकलेट आपका मुंह ताका करें. कंचन–छरी सी काया पाया है. 'कपि' कलर के काकुल पाये हैं. मुग्धा की-सी मधु मुस्कान पायी है. आप अपनी कविताओं में लिंगों को तोड़ने-मरोड़ने के लिए मशहूर हैं. साहित्यिक पकी दाढ़ियां आपको छोकरा समझती हैं. और अपने राम 'छोकरी'. □

राजस्थानी के सुपरिचित रचनाकार.
हिंदी तथा अन्य भाषाओं में रचनाएं अनूदित.
संप्रति : प्रधानाध्यापक
संपर्क : नरसिंहपुरा, मांझुवास,
जिला : गंगानगर (राज.)

मुरलीधर शर्मा 'विमल'

मनुष्य जन्म
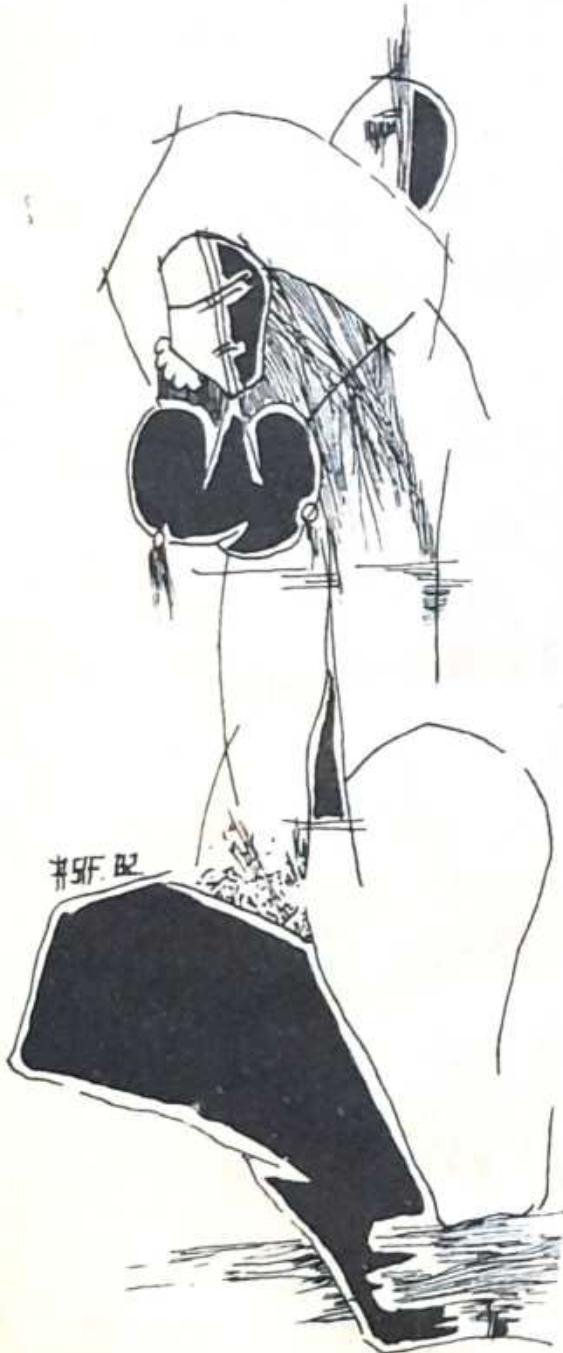
''मूर्ति को पत्थर समझने वाला कभी भी भगवान का भक्त नहीं हो सकता. इसी तरह पत्नी को मात्र वासना का साधन समझने वाला उसके दूसरे रूपों को महसूस नहीं कर सकता.''

''आपके यहां आने की सूचना पत्र से मिली, उसी दिन से ही ये मन ही मन बहुत खुश हो रहे हैं. कई बार कहा, हम कॉलेज में साथ पढ़े, बी.एड. भी साथ ही किया और भाग्य से चार वर्ष पहले परबतसर में दो साल तक साथ-साथ मास्टरी भी की.''

''तुम केवल बातें ही बघारती रहोगी या कुछ चाय-पानी भी पिलाओगी?''

''चाय तो तैयार ही समझिये.'' कहती हुई शारदा उठकर रसोई घर की ओर चली गयी.

''क्यों, भाभी पसंद आयी?''

''हां...आं...अच्छी है, पर उमर में आप से कुछ बड़ी लगीं.''

''ज्यादा बड़ी नहीं, दो-एक वर्ष बड़ी है. शादी के समय तुम नहीं आये यह मुझे बहुत खटका.''

''मुझे भी बहुत अफसोस रहा इस बात का, पर क्या करता! टाईफाइड ने तुम्हारी भाभी का पीछा ही नहीं छोड़ा. तीन बार रिलेप्स हो गया.''

शारदा और एक अन्य ने चाय-नाश्ता लाकर टेबल पर रख दिया.

''हां, अब जल्दी से हाथ चलाइये, मेरे जाने का समय हो रहा है.'' एक पकौड़ी मुंह में रखते हुए शारदा ने फिर कहा, ''आप इसका परिचय भी तो दे दीजिए.''

''अरे हां, भूल ही गया. यह है शशि, तुम्हारी भाभी की धर्म-बहन.''

श्याम और शशि ने एक दूसरे को नमस्कार किया. चुस्की लेती शारदा कहने लगी, ''हमारी गृहस्थी की गाड़ी तो इसी के बल पर चल रही है. नौकर-चाकर किसी को निहाल नहीं करते. आज मैंने नौकर को तीन बजे आने को कहा था. पौने पांच बजने को है पर उसका कहीं अता-पता नहीं...आप कुछ जल्दी कीजिये, मुझे पांच बजे तक पहुंचना है.''

''पांच-दस मिनट में क्या फर्क पड़ता है, मैं स्कूटर से पहुंचा आऊंगा.''

''यहां से अस्पताल कितना दूर है?'' श्याम ने पूछा.

''ज्यादा दूर नहीं, पैदल जायें तो पंद्रह मिनट का रास्ता है.'' सिगरेट सुलगाते हुए राजू ने बात आगे बढ़ायी, ''मैं तुम्हारी भाभी को छोड़ आऊं, तब तक तुम शशि के साथ गप्पें उड़ाओ.''

उनके चले जाने के बाद श्याम अकेला पड़ गया. सिगरेट का कश खींचते हुए सोचा—कल इसी समय मुझे भी चल देना है. सेमिनार चार तक समाप्त हो ही जायेगा.

शशि स्वेटर बुनती उसके सामने पड़े एक सोफे पर आकर बैठ गयी. श्याम को गौर से देखने का मौका मिला.

श्याम ने देखा—गोरी और कोमल अंगुलियों में नाचती सलाइयां, लंबा और गोल चेहरा, हिरनी जैसी आंखें, पतले-पतले होंठ, ऊंची गर्दन और घने काले बाल, गुलाबी रंग की साड़ी और सफेद झक ब्लाउज. सोचा-कुछ बीमार-सी न लगे तो पद्मिनी को भी मात कर दे. बीमार होते ही, पर शारदा भाभी तो उसके सामने पानी भरती है. पर भाभी की धर्म-बहन को राजू ने अपने घर क्यों रख छोड़ा है? पच्चीस से कम तो इसकी उम्र शायद ही होगी. अभी तक इसकी शादी भी नहीं हुई लगती. गरीब मां-बाप की बेटी होगी.

''यह स्वेटर राजू का लगता है.''

''हां, उनका ही है.''

''राजू, इस मकान का किराया तीन सौ तो देता ही होगा?''

''यह मकान तो जीजी का है.''

''यह ठीक है, नहीं तो अजमेर में इतने बड़े मकान का किराया दो-ढाई सौ तो मजे से देना पड़ता है.''

बालों की एक लट शशि के गालों पर लटक आयी. सिगरेट का कश लगाता वह सोचने लगा—गले और कानों में गहने कुछ भी नहीं, केवल नाक में लौंग है. बिना बनाव-सिंगार के ही कितनी सुंदर लगती है. राजू की जोड़ की तो यह है. कुछ भी हो, राजू का तकदीर है सिकंदर. कमाऊ पत्नी और ऐसी सुंदर साली-चुपड़ी और दो-दो.

पर साली को साथ रखने में जरूर कोई राज होगा. इसके सामने शारदा भाभी प्रौढ़ लगती हैं.

श्याम को अपनी पत्नी का खयाल हो आया. वह तीसेक वर्ष की होनी चाहिए. मुझसे चारेक वर्ष छोटी है. तीन बच्चों की मां होने के बावजूद शारदा भाभी से तो ठीक ही है. इस शशि का मुकाबला तो वह कैसे करे! बेटा राजू इतना होशियार निकलेगा, यह तो मैंने कभी सोचा भी न था.

परबतसर में था तब अकेला रोटियां सेंकता था. दोस्त लोग छेड़ते—''क्यों बेकार सर्दी में मरते हो. शादी क्यों नहीं कर लेते. घर भी सुंदर लगेगा और दोनों वक्त रोटी भी आराम से मिल जायेगी. क्या करोगे इतना धन इकट्ठा करके?''

''बेटा,'' मुस्कुराकर कहा करता, ''आप सभी बाल-बच्चेदार हो, सच-सच बताओ, कितने गर्म रहते हो? बीस तारीख जाने के बाद फिर दिन गिन-गिनकर निकालते हो. घर में भूख नाचती है. मैं तुम्हारी बला से चाहे सर्दी में मरूं या गर्मी में, तीसों दिन एक जैसा ही रहता हूं. रात को निशंक सोता हूं.

बेटा उस समय भी मौज में था और अब तो क्या पूछो, पांचों अंगुलियां घी में हैं. पहले साईकिल का भी जुगाड़ नहीं था और अब बेटा स्कूटर के बिना बाहर पैर ही नहीं रखता.

स्कूटर की आवाज सुनकर शशि फुर्ती से दरवाजा खोलने गयी. राजू ने अंदर आकर थैला शशि को थमाते हुए कहा, ''भई शशि! तेरी जीजी ने उस समय एकदम ठंडी चाय पिलायी. अब तुम गर्मागर्म कॉफी पिला दो तो मजा आ जाये. सर्दी में स्कूटर की सवारी एकदम बेकार है.''

''अभी बनाकर लाती हूं!'' कहती हुई शशि रसोईघर की ओर चली गयी. उसके लंबे-लंबे बालों को निरखता हुआ श्याम कहने लगा, ''राजू, तुम हो तकदीर वाले. तेरे भाग्य खुल गये.''

''मानता है, मेरी सूझ-समझ को?''

''तेरी समझ को नजर न लगे, पर सच-सच बता यह शशि है कौन?''

''मैंने कहा न कि तेरी भाभी की धर्म-बहन है!'' कहकर राजू मुस्कराने लगा और अपनी मुस्कराहट को और अधिक असरदार बनाने के लिए उसने एक सिगरेट सुलगायी.

''पर इस धर्म की साली को तुमने घर में क्यों रख छोड़ा है? इसका घर में रहना भाभी को कैसे सहन होता है?...भैया, तू यह बड़ा खतरनाक खेल खेल रहा है...आज नहीं तो कल तुम्हें अवश्य पछताना पड़ेगा.''

''तुम्हारी भाभी को तो यह सहन होता है या नहीं पर लगता है इसका मेरे पास रहना तुम्हें सहन नहीं होता.''

''हां, नहीं होता, बोलो अब तुम क्या कहते हो?''

''श्याम, मेरा यह खेल तुझे या और कितनों को ही सहन नहीं हो रहा होगा. शायद यह बात उसके पति को भी अच्छी नहीं लगती होगी पर करे क्या, वह बिल्कुल बेकार है.''

''यह शादी-शुदा है?''

''हां, शादी-शुदा है और इसके पति ने एक बार मुझे कह दिया कि तुम्हें इतना ही तरस आता है तो रख लो अपने घर में. पर अब जरूर पछताता होगा...श्याम! अपन मर्द जो कहे जाते हैं, पर देखा जाये तो बिल्कुल नामर्द हैं.'' शशि को कॉफी लाते देख राजू चुप हो जाता है.

''लो, पहले कॉफी पीओ,'' कहता हुआ वह एक कप श्याम को थमाता है और दूसरा खुद लेते हुए शशि को अपने पास बैठने के लिए कहता है.

''यह श्याम कहता है कि शशि बहुत चतुर है.''

शशि कुछ जवाब नहीं देती, बस सिर झुकाये बैठी रहती है.

''अच्छा, एक बात बताओ, आज हमें क्या माल खिलाओगी? यह दुष्ट मेरी शादी के बाद पहली बार आया है. इसे कुछ तो खिलाना ही पड़ेगा.''

''आप जो कहें वही बना दूं.''

''दाल का हलुआ तो तुम्हारी जीजी कल सुबह बनायेगी, हम तो नमकीन के शौकीन हैं.''

''हां...आं...आं...अब आयी बात समझ में. देखा, सोहन हलुआ तो मैं ले आया हूं. तुम तो केवल समोसे बना डालो, और यदि साथ में आलू-छोले भी बना लाओ फिर तो कहना ही क्या.''

शशि कुछ देर बाद उठकर रसोईघर की ओर चली गयी. सिगरेट का धुआं उड़ाते दोनों दोस्त अपने-अपने विचारों में डूबे रहे. मौन श्याम के शब्दों से टूटा.

''हां, अब बता, हम नामर्द कैसे है?''

''मेरी नजरों में सच्चा मर्द वह जो स्त्री को केवल भोग की वस्तु न समझे.''

''तो क्या समझे?''

''मूर्ति को पत्थर समझनेवाला कभी भी भगवान का भक्त नहीं हो सकता. इसी तरह ही पत्नी को मात्र वासना का साधन समझने वाला उसके दूसरे रूपों को महसूस नहीं कर सकता. स्त्री से अधिक वह मां, बहन, संगी-साथी, इनसान भी है. उसके इन दूसरे रूपों को देखने के लिए मनुष्य के पास दृष्टि-दीठ ही नहीं रही. मां-बहन के रिश्ते तो बस दूध तक ही हैं और कहीं-कहीं तो मुझे उनमें भी घपला नजर आता है.'' कहकर राजू श्याम का मुंह देखता चुप हो गया. फिर सिगरेट के दो-एक कश खींचकर कहने लगा, ''हमारा पुरुषत्व खंडित है, स्त्री संपूर्ण है. वह अपने पूर्ण रूप में प्रकट होती है. लेकिन उसके इन रूपों की कद्र कहां? यदि कद्र होती तो स्त्री जाति आठ से लेकर साठ तक एक ही रूप में नहीं देखी जाती. हर उम्र की स्त्री के साथ बलात्कार के सच्चे किस्से सुनने में नहीं आते.''

राजू की बातों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्याम ने कहा, ''राजू यह सारी विवेक की बातें हैं. आज जानवर के समान मनुष्य के लिए काम और अर्थ से आगे काली दीवार है. दुनिया तो अपने रास्ते ही चलेगी खैर! पर हमारी बात तो अधूरी ही रह गयी. मुझे यह भी तो बता कि यह शशि है कौन

और इसके पति ने इसे छोड़ क्यों दिया?"

"यह तुमसे और मुझसे बहुत खूबसूरत और ताज़ा-जवान है, पर है एकदम नामर्द... शशि के तीन वर्ष का एक बेटा भी है."

"वह कहां है?"

"उसी नामर्द बाप के पास."

"भाई, तुम्हारी ये बातें मेरे कुछ भी पल्ले नहीं पड़तीं. साफ-साफ कहो तो कुछ सिर-पैर का पता चले."

राजू अपने हाथ में पकड़े सिगरेट के टुकड़े को मसलता हुआ कहने लगा, "श्याम इस दुनिया के रंग-ढंग देखकर मन में आता है कि इसको आग लगा दूं... यदि पास बंदूक हो तो कईयों को गोली से उड़ा दूं. एक वर्ष पहले बस इन्हीं दिनों की बात, शशि और उसका पति सैकेंड शो देखकर वापस घर आ रहे थे. सुनसान जगह पर चार गुंडों ने इन्हें घेर लिया. पहले तो इनके पास के पैसे व अन्य-जेवर, नकदी, घड़ी आदि सभी कब्जे में ले लिये. फिर स्कूटर के पहिये में गोली मारकर पहिया बर्स्ट कर दिया और इसके बाद शशि को जबरदस्ती कार में डालकर चंपत हो गये."

"यह बात कहां की है— अजमेर की?"

"नहीं, जयपुर की है. इस घटना के चार-पांच दिन बाद शशि बेहोशी की हालत में जयपुर-अजमेर रोड़ पर पड़ी मिली. अस्पताल में भी चार घंटे बाद इसे होश आया. इसके घर समाचार पहुंचने के बाद भी कोई खोज-खबर लेने नहीं आया. आखिरकार तुम्हारी भाभी इसे अपने यहां ले आयी. मैं इसके घरवालों से जाकर मिला तो आश्चर्य की बात यह कि बेशर्म इस अबला को नौकरानी के रूप में भी रखने को तैयार नहीं हुए. अब तू ही फैसला कर इसका पति मर्द कहलाने लायक है क्या?"

"कोर्ट में केस भी किया जा सकता है."

"यह फालतू की फजीहत है."

"तो अब इसका क्या होगा?"

"होगा क्या, यहां यह मजे में है, हमें घर में सहारा है, यह ग्रेजुएट है. अगले वर्ष बी.एड. करवा दूंगा. सर्विस लगने के बाद अपने पैरों पर खुद-ब-खुद खड़ी हो जायेगी."

"इसके मां-बाप भी तो होंगे?"

"लव-मेरेज के चक्कर के कारण इसकी शादी होते ही मां-बाप से संबंध टूट-सा गया. अब इस बुरे वक्त में वे इसका साथ क्यों देने लगे?"

खाना खाने के बाद दोनों दोस्त बेडरूम में जा लेटे. मीठी सुपारी चबाते और सिगरेट का धुंआ निकालते हुए श्याम ने मुस्कराकर पूछा, "एक नर्स के साथ शादी करने का विचार तेरे मन में कैसे आया?"

"तुम्हारा परबतसर से तबादला होने के बाद मुझे टाईफाइड हो गया. हालत कुछ ज्यादा ही खराब हो गयी थी. आखिर मुझे अजमेर भर्ती होना पड़ा. बस, तभी शारदा से मेरा परिचय हुआ."

"इसमें तुझे क्या खास बात लगी?"

"पहली बात तो यह कि यह मुझे मन की साफ और अच्छी लगी. दूसरी बात यह कि यह विधवा थी."

"विधवा थी?"

"हां, यह भी मानो तो केवल भांवरें ही खायी थीं, हथलेवे का पाप लगा. पुष्कर घाटी में बस उलट गयी थी. पूरी बारात में केवल पांच-सात ही बचे. इसके पति के सिर में जोरदार चोट लगी और यहां अजमेर अस्पताल में आकर उसने भी दम तोड़ दिया. इस बेचारी ने तो ससुराल का मुंह भी नहीं देखा. इसकी विधवा मां ने बड़ी मुश्किल से तो इसकी शादी की, दुबारा वह शादी कैसे करती ? समाज के दोगले कुत्ते इसे रसगुल्ला समझकर सटकने को तो तैयार थे, लेकिन इससे शादी करने को कोई भी तैयार नहीं. शादी की बात चलते ही यह एक अपशकुनी विधवा-रांड बन जाती और वैसे उन सबको इंद्र की परी-सी लगती."

कुछ क्षण चुप रहकर राजू ने कहा, "अब यह भी मस्त है और मैं भी मस्त. हजारेक इसे मिल जाते हैं और इतने ही मुझे."

"समझ गया भैया! तब तो तूने पैसा देखकर ही शादी की है. लोभी प्राणी तो तू शुरू से ही रहा है."

राजू काफी देर तक मुस्कराता रहा और फिर बोला, "यदि यह कमाऊ नहीं होती तो भी मैं इससे शादी कर लेता, परंतु इसके कमाऊ होने से मेरी ताकत दुगुनी हो गयी ... इस अर्थ-प्रधान युग में मनुष्य की ताकत है पैसा. पैसे वाले का हर काम सराहनीय माना जाता है. टटपूंजिये को कोई भी नहीं पूछता."

"तुम्हारे घर वाले कुछ नहीं बोलते?"

"शादी में तो कोई नहीं आया, पर अब सभी आते-जाते हैं. पिछली छुट्टियों में मानजी की शादी थी, हम तीनों गये. तुम्हारी भाभी किसी की भी आंख में नहीं खटकी. शशि को भी पूरा सम्मान मिला. दोनों बहनें सभी के साथ उठतीं-बैठतीं और खाती-पीती थीं. जितना खर्च मेरे तीनों भाइयों ने मिलकर किया उतना मैंने अकेले ने किया था. मेरी ताकत है मेरा बैंक-बैलेंस, नहीं तो हमारा यह टुक्कड़-खोर समाज मुझे अंगुलियों पर उठा लेता."

श्याम को राजू की मर्दानगी के सामने अपना मनुष्य जन्म एकदम बौना-सा लगने लगा. □

आत्मरचना

वह ऋजुता...

गोविंद मिश्र

आम धारणा है कि साहित्य रचने के पीछे मनुष्य की अमर होने, अपने को बचाये रखने की आकांक्षा छिपी होती है...पर सुप्रसिद्ध कथाकार गोविंद मिश्र आत्मरचना में कुछ और ही कहते हैं. साहित्य, सर्जनात्मकता और स्वयं को समझने-समझाने की एक विनम्र कोशिश—

इंटरमीडिएट (1954)...... जब उम्र पंद्रह-सोलह की थी, तब दो-तीन कहानियां लिखी थीं. इलाहाबाद में बी.ए.-एम.ए. (55-59) के वर्ष जब कहानियां नहीं डायरी लिखता था, रोज तो नहीं पर हां उसकी एक अपनी नियमितता थी. 1963...... धनबाद जब कविताएं कहानियां कुछ भी लिखने लगा, उन्हें प्रकाशित देखने की ललक जाग उठी थी. अपने लेखन की शुरुआत इन तीनों में से किसे मानूं?

शुरू की वे दो-तीन कहानियां पता नहीं कहां हैं..... उसके पास भी शायद ही हों जिसके लिए लिखी थीं. जीवन में पहली बार एक खुबसूरत इनसान..... कोमलता, आत्मीयता, मानवीयता... ये देखे तो भीतर असीम आल्हाद उठा. उसे व्यक्त करने वाली भाषा की तलाश करता-करता मैं कहानियों तक पहुंचा. कहानियों की कथा, उनका कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं था, महत्वपूर्ण थी वह मुग्धता जो कहानी, कविता, पत्र डायरी.... या कि ऐसे ही जुबानी-जुबानी भी व्यक्त हो सकती थी. जुबानी व्यक्त भी हुई होगी. फिर भी मैंने लिखने का दबाव महसूस किया-लिखकर ही यह संभव था कि उसकी प्रतिध्वनि बार-बार हम (एक मैं लेखक, एक वह पाठक या पाठिका) अपने तक आने देते, उस आल्हाद के सुख में बार-बार तैर सकते, उस सुख को तानते हुए एक दूसरे के और पास आ सकते.

डायरी लिखने का मेरा एक विशेष प्रयोजन था. रोज नहीं लिखता था. जब लड़खड़ा जाता, बेकाबू हो-होकर बहने लगता या बहुत ही मायूस हो जाता.... तभी डायरी की याद आती. अगर शुरू की उन कहानियों का मुख्य स्वर आल्हाद था तो यहां उदासी थी. मेरा वह पाठक अब भी मेरे साथ था.... मेरी करीब-करीब हर चीज का हिस्सेदार भी, लेकिन डायरी उस क्षेत्र को परिभाषित करने लगी थी जहां सिर्फ मैं था-मेरा एकांत, मेरे जख्मों को सहलाते मेरे अपने ही हाथ. इसकी जरूरत क्यों पड़ी, क्यों मेरा वह साथी काफी नहीं था. उसमें कोई कमी नहीं थी, हम हर तरह से एक दूसरे के प्रति समर्पित भी थे. पर मुझे वह लंबा रास्ता दिखने लगा था जिस पर मुझे चलना था. मुझे यह भी इल्म हो चला था कि इस पर चलना अकेले ही होगा. शायद इन्हीं सब दबावों ने डायरी का क्षेत्र ढूंढ निकाला वर्ना मैंने तो तब एन्न फ्रैंक की डायरी भी नहीं पढ़ी थी. जब-जब स्वयं को संभालने, अपने सोच को ढूंढने, अपने रास्ते को साफ करने, उस रास्ते पर चलने के लिए अपने भीतर नैतिक साहस जगाने जैसी कुछ जरूरत महसूस होती, मैं डायरी पर आता. वही अब भी है. डायरी लिखते समय आज भी स्वयं को उतना ही अनगढ़, बरबाद और लाचार पाता हूं जितना पहले..... समस्याएं भले ही दूसरी हों, दबाव दूसरी तरह के. डायरी वह साहित्य है जिसका लेखक-पाठक दोनों एक होते हैं.... सिर्फ एक दूसरे की कल्पना मात्र ही डायरी के साहित्य तत्व को विरूपित कर देता है. जहां सब कुछ छूटता चला जाता हो-हमारे जीवन की धरती, उस धरती पर के लोग, कल्पना के वितान भी जो साहित्य की सृष्टि के समय पर छा जाते हैं, हमें भर-भर देते हैं—चलना ही है जो रहता हो, वहां डायरी ही है जो साथ चलने की प्रतीति देती है. अपने चलने के साक्षी हम स्वयं.

धनबाद में कविता-कहानी.... कुछ भी लिखना.... अपने लिए सही माध्यम की तलाश का दौर ही कहा जायेगा पर अब मुझे लगता है कि भीतर से वह इससे कुछ ज्यादा था. मेरा वह साथी अब जा चुका था. मैं अकेला था. पीड़ा जब इतनी कि उबल-उबल पड़े.... तो डायरी भर तो संभालने में अक्षम थी. डायरी का अंतर्मुखी स्वभाव उस पीड़ा को और गहराता जब कि प्रकृति उस समय पीड़ा को फैलाकर बाहर बहा देने के लिए उन्मुख थी... तो हर हफ्ते एक कहानी, दो-चार कविताएं. कहानी-कविता में भी साफ-साफ कहिए कि रोना, गुहारी लगाना..... फिर भी अपने अंतस की बात को दूसरे तक पहुंचाने का ख्याल ही एक आड़, एक किस्म का पर्दा गिरा लेता था.

''कह के कुछ लाल - ओ-गुल
रख लिया पर्दा मैंने
मुझसे देखा न गया, हुस्न का
रुसवा होना....''

कितनी विचित्र बात कि बुनियादी आकांक्षा अपने भीतर से भीतर की बात बाहर भेजने की है, सारी छटपटाहट इसी को लेकर है.... लेकिन वही है जो हम नहीं होने देना चाहते-या उस पीड़ा को कोई रूप देंगे, या उसे सर्वजनीन आदि से जोड़कर रखेंगे. मुझे लगता है द्वंद्व की जिस छटपटाहट से साहित्य जन्म लेता है वह शायद यही है-बाहर तक पहुंचाने की बेचैनी, पर उसे रोके रहने की अकुलाहट भी..... हम अपने व्यक्तिगत को टुकड़ा-टुकड़ा काट करके बाहर भेज रहे हैं. आज के बाद वह हमारा अपना नहीं होगा, बाहर की सामन्य धारा में जा मिलेगा.... कुछ देर उस रूप में बह लेगा जो हमने उसे पहनाया है, उसके बाद क्या पता डूब जाये, क्या पता सामान्यधारा का एक अभिन्य हिस्सा बन जाये.

आम धारण है कि साहित्य रचने के पीछे मनुष्य की अमर होने, अपने को बचाये रखने की आकांक्षा छिपी होती है....पर मुझे लगता है स्वयं को समाप्त कर देने की आकांक्षा ज्यादा है. जीवन के सब बड़े अनुभव-साहित्य और संस्कृति की संरचना, प्रजनन, प्रेम, भक्ति.... ये अपने को मारने और जीवित रखने.... दोनों ही आकांक्षाओं को एक साथ क्रियान्वित करते दिखाई देते हैं. इसके पीछे प्रकृति का आशय शायद यही है कि समाप्त होने और बचे रहने, मरने और जन्मने.... ये द्वंद्व नकली हैं. प्रकृति के यहां कुछ नष्ट नहीं होता, न ही ऐसा कोई बिंदु है ठीक जहां मरण हो और उसके आगे जन्मना. इस तरह की सीमा रेखाएं दरअसल मनुष्य के ज्ञान की सीमाएं हैं.

जो साहित्य में व्यक्तिगत या व्यक्ति परक की दुहाई देते हैं वे बहुत ही भोंडी बात करते हैं. विशुद्ध व्यक्तिगत यहां कुछ हो ही नहीं सकता, डायरी में भी क्या शब्दों से छनकर आते ही वह दूसरा रूप धारण नहीं कर लेता? और जितना व्यक्तिगत है उतना जरूरी ही नहीं, अपरिहार्य है क्योंकि उसी से तो उपर्युक्त द्वंद्व की सृष्टि होती है जिससे साहित्य जन्मता है.

यह जो अपरिहार्य है.... वह उतना व्यक्तिगत भी नहीं है. होता तो अपना प्रतिबिंब देखने, बहुत हुआ तो अंतरंगों को पत्र लिखने आदि से छटपटाहट खत्म हो जाती. कुछ है जो इन तमाम वर्षों में अपने चोले के खंडहर में ढूंढता हुआ भटकता रहा हूं.... जैसे वहां मेरा ही कोई भूत छिपा बैठा है, जिसे मैं पूरा आज तक नहीं देख पाया. कभी उसकी यह झलक, कभी वह, कभी भूत की भी छाया, कभी छाया की भी प्रतीति मात्र.

इसे अपना भूत कहना भी क्या ठीक होगा क्योंकि बाहर की दिनचर्या में कार्यरत साफ-सुथरे गोविंद मिश्र से एकदम फर्क है यह. चलते-चलते जर्जर, समाज में हुई टकराहटों से लहूलुहान, मार से बच भागने की बेतहाशा कोशिश करता है पर छोटी से छोटी मार, दूसरों पर पड़ती मार भी इससे जा चिपकती. जैसे मारों के चिथड़ों-चिथड़ों से ही बना है यह. भागते-भागते कहीं दम लेने बैठता है तो दूर-दूर तक देखता है...... समाज, इतिहास, मानवता, ईश्वर. एक अजीब बात कि जहां मुझे जीवन ने असमाजिक, कठोर और क्रूर ही बनाया, वहां ज्यादा और असली मार झेलता हुआ यह भूत और कोमल, करुणा से ओत-प्रोत, उदात्त होता चला गया.

वह भागता रहा है, भागने की जगह नहीं, तो भी भागता है.... और मैं उसके पीछे-पीछे. उसके एकदम पास कभी नहीं हो पाता (साहित्य और असलियत में भी तो फर्क रहता है.).... रास्ते में गिरा पड़ा कभी यह पंख, कभी वह, कभी पंख का छोटा-सा टुकड़ा.... यही है जो मेरे हाथ आता है. रचनाओं में उसे फैलाकर पहचानने-जानने की कोशिश मैं करता हूं. मेरे बाह्य जीवन की जो चर्या है उसे स्वयं से छिटक-छिटककर मैं जैसे किसी नशे में इस भूत के पीछे चल पड़ता हूं..... इसकी झलक दिखती रहना चाहिए, यह ओट हुआ कि तबीयत घबराने लगती है.

कभी मुझे नहीं लगा कि मैं विशेष रूप से गढ़ा हुआ कोई हूं जो विश्व में किसी बड़े काम के लिए अवतरित हुआ हूं. संसार या समाज को मैं बदल सकूंगा या बदलने में थोड़ा योगदान कर सकूंगा या किसी के लिए कुछ कर सकूंगा-ऐसी कोई सामर्थ्य अपने में नहीं पाता. अपने को ही बदल लूं, कहने को भी मेरे पास ऐसा कुछ नहीं था जो पहले न कह दिया गया हो. मेरा महसूसना, भावनाएं.... भाव ये ही हैं जिन्हें कह सकता हूं कि थोड़े बहुत विलक्षण हैं.... क्योंकि वे मेरे साथ जुड़े हैं-वह मैं, जो ठीक इस तरह पहले कभी पैदा नहीं हुआ. यह विलक्षणता तो उतना नहीं (पर हां यह भी कभी-कभी) जितना कि और चीजें उचका देती है, मैं गर्व की ऊर्मियों में तिरने लगता हूं... क्या ऐंठ, क्या आत्मविश्वास! पर उस स्तर पर बड़ा उड़ा-उड़ा-सा लगता है. मैं झट लघुता का तल टटोलने लगता हूं, जैसे कि वही है जहां मैं टिक सकूंगा.

मैं क्या, हममें से अधिकांश, ज्यादातर समय अपने फूले हुए व्यक्ति के प्रभामंडल में घूमते हैं. यह हमारा फूला हुआ कृत्रिम व्यक्ति-जिसके बल पर हम बाजार में रकम के माफिक चलते हैं-यही धीरे-धीरे हमारी शक्ति बन बैठता है. ऐसा जमकर मुखौटा हमसे चिपकता है कि वही हमारा असली चेहरा हो जाता है. रचना-प्रक्रिया में अपने को समाप्त कर देने की क्रिया बार-बार और कई रूपों में आती है-अपनी सत्ता को समाप्त करके ही तो मेरी आत्मा किसी चरित्र में प्रवेश कर सकती है, एक रचना के संदर्भ में पूरी तरह खिल चुकने के बाद शून्य हो जाना, इस तरह बार-बार, फिर-फिर शून्य होना समय के आयाम के साथ थोड़ी लंबी पसर कर यह प्रक्रिया स्वयं को बराबर छीलते चले जाने जैसी होती है. इस सबमें लघुता की जो प्रतीति निहित है वह मेरे लिए जरूरी है --- तभी मैं अपने फूले हुए चोले का बोझ ढो सकता हूं.

यह अजीब समय है कि स्व-भाव में स्थिर होना, जो संस्कार हममें हैं, उनका आदर करते हुए अपनी परंपरा से जुड़ना.... ये आडंबर लगते हैं, इन्हें प्रतिक्रियावादी कहा जाता है. लघुता का वरण, अहंकार का त्याग.... यह हमारे 'एथौस' का एक महत्वपूर्ण अंग है, जबकि व्यक्ति का महत्व, उसके इर्दगिर्द बुना अहंकार जो विज्ञान के रास्ते आज हमें यहां तक लाया है कि एक कदम आगे बस पागलपन ही है.... ये सब पुनरुत्थान (पश्चिम) के बीजमंत्र थे. मैं अपने 'एथौस' का ही तो हो सकूंगा. ये पछत्तरवीं वर्षगांठ, ये षष्टिपूर्ति..... ये पुरस्कार.... ये सम्मान.... ये सब मुझे अपने भावजगत के बाहर की चीजें लगती हैं. प्रकृति की हर चीज ही तो कुछ-न-कुछ दे रही है-संभवतः मेरी रचनाओं से ज्यादा महत्वपूर्ण-वहां तो कोई स्वयं को सम्मानित नहीं करता. आदमी ने भाषा क्या आविष्कृत कर ली, स्वयं को गौरवान्वित करने का कोई मौका नहीं चूकता वह.

हर रोज दो लाइनें लिख लीं या एकाध पैरा सुधार लिया, छुट्टी के रोज दो-चार पेज लिख लिये जिसे अगली छुट्टी में उठाकर खारिज कर मारा. तीन-चार महीनों में कहीं जाकर दस-पंद्रह दिनों के लिए उपन्यास लिखने में डूब गये और जब लौटे तो यही एहसास लेकर कि क्या कूड़ा लिखा.... मारपीटकर साल में तीन-चार कहानियां, तीन-चार साल में एक उपन्यास, चौबीसों घंटे जो साहित्यकार-सा आलोकित होता रहे वह कहां, कभी-कभार किसी मंच पर साहित्यकार के रूप में प्रकट हो लिए.... क्या यही है साहित्यकार होना? अपनी हर रचना में जिस तंग गली तक मैं पहुंचना और फिर उसे आलोकित करना चाहता हूं, वह किस-किस मुश्किल-मुश्किल से छूने में आती है, पांच पृष्ठ के लिए अक्सर पचास-पचास पृष्ठों के भटकाव.... और यह बजाय कम होने के बढ़ता ही जाता है. इतने वर्षों के लिखने का अनुभव इतनी भी सामर्थ्य नहीं देता कि अपनी बात फटाफट आकर वह ग्रहण कर ले, जिसमें ही वह हो सकती है....

दूसरी तरफ वह लेखन जो घर के बाहरी हिस्से में खुले दफ्तर में टाइपराइटर पर खटाखट किया जाता है, रोज नियमित रूप से, किसी चीज पर कुछ भी लिख लिये..... (अंग्रेजी अखबारों में प्रकाशित, भारतीयों द्वारा लिखा अंग्रेजी साहित्य!) यह मशीनी लेखन तो साहित्य कतई नहीं है. अव्वल तो यह मात्र रुपया कमाने का ही एक हथकंडा है-चटाचट पान लगाकर कमा लो, चाहे इस तरह लिखकर. बहुत हुआ तो यह अपने को बराबर 'सर्कुलेशन' में रखना है. (यह भी अंग्रेजी मुहावरा!) यह तो हिंदी में भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है-यह केवल मस्तिष्क से उपजा, आपकी विश्लेषण क्षमता पर आधारित लेखन है. लेखन हमारी आत्मा से निसृत हो, झर-झर खुशबू बहे कि जिसे छुए उसे ही सराबोर कर दे..... यह साहित्य होता है.

पचीस वर्षों लगातार लिखते हुए मैं सिर्फ यहां तक पहुंचा कि साहित्य की ऊंचाई का अहसास होता है, कुछ आगे चलूं तो शायद वह दिखाई दे.... पर यह तय है कि बहुत-बहुत उसकी जड़ तक ही पहुंच पाऊंगा. फिर क्यों मैंने साहित्य को अपने जीवन का पर्याय बना रखा है?

मुझे लगता है कि मेरा वह भूत जिसके पीछे पीछे मैं हूं.... वह नहीं भटक रहा है, वह किसी तलाश में है-संभवतः मेरे भीतर छिपा बैठा ईश्वर. रेंगना है यह जो हो रहा है, पर एक दिशा में ही हर रचना मेरी कोई-न-कोई कलुषता धोती है. जब सभ्यता द्वारा चिपकायी गई ये कलुषताएं साफ हो जायेंगे.... तभी मैं इतना ऋजु हो सकूंगा कि प्रकृति मुझमें से आर-पार प्रवाहित हो...

एक पेड़ जो ठंड-धूप-बरसात, उमस-तूफान..... सब आत्मसात करता है. उसमें कोंपलें फूटती हैं- जो पत्तियां बनती हैं. वे फिर झर कर बह जाती हैं, मेरी रचनाओं की तरह. जो बहकर पता नहीं किस दिशा में प्रकृति के किस प्रजनन-संवर्द्धन आशय को पूरा करने गयीं... वे अब पेड़ की नहीं हैं. यह मंशा पेड़ की नहीं हो सकती कि उनमें आम क्यों नहीं होते, निभौरियां या इमलियां ही क्यों लगती हैं. यह संतोष भी उसका नहीं कि किसने वे फल खाये, किसने उसकी छाया की ठंडक ली, कितनों को प्राण-वायु मिली! उसकी प्राप्ति तो मात्र यह कि उसने धूप-तूफान जो मिले ओढ़े और अपनी सर्जनात्मकता की प्रक्रिया में सतत लीन खड़ा है आसमान के नीचे....

जब तक, तब तक. गये तो चुपचाप सरक गये, सूखे पत्ते की तरह.... बे आवाज! □

'दो बीघा जमीन', 'डाक्टर आनंद', 'एक और अनेक', 'एक ओर सीता' (उप.), 'पराया सुख', 'अपना-अपना सुख', 'तलाश' आदि रचनाओं के रचनाकार.
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : 138 डी, विद्या विहार, पिलानी (राज.)

शीतांशु भारद्वाज

तीसरे ही दिन उन्होंने आठवीं के बच्चों को खुली चेतावनी दे डाली थी. ''बच्चो, कान खोल कर सुन लो. जिन्हें बोर्ड की परीक्षा में अच्छे अंकों में पास होना है, वे शाम को मेरे डेरे पर आ जाया करें. पांच-दस रुपल्ली कोई बड़ी बात नहीं होती.''

प्रार्थना समाप्ति के बाद शाला के अहाते में खड़े-खड़े घनानंदजी बच्चों के उस रेवड़ को देखने लगे. कक्षाओं की ओर वे सभी तो भेड़-बकरियों की तरह से जा रहे थे. आस-पास नवबर की गुनगुनी धूप पसरी हुई थी. पास वाले खाली खेत पर बच्चों ने पहले से ही टाट-पट्टियां बिछा दी थीं.

पाली पछाऊं क्षेत्र की इस शासकीय माध्यमिक शाला में घनानंदजी सहित दस अध्यापक कार्यरत हैं. किंतु यह तो सरकारी रेकार्ड में ही है. वास्तविकता तो यह है कि अध्यापकों के चार स्थान पिछले दो वर्ष से रिक्त चले आ रहे हैं. छः में से केवल चार ही अध्यापक शाला में उपस्थित रहा करते हैं. विज्ञान के अध्यापक बिशनदत्त तो यूनियन के चक्कर में अकसर इधर-उधर ही रहते हैं. घनानंदजी आठवीं कक्षा को हिंदी-अंगरेजी दोनों ही विषय पढ़ाया करते हैं.

घनानंदजी ऑफिस में आकर डाक देखने लगे. एक शासकीय परिपत्र को देखकर वे धक-से रह गए. उसमें शिक्षा-निदेशक ने प्रदेश के अध्यापक-वर्ग से निवेदन किया था कि वे अपने वयोवृद्ध सहयोगी जयदत्त की यथाशक्ति आर्थिक सहायता करें. इन दिनों वे भुवाली सैनिटोरियम में जीवन से संघर्ष कर रहे हैं. उधर, गांव में उनका परिवार एक-एक पैसे के लिए मोहताज हो रहा है.

''मास्साब! '' गोपदेव ने अंदर आकर उनकी तंद्रा भंग की, ''फिर क्या सोचा आपने?''

''अरे भाई! '' घनानंदजी के ललाट पर त्रिबली खिंच आयी, ''दो अध्यापक पहले से ही गायब हैं. ऐसे में अगर ऊपर से कोई अधिकारी आ जाये तो?''

''तो फिर मैं मेडिकल दे दूं?'' गोपदेव तो जैसे उनकी गर्दन पर ही सवार होने लगे.

''ऐसा करो.'' घनानंदजी ने हाथ का वह परिपत्र एक ओर रख दिया, ''कल तक ठहर जाओ. सुना है कल पनराम आ रहा है.''

''फिर ठीक है.'' सोपदेव उनके कमरे से बाहर चल दिये.

घनानंदजी फिर से उस परिपत्र को देखने लगे. जयदत्तजी की विपन्नता से उनका मन खिन्न हो आया. दरअसल उनके जीवन-पथ पर जयदत्तजी एक प्रकाश-स्तंभ के रूप में रहे हैं. उस वयोवृद्ध संत से उन्होंने क्या-कुछ नहीं सीखा. उनकी आंखों के आगे पिछले दिन उजागर होने लगे.

दस-बारह वर्ष पूर्व घनानंदजी उन्हीं जयदत्तजी के साथ सहायक अध्यापक के रूप में कार्य किया करते थे. मछोड़ की उस शासकीय माध्यमिक शाला में जयदत्तजी वर्षों से प्रधानाध्यापक थे. उनके कुछ अपने अलग ही नियम और सिद्धांत थे. विचारों से ही नहीं, खान-पान, रहन-सहन और व्यवहार में भी वे सात्विक प्रवृत्ति के थे.

''देखो भई!'' एक बार जयदत्तजी स्टाफ रूम में अध्यापक की गरिमा का बखान कर रहे थे, ''यह ठीक है कि आज का अध्यापक वेतन-भोगी है. किंतु उसे यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि आने वाली पीढ़ी उसी के बताये गये मार्ग का अनुसरण किया करेगी. एक आदर्श अध्यापक...''

''लेकिन मास्साब,'' एक अध्यापक ने उन्हें बीच में ही टोक दिया था, ''जब अपनी ही संतान अपना कहा नहीं मानती तो यह कैसे कहा जा सकता है कि छात्र अध्यापक का कहना मान ही लेंगे?''

''न माने,'' जयदत्तजी मुस्करा दिये थे. ''अच्छा अध्यापक तो कुम्हार के समान हुआ करता है. जिस प्रकार कुम्हार कच्चे घड़े को ठोक-पीट कर...''

जयदत्तजी अपने कथन की पुष्टि में ऐसे-ऐसे अकाट्य तर्क देने लगते कि अगला निरुत्तर हो आता था.

एक बार क्षेत्र की अन्य शालाओं की देखा-देखी उनके छात्रों ने भी हड़ताल कर दी थी. किसी शरारती बच्चे ने 'नोटिस-बोर्ड' के श्याम-पट्ट पर चॉक से लिख दिया था- 'हम नहीं पढ़ना चाहते!'

देखकर जयदत्तजी मुस्करा दिये थे. उन्होंने उसे मिटाकर वहां लिख डाला था, 'हमें तुम लोगों को पढ़ाना ही होगा!' वे अपने सहयोगियों से कहा करते थे कि माध्यमिक स्तर पर शिक्षा पा रहे किशोर अल्प बुद्धि के हुआ करते हैं. अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे साम-दाम-दंड-भेद किसी-न-किसी रूप से उन्हें पढ़ायें-लिखायें.

प्रत्येक वर्ष वार्षिक परीक्षाओं के परिणाम निकलते. उत्तीर्ण छात्रों के अविभावक उनके पास मिठाई के डिब्बे लेकर आते. शाला से स्थानांतरण का प्रमाण-पत्र लेते समय वे जयदत्तजी के आगे दस-पांच रुपये के नोट रख दिया करते.

''नहीं भई, यह ठीक बात नहीं है.'' जयदत्तजी उन उपहारों को छूते तक नहीं थे. ''यह नोट आप बालक को मेरी ओर से दे दीजिये. मिठाई भी बच्चों में बांट दीजिये.''

एक बार घनानंदजी का किसी काम से जयदत्तजी के गांव जाना हुआ था. रात को वे वहीं रुक गये थे. जयदत्तजी की पांच पुत्रियां और तीन पुत्र थे. उनकी साध्वी पत्नी बड़ी कठिनाई से उनका पालन-पोषण कर पाती थी.

''उन्हें तो सतजुग में जन्म लेना चाहिए था.'' जयदत्तजी की पत्नी ने गहरी सांस खींची थी. ''आज के कलजुग में वे सतजुगी सिक्के चला रहे हैं.''

''चलो!'' घनानंदजी ने उनका मन रखने के लिए कह दिया था, ''मास्साब को इसी में सुख मिलता है, यही सही.''

''उनसे अच्छा तो वह भिश्ती था जिसने एक दिन के लिए चमड़े के सिक्के चलाये थे.'' जयदत्तजी की पत्नी ने कहा था.

घनानंदजी चाहते थे कि जयदत्तजी अपने घर-दुवार की ओर ध्यान दें. उन्होंने लाख चाहा कि वे हवा के रुख के साथ-साथ चलें, समय की नब्ज टटोलें. किंतु जयदत्तजी अपने सिद्धांतों से टस-से-मस नहीं होते थे. एक दिन उन्होंने कह ही तो दिया था, ''मास्साब, आज की मंहगाई में केवल वेतन के सहारे ही जिंदा रहना कठिन है. आपको गुरु-दक्षिणा लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए.''

''नहीं हो.'' जयदत्तजी ने हाथ हिला दिया था, ''महाभारत काल में दी होगी कभी किसी शिष्य ने अपने गुरु को दक्षिणा.''

घनानंदजी निरुत्तर हो आये थे.

''सच्चा अध्यापक कभी भी धन के पीछे नहीं भागता.'' जयदत्तजी मुस्करा दिये थे, ''धन तो साधन मात्र है. अध्यापक का साध्य तो विद्या-दान हुआ करता है.''

धीरे-धीरे जयदत्तजी के वही सिद्धांत उनका शोषण करने लगे थे. गांव-जवार में पड़ी उनकी घर-गृहस्थी बुरी तरह से चरमराने लगी थी. पुत्रियां दिन-प्रति-दिन पहाड़ होने लगी थीं. बड़ी तो एक विजातीय लड़के के साथ देश-मैदान की ओर भाग गयी थी. बड़ा पुत्र छंटा हुआ बदमाश था. आये दिन वह वनों में घास-लकड़ियां लाने गयी बहू-बेटियों को तंग किया करता था. चाकू की नोक पर वह उनके गहने उतरवा लेता. एक दिन कुछ लोगों ने उसे शराब पिला-पिला कर जिंदा ही एक खड्ड में दाब दिया था. बीच का पुत्र पहले ही किसी सड़क दुर्घटना में चल बसा था. किंतु जयदत्तजी के मुंह से 'उफ' तक नहीं निकली थी. उनकी पत्नी निरंतर टूटती ही गयीं. अंत में कैंसर-ग्रस्त होकर उन्हें भी मुक्ति मिल गयी थी.

अपनी खिली हुई बगिया को उजड़ते देखकर वह बेदर्द माली भी शायद अंदर-ही-अंदर घुलने लगा था. बीड़ी-सिगरेट न पीने पर भी उन्हें दमा की बीमारी ने आ घेरा था. दिन-प्रति-दिन वे सूखते ही गये. एक दिन डॉक्टर ने क्षय-रोग बता दिया था.

''मास्साब!'' घनानंदजी ने उनसे कहा था, ''आप अंडे क्यों नहीं लेते? गांधीजी तक ने इन्हें निरामिष कहा है.''

''नहीं भई.'' जयदत्तजी ने मनाही कर दी थी,'' अपना मन नहीं मानता.'' और यह बात भी न थी कि जयदत्तजी के शुभ-चिंतक थे ही नहीं. समूचा मछोड़ क्षेत्र उनके प्रति अपार श्रद्धा रखता था. लोग भेंट स्वरूप उनके लिए सूखे मेवे, दूध, घी लाते किंतु वे उन्हें छूना तक पाप समझते थे.

जल्द ही जयदत्तजी को एक तीसरी बीमारी ने आ घेरा था. पहले उनकी दृष्टि कमजोर हुई फिर दोनों ही आंखों में एक साथ ही मोतियाबिंद छा गया था. उनके शिष्य जिला विद्यालय निरीक्षक भुवनचंद बड़ी कठिनाई से उन्हें ऑपरेशन के लिए राजी करा सके थे.

''भई, आंखों का मामला है.'' जयदत्तजी ने कहा था, ''देवी सरस्वती की आराधना की खातिर अब यह जरूरी हो गया है.''

आंखों पर मोटे लैंस की ऐनक लगाये हुए वे ऋषि-पुरुष दिन-रात पढ़ने-लिखने के ही काम में लगे रहते. उधर, उनकी पारिवारिक स्थिति और भी विस्फोटक होने लगी थी. पत्नी की मृत्यु के बाद से उनके बच्चों की देखभाल उनके छोटे भाई करने लगे थे.

घनानंदजी के कंधों पर भी तो गृहस्थी का भार आ पड़ा था. पिता की मृत्यु के बाद से तो वे उस चक्की में बुरी तरह से पिसने लगे थे. जयदत्तजी की उस दयनीय दशा को देखकर पहली बार उनकी आंख खुली थी. वे धर्म-अधर्म के युद्ध-क्षेत्र में खड़े थे. उस युद्ध में वे बुरी तरह से लड़खड़ाने लगे थे. अंततः उन्होंने भी अपनी नैतिकता के हथियार डाल दिये थे. जयदत्तजी सैनिटोरियम में भरती हो चुके थे. उसके तीसरे ही दिन उन्होंने आठवीं के बच्चों को खुली चेतावनी दे डाली थी, ''बच्चो, कान खोल कर सुन लो. जिन्हें बोर्ड की परीक्षा में अच्छे अंकों से पास होना है वे शाम को मेरे डेरे पर पढ़ने आ जाया करें. पांच-दस रुपल्ली कोई बड़ी बात नहीं होती.''

ट्यूशन का पहला चस्का घनानंदजी को उसी दिन से लगा है. उसी वर्ष उनकी पदोन्नति प्रधानाध्यापक के पद पर हो गयी थी. दो वर्ष

ताड़ीखेत में रहने के बाद पिछले वर्ष उन्होंने स्थानीय विधायक की सिफारिश पर अपना स्थानांतरण अपने ही क्षेत्र की इस शाला में करवा लिया था.

टन-टन कर चपरासी ने दूसरा घंटा बजाया. घनानंदजी की तंद्रा भंग हुई. वे ऑफिस से बाहर निकल आये.

"प्रेमसिंह!" उन्होंने सामने खड़े अपने सहयोगी अध्यापक को आवाज दी.

"जी मास्साब!" प्रेमसिंह उनके पास चले आये.

"हमारे घर दो-चार गट्ठर लकड़ियां तो भिजवाओ." उन्होंने कहा.

"कल ही लो मास्साब." प्रेमसिंह व्यावहारिक सौदेबाजी पर उतर आये. वे सिर खुजलाने लगे, "मास्साब, गेहूं बोवाई का समय आ गया है."

"दो-चार दिन बाद चले जाना." घनानंदजी ने जैसे हरी झंडी दिखला दी, "तब तक शेरसिंह भी लौट आयेंगे."

"ठीक है." प्रेमसिंह अपनी कक्षा की ओर चल दिये.

चपरासी ने घंटा बजाया. घनानंदजी कक्षा से निकलकर ऑफिस में आ गये. वे कुर्सी पर बैठे तो उनकी दृष्टि उसी परिपत्र पर जा लगी. इससे उनका मन खराब होने लगा. वे अपने आप में उसे देखने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे.

"मास्साब जैहिंद!" अचानक पनराम अध्यापक ने अंदर आकर घनानंदजी को अभिवादन किया.

"आ भई पनराम!" घनानंदजी मुस्करा दिये. "निपट गया तेरा काम-धाम?"

"हां मास्साब." पनराम वहीं पड़ी एक टूटी हुई कुर्सी पर बैठ गये, "मेरा आवेदन पत्र फाड़ दीजिये."

"नहीं भई." घनानंदजी ने हाथ हिला दिया, "इस हाथ ले, उस हाथ दे. कल जब स्कूल आ जाओगे तभी फाड़ेंगे. कहीं कोई अधिकारी न आ जाये."

"हाथ कंगन को आरसी क्या मास्साब! समझ लो मैं आ गया." पनराम वहीं पड़ी उपस्थिति पंजिका पर अपने हस्ताक्षर करने लगे. उन्होंने पिछले पांच दिनों की उपस्थिति लगा दी. उधर घनानंदजी उनके आवेदन-पत्र को फाड़ने लगे.

तभी बाहर से गोपदेव आ गये.

"आ भई." घनानंदजी ने उबासी लेकर कहा, "मैंने कहा था न कि पनराम आने ही वाले हैं."

"तो मैं जाऊं मास्साब?" गोपदेव ने पूछा.

"अरे भई, आदेवन-पत्र तो देते जाओ." घनानंदजी के माथे पर बल पड़ गये, "तुम लोग कहीं मेरी नौकरी पर..."

"अजी वाह!" गोपदेव पांच दिन का आवेदन -पत्र घसीटने लगे, "आपकी नौकरी पर आंच भी नहीं आने की. आप तो सरकार के पक्के जवाई हैं."

गोपदेव से आदेवन-पत्र लेते हुए घनानंदजी बोले, "गोपदेव, अगले सोमवार तक अवश्य आ जाना. मुझे भी चार-छह दिन के लिए जाना है."

"ठीक है मास्साब." गोपदेव मुस्करा दिये, "आपकी बात गांठ बांध ली है."

छुट्टी का समय होने लगा था. घनानंदजी दुनियादारी के जाल में घिरने लगे. उनके सामने अनेक समस्याएं थीं. उन्हें युवती पुत्री के विवाह प्रबंध के साथ-साथ अपने मेधावी पुत्र की उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था करनी थी. इस वर्ष वे जीर्ण हो आये पुश्तैनी मकान की भी मरम्मत करवाना चाहते थे. इन सबके लिए वे पहले चारेक वर्ष से रुपयों की जुगाड़ करते आ रहे हैं. इसके लिए उन्होंने अनेक काम हाथ में ले रखे हैं. राजकीय लॉटरी की एजेंसी के अलावा एक चिट फंड का काम भी उन्होंने अपने हाथ में लिया है. ट्यूशनों के लिए उन्हें कहीं भी नहीं भटकना पड़ता. अपनी ही शाला के आठवीं के कमजोर बच्चों से ही प्रतिवर्ष उन्हें दो सौ रुपये मासिक की आमदनी हो जाया करती है.

चपरासी ने छुट्टी की घंटी बजायी. घनानंदजी आठवीं कक्षा से अपने ऑफिस की ओर आ गये. अहाते में खड़े-खड़े वे घर जाते हुए बच्चों को देखने लगे. उनकी वही भेड़-चाल थी.

शाला और अहाता खाली हो गया था. साथ के अध्यापक भी कभी के अपने डेरों की ओर चल दिये थे. घनानंदजी ऑफिस में आ गये. तभी बाहर से एक बच्चा अंदर की ताक-झांक करने लगा.

"कौन है रे?" उन्होंने पूछा.

"मैं हूं मास्सजी." एक दुबला-पतला बच्चा झिझकता हुआ अंदर आ गया. वह हाथ में एक प्लास्टिक का डिब्बा लिए हुए था.

बच्चे के लिए घनानंदजी की आंखों में प्रश्न-चिह्न उभर आया.

"मास्सजी, बौज्यू ने आपके लिए घी भेजा है." बच्चे ने उनकी मेज पर हाथ का डिब्बा रख दिया.

"अरे कहीं वनस्पति में ही तो चार बूंदे नहीं टपका दीं?" मुस्कराकर वे उस घी को सूंघने लगे.

"नहीं मास्सजी." बच्चा पूरे आत्मविश्वास के साथ बोला, "इसे तो घर पर ही मेरी मां ने तैयार किया है."

घनानंदजी को याद हो आया कि पिछले महीने से वे भैंसखेत के भौनराम हरिजन से बच्चे की कमजोरी की बात कहते आ रहे हैं. उसका भेजा हुआ घी उन्हें पिघलाने लगा, "ऐसा करना कि रात को दो रोटी बांध कर तू भी चले आना. तुझसे क्या लेना?"

"जी मास्सजी." बच्चा उन्हें प्रणाम कर अपने गांव की डगर पर हो लिया.

बाहर से हवा का झोंका आया. मेज के सिरे पर पड़ा हुआ वह शासकीय परिपत्र फड़फड़ाने लगा. घनानंदजी को उसमें जयदत्तजी के प्राण फड़फड़ाते हुए दिखाई देने लगे. प्रदेश के अध्यापक-वर्ग ने यदि चंदा करके कुछ धन-राशि इकट्ठा कर भी ली तो क्या वे उसे स्वीकार कर लेंगे? नहीं, वे टूट भले ही जायें, किंतु झुकेंगे नहीं, किसी के आगे हाथ नहीं पसारेंगे. वह परिपत्र उन्हें अनुपयोगी लगने लगा. अगले ही क्षण उन्होंने उसे फाड़कर कूड़े की बाल्टी में डाल दिया.

घनानंदजी ने मेज की दराज से अगले सप्ताह खुलने वाली लॉटरी के टिकट निकाल लिये. चिट फंड और अल्प बचत के कागजातों को भी उन्होंने झोले के हवाले कर लिया. इस वर्ष कुल मिलाकर कोई चारेक हजार रुपये का जुगाड़ वे कर ही लेंगे. हरिजन बच्चे द्वारा लाये गये घी को भी उन्होंने झोले के हवाले कर दिया.

कंधे पर झोला लटकाये हुए घनानंदजी अपने गांव की ओर जाने लगे. गांव की डगर पर चलते हुए वे निरंतर आगे-पीछे की ही सोचते रहे थे. पीछे छूटे हुए समय का उन्हें भारी पछतावा हो रहा था. यदि पिछले दस-बारह वर्ष से वे यही धंधे करते तो आज उनकी माली हालत और ही होती. फिर भी, आने वाले भविष्य के प्रति वे पूरी तरह से आशावान थे. उनके धंधे यदि इसी प्रकार से फैलते रहे, ट्यूशनों की फसल हर वर्ष लहलहाती रही तो उनकी चांदी-ही-चांदी है. □

चलते-चलते

पति ने तनिक गुस्से में पत्नी से कहा-"तुम एक घंटे से दरवाजे पर खड़ी किससे बातें कर रही थी? उसे अंदर ही बुला लिया होता."

पत्नी ने जवाब दिया-"पड़ोसिन थी, उसे अंदर आने की फुरसत नहीं थी. □

फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ

गोपाल चतुर्वेदी

बिन ट्रेनिंग सब सून

अनुभाग अधिकारी श्री हनुमान प्रसाद शर्मा पिछले एक सप्ताह से सातवें आसमान पर थे. प्रशिक्षण संस्थान ने उन्हें नये भर्ती सहायकों के ट्रेनिंगकोर्स में भाषण देने बुलाया था. वह अब तक हर आते-जाते को यह महत्वपूर्ण सूचना दे चुके थे. "सर! कल मुझे प्रशिक्षण संस्थान में भाषण देने जाना है. मैं दफ्तर नहीं आ पाऊंगा," उन्होंने अपने अवर सचिव पार्थसारथी से भाव बढ़ाने की कोशिश की. उनकी आशा के विपरीत पार्थसारथी के चेहरे पर सुख-दुख, आश्चर्य या तनाव का कोई भाव नहीं उभरा. वह वैसा का वैसा भौं चढ़ाये फाइल में खोया रहा. "इधर सभी बुलाये जा रहे हैं. सरकार की नयी नीति के कारण ट्रेनिंग-कोर्स कई हो गये हैं और प्रशिक्षकों की संख्या सीमित है. पिछले हफ्ते मैं भी गया था. आप नोट भेज दीजिये, मैं 'अप्रूव' कर दूंगा." पार्थसारथी ने बिना फाइल से नजर उठाये उत्तर दिया. शर्मा के उत्साह का गैस का गुब्बारा कुछ पिचका. अपनी सीट पर आकर उन्होंने पार्थसारथी से मुलाकात की धूल जैसे कोट से झाड़ी और सोचने लगे कि आखिर सरकार प्रशिक्षण पर इतना जोर क्यों दे रही है!

अभी उनके सचिव एक सप्ताह का कोर्स करके आये थे. संयुक्त सचिव एक साल के लिए विदेश गये हैं और उपसचिव अपनी विदेश यात्रा की औपचारिकताएं पूरी करने में व्यस्त हैं. ट्रेनिंग के नाम पर आधे से अधिक वरिष्ठ अधिकारी दुनिया घूम चुके हैं पर सचिवालय की कार्यपद्धति में कोई परिवर्तन नहीं है. पहले बड़ा कमरा, अच्छा फर्नीचर बड़े अधिकारियों की निशानी था, अब कंप्यूटर का टर्मिनल. जैसे हुक्के के स्तर से कभी नवाब पहचाने जाते थे, अब कंप्यूटर से अधिकारी. यों मुफ्त में संसार की सैर किसे बुरी लगती है. इससे अधिकारियों में अवश्य सरकार के प्रति लगाव बढ़ता होगा और फिर से विदेश जाने की जोड़-तोड़ के प्रति प्रतिबद्धता. संभव है धीरे-धीरे अनुभाग अधिकारियों की बारी भी आये. सरकार के घोषित लक्ष्यों में जनकल्याण प्रमुख है. कर्मचारियों के 'वेलफेयर' के बाद ही तो जनता का नंबर आयेगा. शर्मा दिवास्वप्न के सैट-यान पर उड़ान भरने ही वाले थे कि गोरख की बेसुरी आवाज ने उन्हें जमीन पर ला पटका, "क्या बात है शर्माजी! आंखें मूंदे ऐसे मंद-मंद मुस्करा रहे हो जैसे अंडर सैक्रेटरी पैनल में आ गये हो. या कहीं इश्क-विश्क का चक्कर तो नहीं है! चालीस से पचास तक जिंदगी का वह नाजुक दौर होता है, जब बड़े से बड़े हनुमान भक्त भी रोमांस का गच्चा खा जाते हैं." शर्माजी कुछ शरमा गये और "तुम नहीं सुधरोगे, गोरख" कहते हुए नियमानुसार गोरख के साथ कैंटीन की ओर बढ़ लिये. "जब हम भर्ती हुए थे तो ट्रेनिंग-वेनिंग के चोंचले नहीं थे. बस सीधे सेक्शन में भेज दिये जाते थे. कभी सेक्शन अफसर को पानी पिलाया, कभी उनका पान-तंबाकू लाये. कोई फाइल पढ़ने को दे दी तो पढ़ ली. 'नोटिंग' का डिक्टेशन लिया, 'रिसीट-डिस्पैच' का काम सीखा. अपने आप ही सब कुछ आ गया. अंग्रेजी की 'नोटिंग' से लेकर फाइल की 'डीलिंग' तक. आजकल के रंगरूटों की हेकड़ी तो अंग्रेजों जैसी है पर बिना अंग्रेजी जाने. और हिंदी में काम करने में हेठी समझते हैं. पता नहीं क्या होगा," शर्माजी ने जैसे अपने भाषण का पूर्वाभ्यास किया. "सब ठीक होगा, शर्माजी! भविष्य के प्रशासन में बाबा आदम के जमाने की फाइलें नहीं होंगी. सारी सूचनाएं कंप्यूटर के दिमाग में होंगी. बस बटन दबाया और सब 'स्क्रीन' पर नजर आने लगेगा. आप जैसे लोगों की फाइल में संकुचित मानसिकता को बदलने के लिए ही तो सरकार ट्रेनिंग पर पानी की तरह पैसा बहा रही है," गोरख ने शर्मा को उकसाया. "रहने भी दो. एक कम्प्यूटर की खरीद के लिए पता नहीं कितनी फाइलें खुलती होंगी, तीन-चार मंत्रालयों में 'रैफरेंस' करना पड़ता है और तुम फाइलों को ही खत्म करवा रहे हो. इतने कमरों में 'टर्मिनल' लगे तो है, क्या इस्तेमाल होता है? आधे वक्त तो 'पावर' गायब रहती है. ट्यूबलाइट तक तो जलती नहीं कंप्यूटर क्या चलेंगे", शर्माजी ने अपने मन का गुबार निकाला.

जब वह अपनी सीट पर लौटे तो उनके दिलोदिमाग पर फाइल छाई हुई थी. नये लड़कों को फाइल का महत्व समझाना पड़ेगा अन्यथा यदि सब गोरख के विचारों के हुए तो दफ्तर का तो शर्तिया भट्ठा बैठ जायेगा. "फाइल क्या है!" वह नोट-शीट सामने रखकर परिभाषा की खोज में लग गये. "एक विषय पर पत्राचार और टिप्पणियों का संग्रह जिसे अधिकारियों के आदेशार्थ समय-समय पर प्रस्तुत किया जाये", उन्होंने लिखा. उन्हें ख्याल आया कि जैसे शिवालय में प्रभु की प्रतिमा बसती है, वैसे ही सचिवालय में फाइल. उस पर शब्दों का चढ़ावा चढ़ता है और लाल-नीले फीतों से उसका नख-शिख श्रृंगार होता है. जैसे शास्त्रीय संगीत का सिद्ध साधक किसी भी शब्द का कचूमर निकालने में समर्थ है, फाइल विद्या के पटु उस्ताद किसी भी विषय पर ऐसी टिप्पणी लिख सकते हैं कि उसे पढ़ने की गुस्ताखी करने वाले को सिर-पैर तक न समझ आये. जो सीधे-सीधे मसले की जलेबी बना दे, उसमें प्याज की पर्त दर पर्त का भ्रम उत्पन्न कर दे, वह उतना ही सफल और प्रामाणिक 'टिप्पणीबाज' है. शर्माजी को यकीन हो चला कि इस कागज के मंदिर में उनका दर्जा पुजारी या तीर्थ-स्थान के पंडे का है, भक्त उन्हें भेंट चढ़ा उनके माध्यम से भगवान को पटाते हैं. फाइल का निजी जीवन में भी उपयोग है. शर्मा जी ने लड़कियों की शादी से लेकर रसद-लकड़ी के खर्चों तक के लिए घर में अलग-अलग फाइलें खोल रखी थीं. यह फाइल की ही कृपा थी कि उनकी बड़ी पुत्री रमा को सही वर मिला. दामाद सप्लाई के दफ्तर में सहायक है, और जम के 'कमा' रहा है. पिछले महीने ही तो उसने फ्रिज खरीदा है. आखिर ऊपर की आमदनी सिर्फ ऊपर वालों तक ही सीमित क्यों रहे! इस पर सबका समान हक होना चाहिए. यही तो समाजवाद है. उनके समता के सोच को साहब के सलाम ने आगे न चलने दिया. उपसचिव को विदेश यात्रा की तैयारी के दौरान क्यों मेरा ख्याल आ गया सोचते हुए शर्माजी सक्सेना के कमरे में दाखिल हुए.

"आपके सेक्शन का एक 'पार्लियामेंट-क्योश्चन' था, उसका क्या हुआ", जाते ही सक्सेना ने जानना चाहा. शर्माजी को पता था कि सरकार में समयबद्ध कार्यक्रम केवल संसद के सवालों का उत्तर देना है, "सर! एक माननीय सदस्य हैं जो हर सत्र में आकस्मिक

मजदूरों के बारे में जरूर प्रश्न करते हैं. पिछली बार उनकी जिज्ञासा थी कि मंत्रालय के अंतर्गत कितने आकस्मिक मजदूर हैं और पिछले पांच वर्षों में उनमें से कितने नियमित हुए. इस बार यह अवधि उन्होंने दस साल की कर दी है. मैंने सब उपक्रमों से सूचना मंगाने के लिए तार भेज दिया है. कल मुझे प्रशिक्षण संस्थान में एक भाषण देना है, परसों उत्तर आपकी मेज पर होगा." शर्माजी अपने लैक्चर का बताना न भूले।

"मुझे मालूम ही न था कि आप ट्रेनिंग में भी रुचि रखते हैं." सक्सेना ने प्रभावित होते हुए कहा. इस बार शर्माजी उपसचिव के कमरे की उपलब्धि को समोसे और चाय से मनाने सीधे कैंटीन चले आये. कल के लैक्चर की मानसिक तैयारी के लिए इससे अच्छा स्थान कहां था! फाइल की महत्ता बताकर वह प्रशिक्षणार्थियों को सचिवालय का महत्व समझायेंगे. लोकतंत्र में संसद उतनी ही आवश्यक है जितनी सरकार में स्टाफ–कार. संसद है तो सांसद सवाल पूछेंगे ही. उनके तारांकित और अतारांकित प्रश्नों के उत्तर के लिए जितने भी सचिवालय हों, कम हैं. यही कारण है कि प्रजातंत्र का सीधा संबंध सचिवालय से है. जाहिर है कि सचिवालय के सहायक लोकतंत्र के सजग प्रहरी हैं. अपने निजी लोकतंत्र में जनता का सफाया कर शर्माजी ने निश्चय किया कि वह सतत प्रशिक्षण की जरूरत पर प्रकाश डालेंगे. देश और दुनिया के परिवर्तनों के साथ चलने के लिए अनवरत ट्रेनिंग के दौर चलना चाहिए. वह अपनी बात गिनती के उदाहरण से स्पष्ट करेंगे. पहले लोग उंगलियों से गिनते थे, फिर पहाड़ों की मश्क करने लगे. उसके बाद कैलकुलेटर आये और कंप्यूटर .

दफ्तर का समय समाप्त हो चुका था. शर्माजी अपने भाषण में खोये अब भी अकेले सैक्शन में बैठे थे कि चलते–चलते गोरख उनसे विदा लेने आये. "भाभी से झगड़ा करके आये हैं या किसी प्रेमिका की आस में बैठे हैं." उन्होंने जानना चाहा.

"दोनों ही अनुमान गलत हैं! मैं तो कल की परीक्षा की तैयारी कर रहा हूं". शर्माजी ने रुकने का सबब बताया.

"लगता है, आप प्रशिक्षण संस्थान में सफलता के झंडे गाड़ कर ही मानेंगे. एक ही डर है. कहीं आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर संस्थान वाले आपको वहीं न रख लें. कमाऊ सीट भी जाये और अभी विशेष वेतन भी प्रथम श्रेणी के अधिकारियों के प्रशिक्षण संस्थानों के बराबर अर्थात तनख्वाह का तीस प्रतिशत नहीं है." गोरख ने मजाक किया.

"कौन हमारे जैसे बी.ए. फेल को लेगा. गोरख! नये लड़के होंगे. उन्हें नौकरी में सफलता के सूत्र भी बताने चाहिये. तुम्हारा क्या विचार है," शर्माजी ने बात का रुख फिर अपने लैक्चर की ओर मोड़ा. गोरख ने शर्मा जी से चार-समोसे का आश्वासन लिया और शुरू हो गये. "तो सुनिये! मेरी राय में कामयाबी का पहला उसूल है, कोई उसूल न होना. साहब के हर आदेश का सिर्फ एक उत्तर यानी 'यस सर'. दूसरा वह है जो आप कर रहे हैं: दफ्तर पहले आना और अधिकारी के जाने की प्रतीक्षा करना. चाहे दिनभर आप पैंसिल छीलें पर दर्शायें यह कि आप काम के बोझ से मरे जा रहे हैं. अधिकारी का अनुकरण करें. हावभाव से लेकर सिद्धांत–विचार और कपड़ों तक. यदि वह राम का भक्त है तो आप भी रामायण गायें और यदि रावण का तो आप लंका का डंका बजायें. वैसे आप चिंता न करें. नयी पीढ़ी सफलता के सारे गुर जानती है", गोरख आगे गुरुदीक्षा दे पाते कि शर्माजी के लिए उप सचिव का बुलावा आ गया.

संसद के सवाल वाली फाइल लेकर शर्माजी पहुंचे. सक्सेना ने उन्हें देखते ही सूचित किया, "ट्रेनिंग में एक जगह खाली थी. मैंने सचिवजी से आपके नाम की सिफारिश कर दी है." वह अपना ब्रीफ–केस उठा चलते बने. शर्माजी 'चल बसने' की मुद्रा में बाहर आये. गोरख प्रतीक्षारत थे. शर्माजी ने अपनी त्रासदी सुनायी. "अभी तो केवल प्रस्ताव है. क्या पता स्वीकार न हो. हो सकता है आपकी वहां नियुक्ति तक विशेष वेतन भी मिलने लगे", गोरख ने दिलासा देने की कोशिश की.

"मैं तो सोच रहा हूं कल भाषण देने के बजाय 'कैजुअल' लेकर घर का राशन–पानी ले आऊं. मुझे लगता है यह सारी शरारत पार्थसारथी की है. सक्सेना तो गऊ है, इसी ने उन्हें उल्टी पट्टी पढ़ाई होगी. मैं हटा और यह अपने किसी चमचे को 'पोस्ट' करवा लेगा. हो सकता है कि 'लेक्चर' का 'इन्विटेशन' भी इसी ने कह–सुन के भिजवाया हो. संस्थान का निदेशक भी इसी का डोसा–भाई है." शर्माजी का मन शंकाओं से घिर गया था. गोरख ने उनकी हां में हां मिलायी. प्रमोशन के पैनल में अब उनकी ही बारी थी. यदि शर्मा गया तो उसके सैक्शन–अफसर बनने का 'चांस' था. कल आते ही वह पार्थसारथी और सक्सेना को सलाम करेगा. "चलता हूं बंधु! यदि भगवान ने चाहा तो संस्थान में आपका तबादला नहीं होगा. मेरी मानें तो लैक्चर तो आप दे ही दें. कुछ पारिश्रमिक ही मिल जायेगा. फिर आपने इतनी मेहनत भी की है!" यह सलाह देकर गोरख अपने रास्ते चलते बने. □
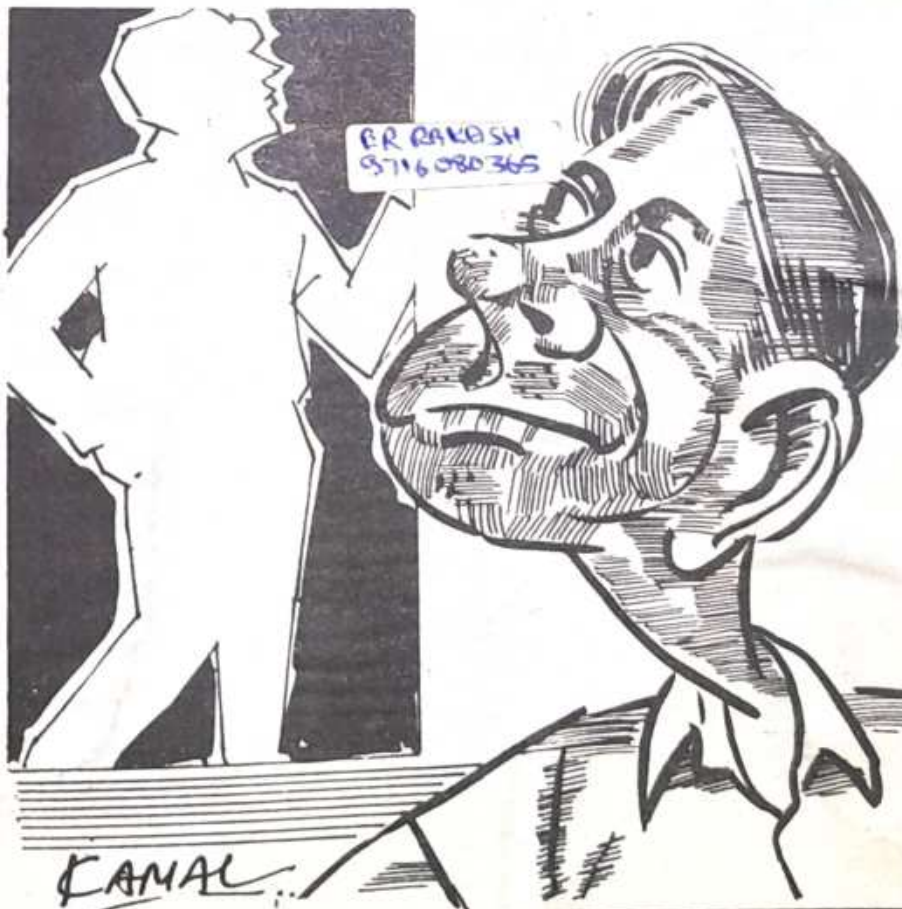
'मन क्यों उदास है', 'हीरे की चोरी', 'गुलबदन', 'कगार और फिसलन' (लघु उप.)
संप्रति : हिंदी प्राध्यापक
संपर्क : 71/1, वेस्टर्न बाजार, गल्ला मंडी मुगलसराय, वाराणसी

रंगनाथ राकेश

बंटवारा

प्यार और घृणा ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो आदमी को कुछ भी करने पर बाध्य करती हैं. पशु कभी राय नहीं लेता और पशु की—वह सूंघता है, चाटता है, स्पर्श करता है और निर्णय ले लेता है. पर आदमी ऐसा नहीं करता....

"और वह सोने की छल्लेदार अंगूठी!"

"कौन-सी अंगूठी?"

"जो दादाजी के दाहिने हाथ की अनामिका में थी, तीन लपेटवाली छल्लेदार अंगूठी!"

"उसे तो दाह करते समय डोमड़े को दे दिया था, भइया."

"तुम झूठ बोल रहे हो जगदीश, क्यों अठन्नी भर सोने के लिए अपनी आत्मा बेच रहे हो? क्या तुम्हें तुम्हारा अंत:करण नहीं कोंचता है। हे ईश्वर!!"

"भाई साहब, मेरी आत्मा तो मर चुकी है. कचहरी में काम करते-करते मैं हमेशा ही झूठ बोलने का आदी हो गया हूं. रुपया ही सबसे बड़ा धर्म है, वही परलोक है....."

"चुप रहो!" बड़े भाई ने डांटा था उसे.

भीतर आंगन में दतकिटकिट और एक दूसरे ही महाभारत का उद्योग पर्व शुरू था. औरतों की कांव-कांव, झांव-झांव का प्रथम अध्याय शुरू हो चुका था. बुलाकी चाची और देवराजी रानी देवरानी जिठानी थुक्का फजीहत और गालीगलौज पर उतर आयी थीं. दोनों बहूएं पल भर को सन्नाटे में आ गयीं. फिर अपनी-अपनी सास की ओर खड़ी होकर व्यूह बनाने में तत्पर हो उठीं. तीसरी बहू, जो अभी लरकोरी थी, हाल ही में मां बनी थी, काठ की तरह नोना दीवार से पीठ सटाये खड़ी थी. अगवारे-पिछवारे और ऊपर से औरतों-बच्चों के चेहरे झांकने लगे. आवाजें तैरने लगीं – "....अरे का भयल हो क्रेसमुरारी बोके! अरे बहिनी, भाई के हक्काऽ-हिस्सा घोंटि के केहू सुख ना कै पावतऽ! जौन बा तौन मे सामा बोक कुल हिस्सा ई सुखंडी खाय गइल!"

''च्च्वSS सामा बेचारु त= देवता रहलें= देवता! सबके सुरती दे देत रहलें अउर जनेऊ त उनके संधे-संधे चल गइल. अब त असुद्ध जनेऊ चौकियां के बजार से खरीद के ई अचारी खानदान पहिराला, हां, बहिनी हां, —असोकवा के देखत कैसन तरेरत बा! सुने में आवेला की अठारह हज्जार बुढ़वा क रहेल, आधा त सामा को बेटवा का मइल न, का हो पंडाइन बो.....मो का जानी गोइयां, जौन-बा-तौन से भाई क हक्क-हिस्सा जे लेला ओकरे कोढ़ फूट जाला, निरबंस होइ जाला.''

''भगा, भगा इन सभी को, बड़ा मजा मिल रहा है दूसरे की पंचायत में! हकड़कर जगदीश बोल उठा. अगल-बगल के चेहरे छछूंदर सरीखे कहीं छिप गये.

''असली मुद्दे पर आओ जगदीश!''

''आप ही बतायें न!'' स्वर में प्रगल्भता थी.

''सेविंग एकाउंट वाली पासबुक दिखाओ तुम पहले, इसी से शुरू किया जाये.''

''मुझे नहीं पता. मुझे मिली ही नहीं. मैं कसम खा सकता हूं अपने बेटों की....''

''फिर सरासर झूठ बोल रहे हो!''

''मैं नहीं बताऊंगा!''

''क्यों, आखिर क्यों!''

''आप जब भाभी के गहने दादा जी से मांगकर कलकत्ते ले गये थे, तब मैंने उसमें हिस्सा बटाया था!''

''क्या उसमें तुम्हारा हिस्सा होता है!''

''हां, आपकी शादी सन् 1953 में जब हुई तब मैं बारह साल का था, आप हाई स्कूल पास करके....''

''बेकार की बात छोड़ो, असली प्वाइंट पर आओ, तुम्हारा हिस्सा भाभी के गहनों में कैसे होता है! मेरे कयास में यह बात नहीं धंसती. यह भी क्या तर्क है!''

''मीठा-मीठा गप्पू गप्पू, कड़वा-कड़वा आक्थू! भइया...'' जगदीश का स्वर.

''जुबान संभालकर बोलो, जगदीश, ऐसा न हो कि चंद पीतल-तांबे के बर्तनों और आठ-दस बीघे जमीन के टुकड़े के लिए हमारा पारस्परिक भाईचारा भी खत्म हो जाये.''

''भइया, जब कल मेड़ पड़ चुकी खेतों में तब और क्या रहा!''

''क्या दिल के बीचोंबीच भी रस्सी से नाप कर आधा बंटवारा कर दिया है?''

जगदीश जवाब नहीं देता. फिर भी उसकी धूर्त आंखों में भी खारा पानी चुहचुहा उठता है.

बड़ा भाई ससुराल से वापस आकर रस्सी और लट्ठा लेकर खेतों की ओर चला गया था और खेतों में मेड़ डाल दी गयी थी. यह टाला नहीं जा सकता था, अतः बड़े भाई ने ही निर्णय लिया था.

बड़े भाई की मानसिक आंखों में तीस साल पहले के दृश्य साकार होने लगे — गंगा-स्नान से लौटते समय पुजारी श्यामा मोहन तिवारी तुलसीदास की चौपाई विह्वल कंठ से गा रहे हैं — और साथ-साथ वह पांच साल का बालक बड़ा-सा तरबूज लिए चला आ रहा है. श्यामा पंडित पाठ करते आ रहे हैं—

'सुनहु भरत भाभी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ,
हानि-लाभ-जीवन-मरण-जस-अपजस विधि हाथ'

...आरती हो रही है, विजयघंट और घड़ियाल बज रहे हैं, पंच-प्रदीप वाली आरती लिए उसके पिता का प्रभा दीप्त पर निरीह-सा मुखमंडल! पिता और गांव के ठाकुरों के समवेत स्वर गूंज रहे हैं—

...त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम् देव देव!
...अपराध सहस्र भाजनम् पतित भीम भवार्णोदरे।
...अगति शरणागतिम् हरे, कृपया केवलम् आत्मसात कुरु।।

...इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी बोलते भये सो हे राजन्! जब कंस ने उस लड़की के पैर पकड़कर घुमाये तभी दैव संयोग से वह छूटकर आकाश की ओर चली गयी. सो जो है सो. —अरे सामा पंडित, तनी एक बीड़ा तSदSमई —बिना 'चैतन्य चूरण' (सुरती) के बिना सरवा कथा-ओथा कुच्छू नहीं जमेला! 'सुखसागर' सुनाते-सुनाते यह क्षेपक भी सुना था श्यामा पंडित के इस इकलौते बेटे ने. क्षेपक बोल गये थे कथावाचक रामधारी सिंह ठाकुर कुर्था गांव के.

बुढ़ऊ दादा, जिसे इस वैष्णव तिवारी खानदान में 'बब्बा' की संज्ञा से पुकारा जाता था, ने बड़े बेटे को रोगी और निठल्ला समझकर हमेशा हेय ही समझा था. दादा के बड़े बेटे श्यामा मोहन का बेटा जो इस परिवार में बड़ा भाई था, अपने आदर्श और बड़प्पन के नशे में अलाउद्दीन खां के सितार की तरह बजता ही जा रहा था. बब्बा के सामने ही उनका छोटा बेटा कृष्ण मुरारी तैंतीस की भरी जवानी में ही चल बसा और पचास की उम्र में बड़ा बेटा श्यामा मोहन भी चल बसा था. बुढ़ऊ बाबा था, पुरानी काठी का पके शीशम-सा. दादी जी कहा करती थीं कि जवानी के दिनों में एक भैंसे को पीठ पर लादकर धोबियापाट के दांव से चित्त कर दिया था. उस जमाने में सन् उन्नीस सौ पंद्रह में अरबी घोड़ी पर सवारी कसता था और छह सेर भैंस का दूध अनायास ही पीकर झट से हजम कर जाता था. नाम था राजनारायण तिवारी. विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र, और शंकराचार्य की 'चर्पटपंजरिका', भिनसहरे ही बुढ़ऊ के कंठ से प्रतिध्वनित होती थीं.

अंगम गलितम् पलितम् मुंडम्.
दशनविहीनम् जातम् तुंडम्.
वृद्धो याति गृहीत्वा दंडम्.
तदपि न मुंचत्याशा पिण्डम्.
भज गोविंदम्, भज गोविंदम्.

और बुढ़ऊ बाबा खुद ही इस स्तोत्र के मूर्तिमान रूप थे. चौरासी की आयु में भी उनका लोभ बरकरार था. परिवार की बड़ी पौत्रवधू का सोने का बाजूबंद और गले का हार मरते-मरते भी बूढ़े ने छोटे पौत्र को ही दिया जबकि जायज हक बड़ी पौत्रवधू का था.

प्रेशर कुकर के भाप की तरह उबलती हुई शंका भीतर-ही-भीतर उमड़-घुमड़कर विश्वास को गला रही थी. संभावना के अंदाज पर ढक्कन बिठाकर उस शंका को रोक पाना असंभव था अब. फिर रही-सही संभावना भी काई की तरह फटकर साफ हो गयी थी. बड़े भाई को यह कयास था कि शायद जगदीश का अंतःकरण जगे, उसका जमीर उसे कोंचे, पर 'तुख्म-तासीर सोहबते-असर' की कहावत उस पर चरितार्थ हुई थी सोलहो आने. बड़े ही अभिमान से जगदीश गाहे-ब-गाहे बेशर्म होकर कहा करता था—''भाई साहब, मैं तो घूस लेता हूं और घूस देता हूं—उस दिन पंद्रह रुपये घूस लिया था तीन सौ छप्पन नंबर के दीवानी मुकद्दमें का और अपने लड़के के सातवीं में फेल होने पर सात रुपये पास कराई भी दी थी!''

हद है, आदमी अपनी औकात भूलकर कितना नीचे उतर सकता है. खुदगर्ज आदमी कितना नीचे उतर सकता है—इसका कयास भी नहीं लगा सकता उससे संबंधित दूसरा आदमी. बाढ़ से उफनती हुई नदी के नाले की तरह आदमी सारी गंदगी को समेट लेता है. जगदीश की दशा ठीक इसी तरह की थी. प्यार और घृणा ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो आदमी को कुछ भी करने पर बाध्य करती हैं. पशु कभी भी राय नहीं लेता किसी दूसरे पशु की — वह सूंघता है, चाटता है, स्पर्श करता है और निर्णय ले लेता है. पर आदमी तो ऐसा नहीं करता है...! आदमी ढिंढोरा पीटता है, राय लेता है क्योंकि वह पाशविक वृत्तियों से परे जमीर से भी काम लेता है. यह विवेक ही तो उसका शत्रु है और यही विवेक उसका दोस्त भी

श्यामा का बेटा अर्थात् परिवार में जो बड़ा भाई है— वह सत्रह अठारह साल से कलकत्ते में ही रह रहा है. अपने ही पैरों पर खड़े होकर उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. किया और फक्कड़मस्ती में

महान बलिदानी पन्ना दाई

राधाकिशन चादवानी

मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह के देहांत के समय उनके पुत्र उदयसिंह की अवस्था बहुत छोटी. उनके निकटतम वंशज राणा विक्रमादित्य को चित्तौड़ का सिंहासन सौंपा गया, परंतु वह नितांत अयोग्य सिद्ध हुआ. इस लिए राजपूत सरदारों ने राजकार्य की देखरेख तथा संचालन के लिए पृथ्वीराज के दासी पुत्र बनवीर को चित्तौड़ की गद्दी पर बिठा दिया.

गद्दी पर बैठते ही वह निष्कंटक राज्य करने के लिए स्वप्न देखने लगा. वह राणा विक्रमादित्य और बालक राजपुत्र उदयसिंह को अपने पथ के कांटे समझने लगा. बनवीर जानता था कि सिंहासन का वास्तविक अधिकारी विक्रमादित्य है. और उसके बाद गद्दी पर अधिकार उदयसिंह का है. वह सोचा करता था कि यदि कभी उसे हटाकर राजगद्दी पर विक्रमादित्य या उदयसिंह को बैठाया गया तो यह उसके लिए घोर अपमान की बात होगी. इस लिए वह इन दोनों को अपने पथ से हटाने के मनसूबे मन ही मन सोचने लगा, जिस से कि वह इन दोनों को हटाकर निश्चित होकर निष्कंटक राज्य कर सके.

सेवक की बात सुनकर पन्ना कांप उठी. वह समझ गयी कि यह कार्य शिशोदिया कुल के लिए अहितकारी है, और यह अधम बनवीर अवश्य राजकुमार उदयसिंह को भी अपने पथ से हटाने का प्रयास करेगा.

कुछ पल सोचकर वह फुर्ती से उठी. सेवक से उसने फल-सब्जियां रखने का एक बड़ा-सा टोकरा मंगवाया. जल्दी से टोकरे में कपड़ा बिछाकर राजकुमार उदयसिंह को सावधानी से उसमें लिटा दिया. टोकरे में बहुत से पत्ते डालकर राजकुमार को पूरी तरह से ढक दिया. इसके बाद उस विश्वास पात्र सेवक के साथ टोकरा जल्दी से राजमहल के बाहर किसी सुरिक्षत स्थान पर भिजवा दिया.

राजकुमार के राजमहल से सुरक्षित बाहर निकल जाने के बाद पन्ना दाई ने जल्दी से राजकुमार के समवयस्क अपने पुत्र को राजकुमार के कपड़े पहना कर शाही पलंग पर सुला दिया

थोड़ी देर में बनवीर खून से सनी नंगी तलवार हाथ में लिए वहां उपस्थित हुआ, "पन्ना! उदयसिंह कहां है?"

पन्ना दाई ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर पुत्र की ओर हाथ से संकेत कर दिया.

घाट-घाट का पानी पीता ठोकरें खाता रहा पर लिखता रहा पत्र-पत्रिकाओं में, आकाशवाणी में प्रसारण करता रहा है. आज तक वह जिस रामानुजीय स्मार्त वैष्णव परिवार में पैदा हुआ है वहां आचमन करते समय चरणामृत देते समय 'ॐ अपवित्रोपवित्रोवा-सर्वावस्थागतोऽपि वा, यः स्मरेत्पुंडरीकाक्ष स वाह्याभ्यतरः शुचिः' मंत्रोच्चारण होता रहा है, परंतु पुंडरीकाक्ष विष्णु के स्मरण से अंतर कहां शुचि हुआ? बाहर भले ही दिखावट के लिए लाल तिलक श्वेत चंदन से, दूसरों को यह परिवार पवित्र लगता रहा हो.

श्यामा मोहन के इस इकलौते बेटे के बड़े ही खट्टे-मीठे-तीते अनुभव हैं—हां, याद आ रहा है – सिउबहाल अहीर का हवन करके जीन की हाफ पैंट पहने वह जब पवहारी बाबा के आश्रम के अहाते में घुसा था तो बूढ़े बाबा ने कड़क कर पूछा था—"दक्षिणा क्या मिली रे!" और उत्तर की परवाह किए बगैर हाफ पैंट की जेब से अठन्नी के रजगारी पैसे निकालकर अपने टेंट के हवाले कर दिये थे. उस दिन बहुत रोया था. तब का श्यामा का बेटा—आज का बड़ा भाई. उस संकल्प-मंत्र पर से उसकी आस्था टूट गयी थी '—श्री श्वेतवाराहकल्पे जंबूद्वीपे भरत खंडे... शांडिल्यगोत्रोत्पन्नमहम्...करिष्ये...' नचिकेता जैसी मन:स्थिति हो उठती थी कभी-कभी. यमराज के यहां वह काश पहुंचा होता.

हंसी कोई कवायद तो है नहीं कि लेफ्टराईट किया और होंठों को एक खास अंदाज में खोल दिया. यह भीतर की तड़प से आती है. बुढ़िया आजी यानी दादी ठठाकर हंसती थी मानो हरसिंगार के फूल उनके होंठों से चू रहे हों. गोरी इतनी कि जैसे पीलापन लिए हुए कोई आग जल रही हो. कभी कभी तो आंगया बैताल हो जाती थीं और चीखकर गाली देने लगती थी— गड़बाकाटी-ई-ई-ई! 'ई' पर एक प्रकार का उनका खास बल होता था जैसे पंचम और सप्तम स्वर एक ही साथ बज उठते थे. आज तक इस 'गड़बाकाटी' शब्द का अर्थ बहुत मूड़ मारने पर भी समझ में नहीं आया. अगर 'गाढ़ी विपत्ति को काट देने वाली' में इसका अर्थ था तो यह बात गाली-गलौज के संदर्भ में कहीं नहीं बैठ पाती थी. काश, वे जीवित होतीं तो यह थुक्का-फजीहत नहीं हो पाती. कभी-कभी वे बुढ़ऊ से झगड़ पड़ती थीं. वे कहा करती थीं "—ली आवा-आ तू हमार छत्तीस बिगहा खेत, ली आवा-आ, हां नहीं तो! ओरचा भोर गएल रहल चांदी के रुपयन से." बुढ़ऊ सिर्फ सिर खुजाकर पैर पटकते हुए कहते थे "—हरामजादी चुप्पौ रह-अ-अ!"

पीछे की याद आती है. चाचा ने कहा था—"भाभी का पैर छू ले रे चांडाल!" और मिनमिनाते हुए जगदीश ने उज्र किया था – "हूं एतना छोट लड़की के हम गोड़ ना परब!" तड़ाक! एक चांटा उसके सांवले गाल पर पड़ा था और दर्द के मारे वह केंचुए जैसा कुलबुला उठा था. चचेरा भाई होने पर भी आखिरकार है तो भाई ही. विवाह में वही सहबाला बना था. बड़ा भाई दूल्हा था. इंटरमीडिएट पास करके ज्यों ही वह अभी बनारस जाने की तैयारी कर रहा था कि बुढ़ऊ ने उसे जलालगंज के एक दुबे की कन्या से बांध दिया. पालकी जा रही है. जायकेदार जौनपुरी पीले खरबूजों के खेतों के बीच से. खरबूजे स्वर्णगोलक से चमक रहे हैं. कहारों का ठेका... 'हो भइया बचाइ के-ए, दहिना दाब के. अरे तनी दुलहिनीया के त-अ पूछ ले भइया. सायद 'पियासल' होय.' बड़ा भाई उसी पालकी में लजाकर गठरी-सा बन गया था... बड़की माई कुल देवे, सब देवे, अरे बाप रे बाप, गरदन दबावत बा, सपने में जगदीश सब कुछ कबूल कर गया था लेकिन जगने के बाद उस पर उसी दीवानी कचहरी का सारा संस्कार ज्यों का त्यों हावी हो गया. मन के भीतर की आस्था को और वंश के उस अभिजात संस्कार को उसने जैसे कुचलकर मार दिया था.

हां, ठीक ही है! आज पुरानी बखरी खंडहर हो गयी है. चाची की आंखों पर मोटे लेंस का चश्मा चढ़ गया है. जौनपुर में दीवानी कचहरी के पास नहर कॉलोनी में उसने एक मकान बनवा भी लिया है. लेकिन क्या उसके हृदय में शांति है? बड़े भाई ने तो कहीं कोई भी विरोध नहीं किया था और वह आज भी नहीं करता है. यह जरूर है कि बड़े भाई की पत्नी अपने पति को 'कायर' और 'नालायक' समझती रही है.

खेतों में मेड़ पड़ गयी है. दोनों अलग-थलग हैं. लेकिन इस रिश्ते का भला क्या बंटवारा होगा? आज भी जब वह झुककर बड़े भाई को प्रणाम करता है तो कहीं-न-कहीं उसके मन में एक हूक-सी उठती है और वह जैसे भीतर ही भीतर दंशित होकर नीला पड़ जाता है. शायद खून, जिंदा खून, रगों में दौड़ते हुए खून का बंटवारा नहीं किया जा सकता. उसे ऐसा ही महसूस होता रहा है.

आज मई की इस चिलकती हुई धूप में जौनपुर की न्याय-पालिका में तीसरे तल्ले पर जब जगदीश ने झुककर बड़े भाई के पैरों को छुआ तब भी बड़े भाई को यही लगा शायद बंटवारा संभव नहीं है. □

कथा दर्शन

सुधीश पचौरी

अपराध-कथा अपराध है

सत्यजित रे प्रेजेंट्स' सीरियल की वर्तमान शृंखला में जो तीन कथाएं दिखाई गयी हैं वे दर्शकों के कुतूहल, जिज्ञासा, अनहोनी का इंतजार आदि पर खेलती हैं. एक दूसरे स्तर पर और कई बार बिल्कुल भिन्न अर्थ में यही 'खेल' 'करमचंद' किया करता था, अंग्रेजी का सीरियल 'शरलॉक होम्स' किया करता था, 'अदालत' भी (यद्यपि भौंडे ढंग से) करता है. ये सीरियल, जिन्हें आम भाषा में जासूसी या अपराध कथा कहा जाता है, सामान्य कथा-सीरियलों से अधिक लोकप्रिय होती हैं. करमचंद के लिए लोग रात के साढ़े दस बजे तक इंतजार करते रहे हैं. सत्यजित रे प्रेजेंट्स की वर्तमान तीनों कहानियां इसी जासूसी या विज्ञानकथा विधा के अंतर्गत रखी जा सकती हैं. बहुत से लोगों को हैरत हुई है कि 'पथेर पांचाली' का निर्देशक मूलतः जासूसी कथाओं का लेखक है. वैसे बंगला में सत्यजित रे किशोर एवं बच्चों के लोकप्रिय कथा लेखक के रूप में विख्यात हैं. उनका जासूस चरित्र फेलू दा उर्फ प्रदोष मित्र बंगला पाठकों में अरसे से लोकप्रिय रहा है और इस सीरियल में 'किस्सा काठमांडू' भी फेलू के कारनामों को कहता है.

सत्यजित रे के इस जासूसी व्यतिक्रम पर नाक भौं सिकोड़ने से पहले हमें यह समझ लेना जरूरी है कि जासूसी कथाओं की लोकप्रियता का मनोविज्ञान क्या होता है? अपराध और सजा की कथा-विधा मूलतः आधुनिक पूंजीवादी संबंधों की मध्यवर्गीय व्याख्या का परिणाम है. समाज ज्यों-ज्यों व्यक्तिगत पूंजी के स्वामित्व से संचालित होता गया त्यों-त्यों अपराध भी पूंजी की छीन झपट से जन्मने लगे और व्यक्ति अपराधी या पूरे गिरोह भी जन्म लेने लगे. यहां आकर अपराध, कानून और सजा एक सूत्र में उपस्थित होने के कारण लोकप्रिय साहित्य में आसानी से आने लगे. यहीं से अपराधी और जासूस चरित्रों का जन्म हुआ. इस तरह ये चरित्र पूंजीवादी समाज की शांति एवं व्यवस्था या ऐसे समाज की परिपूर्णता पर प्रश्नचिन्ह की तरह मौजूद हुए. जब तक साहित्य में ऐसे चरित्र आयेंगे तब तक वह समाज अपने रोगों को छिपा नहीं सकता. इस अर्थ में अपराधी या जासूस, परस्पर पूरक होकर, रोगी समाज का दिलचस्प आईना कहे जा सकते हैं जो बीमारी को व्यक्तिगत या कानूनी पर्यास्थिति के भीतर कैद करने का भ्रम देते हैं. एक जासूस अपराधी को पकड़कर लाता है तो हम मूलतः उस समाज की क्षमता पर यकीन करके भ्रम पालते हैं कि बीमारी व्यवस्था में नहीं थी, व्यक्तिगत थी, ऊपरी थी और एक अच्छा जासूस, अच्छा कानून और पुलिस उसका असली इलाज है. इस नजर से जासूसी कथा विधा शुद्धतः बुर्जुआ व्यवस्था की कथा विधा है. इसकी लोकप्रियता बुर्जुआ व्यवस्था की व्यापक लोक स्वीकृति का प्रमाण है.

किंतु क्या जासूसी कथा विधा सिर्फ इसलिए अ-साहित्यिक है कि वह एक बुर्जुआ सांस्कृतिक विधा है? घृणा करने वाले, ऐसे कारण नहीं गिनाते. सत्यजित रे के फेलू दा को लेकर लिखी कहानियों (या इस

क्या होता है आखिर जासूसी कथाओं की लोकप्रियता का मनोविज्ञान...? 'कथा-दर्शन' में इस बार स्तंभकार उन सूत्रों को तलाश रहे हैं जिनसे जासूसी या अपराध-कथाओं पर आधारित 'सीरियल' अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं...

सीरियल) को लेकर अनेक लोग माथा पीटते हैं कि यह सत्यजित रे को क्या हो गया? वे जासूसी-लेखक को 'सस्ता' कहकर 'कीमती' (एलीट) के मुकाबले घटिया मानते हैं. अनेक तो जासूसी कथा के नाम पर उल्टी करने लगते हैं. हिंदी में अपना कोई साहित्यिक जासूस लेखक नहीं मिलता तो इसका कारण यही है यहां अभी पूंजीवाद समाज के समूचे अंतर्विरोधों का साक्षात्कार करने में साहित्यकारों को शर्म आती है या कि वे स्वयं इसके जाहिलपन के हिस्से होने के नाते उसे देख नहीं पाते. वे हिचकाक को पसंद कर सकते हैं, वे शर्लाक होम्स से लेकर हेडली चेइज के उपन्यासों को पसंद कर सकते हैं, किंतु सत्यजित रे की कहानी को धिक्कार सकते हैं.

यहां वेद प्रकाश कांबोज, ओमप्रकाश शर्मा, इब्नेशफी आदि के उपन्यासों या अनाम लेखकों का दोहन करके छापे गये बाड़ जासूस कथाओं की चर्चा अभीप्सित नहीं है, यहां देखना सिर्फ यह है कि जासूस कथा-विधा जैसी मास कल्चर को हिंदी में कायदे से समझा गया है या नहीं. अंग्रेजी में जासूस कथा के बाकायदे चरण नजर आते हैं. शुरू शुरू में शर्लाक होम्स निजी जासूस हैं, वहां निजी पूंजी की चोरी, डकैती, हत्या का खेल है जिसे उसे बारीकी से सुलझाना है, बाद में धीरे-धीरे हत्या और हिंसा बढ़ती है, शुरुआती तर्कशीलता तर्कहीनता में (इयान फ्लेमिंग का जेम्स बांड) महाकाव्य में बदल जाती है. यह जासूसी के खात्मे और महानायकत्व की शुरुआत है जिसके रूप को आप अपराधी से अलग नहीं कर सकते. शुरुआती होम्स का नायकत्व (यहां आकर) (व्यक्तिगत कहिए, उद्यम और बौद्धिक क्षमताओं वाली नायकत्व) समाप्त हो जाता है. हमारे यहां हिंदी में भी चंद्रकांता संतति से लेकर आज तक रहाना रोमांच और जासूस कथाओं का विकास देखा जा सकता है.

सत्यजित रे का फेलूदा शर्लाक होम्स के ज्यादा नजदीक बैठता है क्योंकि वहां अपराधी की बुद्धि के मुकाबले फेलूदा की बुद्धि की टक्कर अधिक नजर आती है, तर्कहीनता और हिंसा (जेम्स बांडीय) कम नजर आती है, यहां अपराधी, अपराध के दर्शकों और जासूस के मनोविज्ञान की ओर ध्यान खींचा जाता है. अपनी ऐसी अनेक कथाओं में सत्यजित रे ने मानव मन की अपराध वृत्ति, प्रपंच और जालसाजियों का भंडा फोड़ दिया है, 'किस्सा काठमांडू' किसी एक्शन फिल्म की धायधाय में खत्म नहीं होता बल्कि अपराध जगत के तंत्र की पड़ताल करता है, इस तरह एक बुर्जुआ विधा स्वयं बुर्जुआ पतन के अध्ययन का बहाना बन जाती है. 'शोध' में चोरी करने वाले वैज्ञानिक का अपराध बोध और क्रूरता उसे मनोरोगी बना डालती है और वह 'भूत' के डर से भाग जाता है, चारों तरफ अन्याय के बोलबाले में यह कवि-न्याय भी बुरा नहीं लगता.

यह सीरियल अपराध-कथा से हमारे लेखकों के व्यर्थ के परहेज को तोड़ता है और जासूसी कथा के प्रति मूर्खता पूर्ण समझ को चुनौती देता है. □

कृतियां

नागार्जुन के एक प्रशंसक रामविलास शर्मा ने बहुत पहले अपनी इच्छा इन शब्दों में व्यक्त की थी : "नागार्जुन की सारी कविताएं एक जगह संकलित होकर छप जायें तो इससे नागार्जुन की कवि-प्रतिभा के अलावा हिंदी कविता के विकास का भी मूल्यांकन और हिंदी पाठकों को हो जाये। पत्र-पत्रिकाओं से उनकी रचनाएं समेट-

लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य का संतुलन : नागार्जुन

कर उन पर एक छोटा-सा लेख लिखने के लिए भी आलोचकों को काफी अनुसंधान करना पड़ता है।" —लगभग आठ वर्ष बाद (सन 1986 में) **'नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएं'** के साथ रामविलास जी की यह इच्छा पूरी हुई; और इच्छा का प्रतिफलन भी हुआ तो उनकी (कल्पनिक) इच्छा से कुछ ज्यादा ही कर हो।

किसी कवि-कथाकार का अपने रचनात्मक जीवन के उस मोड़ पर पहुंच जाना जहां वह अपने पाठक समाज के लिए कभी (आधुनिक) कबीर तो कभी प्रेमचंद की परंपरा का विकास करने वाले अन्यतम कथाकार; और तो और युवा कवि-लेखकों की पीढ़ी के बीच रचनात्मक ऊर्जा की अलख जगाए रखने वाला आदर्श सबक या प्रतिमान बन जाए तो [illegible] ही ऐसे समय में इस प्रकार की रचनाओं का प्रकाशन न केवल आलोचना की दृष्टि से अपनी सार्थकता रखता है बल्कि साहित्य के ऐतिहासिक मूल्यांकन की दृष्टि से भी विशेष महत्व का है।

नागार्जुन पर तीन खंडों में प्रकाशित सामग्री का संचयन और संयोजन शोभाकांत मिश्र ने किया है। पहले खंड में—'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'वरुण के बेटे' और 'कुंभीपाक'—चार उपन्यास कालक्रमानुसार दिए गए हैं। जबकि पुस्तक के संपादक ने प्रारंभ में स्वयं कहा है कि 'नागार्जुन के कुल तेरह उपन्यास हैं, ग्यारह हिंदी में और दो मैथिली में'। यदि उक्त चार उपन्यासों के संचयन के पीछे कौन-सी दृष्टि है, यह भी साफ कर दिया जाता तो बेहतर होता। दूसरे खंड में 'युगधारा' (1953) काव्य-संग्रह से लेकर नवीनतम कविता संग्रह 'ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!' (1985) की तमाम उन कविताओं को चुना गया है जो नागार्जुन की कवि संवेदना के समग्र पक्षों को अपनी दृष्टि की परिधि में समेटकर उनके वैविध्य में भरे कवि-व्यक्तित्व की समग्र पहचान कराती हैं। कविताओं के अंत में जहां रचनाकाल दिया गया है वहां साथ ही यह भी बताया जाता कि वे कौन-सी पत्र-पत्रिकाओं अथवा पुस्तक में प्रकाशित हुई हैं तो ज्यादा अच्छा होता। और तीसरे खंड में कविता और उपन्यासों से इतर अन्य साहित्यिक विधाओं-निबंध, कहानियां, यात्रा-संस्मरणों, अनुवाद-आलोचना, भाषण-साक्षात्कारों एवं पत्र-साहित्य से चुनकर वह सामग्री प्रकाशित की गई है जिसमें विविधता की अनूठी झलक दिखाई देगी।

नागार्जुन जिस समय हिंदी के रचना-संसार में अवतरित हुए उस समय छायावाद की कैफियत खत्म हो चली थी और प्रगतिशील मूल्यों का बोलबाला था। नयी कविता अज्ञेय के नेतृत्व में चल कर 'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के माध्यम से अपनी जड़ें जमा चुकी थी। इधर नागार्जुन की कविताएं बहुत-सी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती आ रही थीं और प्रगतिवाद की भी साहित्यिक प्रतिष्ठा हो चुकी थी। लगभग इसी समय 1953 में नागार्जुन का हिंदी में पहला कविता संग्रह 'युगधारा' के नाम से प्रकाशित हुआ। इससे पहले वे मैथिली भाषा में कविता करते रहे; और कवित्व का आरंभिक उन्मेष तो संस्कृत के माध्यम से हुआ। नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर जब टी.एस. इलियट, एजरा पाउंड और डी.एच. लॉरेंस की ओर आंख लगाए बैठे थे ऐसे में युगधारा जैसा कविता संकलन और उपन्यास के क्षेत्र में 'रतिनाथ की चाची' (1948) और 'बलचनमा' (1952) जैसी कृतियां अपनी धरती के ठेठ-ग्रठ में जुड़कर उपन्यास को नया जीवन देने में पहल कर रही थीं।

हिंदी कविता में जब कलावाद का जोर बढ़ा तो बहुत सारे प्रगतिशील कवि उस धारा में भटक गये लेकिन त्रिलोचन और नागार्जुन जैसे कवि अपनी जमीन से जुड़े रहकर अपनी आस्थाओं पर अडिग रहे और निरंतर रूपवादी तथा कलावादी आंदोलनों के

खिलाफ संघर्षरत रहे, और कलावादियों पर किया गया वह व्यंग्य आज भी उतना ही सार्थक है।

जाने या अनजाने नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता पश्चिम के सांस्कृतिक और कलागत आंदोलनों से अभिभूत कभी नहीं रही बल्कि उन आंदोलनों के खिलाफ सक्रिय रही। यहां तक कि ध्यान से देखा जाये तो नयी कविता में छायावादी संस्कारों की अनुगूंज का सब से कम हिस्सा यदि है तो वह नागार्जुन और त्रिलोचन का है और तीसरा नाम ही यदि लेना हो तो रघुवीर सहाय का नाम इस कड़ी में अवश्य जोड़ा जा सकता है। नागार्जुन का अनुभव संसार बहुत व्यापक है। इसमें एक ओर देहाती ग्रामीण जीवन स्पंदित होता दिखाई देगा तो दूसरी ओर शहरी परिदृश्य के तथाकथित आधुनिक सरोकारों की छीछालेदर और स्वार्थों की परतों को उघाड़ती कविताएं मिलेंगी। एक ओर नागार्जुन कालिदास, रवींद्रनाथ ठाकुर, भारतेंदु और निराला जैसे कवियों के प्रति

समर्पित होते हैं तो दूसरी तरफ गांधी, नेहरू और इंदिरा जैसे राजनेताओं पर व्यंग्य-विनोद करने से नहीं चूकते. और इन सब से अलग इस संकलन में ऐसी कविताओं की भी कमी नहीं जहां कवि प्रकृति की सघन मुद्राओं का आकंठ डूब कर अंकन करता है.

नागार्जुन हिंदी के उन विरल कवियों में से हैं जिन्होंने अपनी प्रतिबद्धता को ही नहीं अपनी पक्षधरता को भी डंके की चोट पर कहा. उन्होंने 'प्रतिबद्ध हूं' शीर्षक का प्रारंभ ही 'प्रतिबद्ध हूं/संबद्ध हूं/आबद्ध हूं' से किया है. यह कविता सन् 1975 में लिखी गयी. इस समय देश में इमरजेंसी लगी हुई थी. ऐसे में अपनी प्रतिबद्धता का ढिंढोरा पीटना कोई हंसी-खेल नहीं था. इस दौरान लिखी गयी कविताओं में राजनीतिक तेवर, तीखे व्यंग्य और हिकारत मिश्रित विनोद प्रियता विशेष रूप से मिलेगी. एक ओर नेहरू जी की मृत्यु पर कवि ने लिखा : 'झुकनी स्वराज्य की डाल और/तुम रह जाते दस साल और.' तो दूसरी तरफ इमरजेंसी में 'इंदिरा जी इंदिरा जी क्या हुआ आप को....?' कहकर सिद्ध कर दिया कि 'प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का.' 'नेवला', 'हरिजन गाथा,' 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने,' 'चंद मैंने सपना देखा' जैसी कविताओं में इस दौर की देश के अराजक तंत्र की तस्वीर उभरती है. वास्तव में नागार्जुन की कविताएं 'एक्शनफुल' अधिक हैं, फोटो-ग्राफिक कम. इन कविताओं की खूबी यह है कि कवि कहीं भी गिड़गिड़ाता नहीं है, वह पाठक को आत्मदया या भावुकता से हीन नहीं बनाता. उल्टे प्रतिपक्षी को व्यंग्य के विविध रूपों की बौछार कर 'डिमोरलाइज्ड' कर देता है. 'आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी' नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है. इसकी दूसरी पंक्ति 'यही हुई है राय जवाहरलाल की' में पालकी के साथ (जवाहर) 'लाल की' तक जैसे सोने पर सुहागा. एक तरफ नागार्जुन 'तुम चंदन हम पानी' कहकर भक्त कवियों की अनुगूंज का स्मरण करा व्यंग्य को साम्राज्यवादी शक्तियों के सामने राष्ट्रीय आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाने वाले ढुलमुल किस्म के नेताओं पर 'अब की पता चला है प्रभु जी तुम चंदन हम बाती' कहकर और भी तीखा बनाते हैं तो दूसरी तरफ 'आये दिन बहार के' जैसी कविताओं में फिल्मी संदर्भ के साथ-साथ रीतिवादी संदर्भ व्यंग्य का समा बंध जाता है. इन कविताओं में कोई नक्काशी या पच्चीकारी नहीं मिलेगी. दरअसल; अतिरिक्त अलंकरण कविता में ही क्या तमाम जीवन में मिजाज का हिस्सा नहीं बन पाया. यूं तो नागार्जुन की कविताओं में जनता से जुड़े हुए ढेरों मूड्स हैं लेकिन अपेक्षाकृत वे विनोद-प्रियता और व्यंग्य के मूड में पाठक को कुछ ज्यादा ही रिझाते हैं. इन व्यंग्यों में बाबा बात-बात में चुटकी, शब्दों से टपकती शरारत से प्रतिपक्ष भीतर ही भीतर तिलमिलाहट के साथ-साथ खिसिया भी जाता है! साथ ही इन व्यंग्यों में बड़ी बात यह है कि प्रतिपक्षी एक साथ व्यंग्य की कई पर्तों से गुजरता है. व्यंग्य इस कदर मिश्रित प्रक्रिया से अपना वार करता है कि प्रतिपक्षी का एक रंग आता है दूसरा जाता है और उस पर बाबा का सड़क पर खड़े-खड़े टुकर-टुकर तटस्थ भाव से नयनाभिराम निहारना!

कहा-सुना जाता है और प्रायः देखा भी कि कवि-कथाकारों को गुस्सा कम आता है. वे शांत और गंभीर प्रकृति के पाये जाते हैं. आदर्श के रूप में 'अज्ञेय जी' का नाम लिया जा सकता है. हमारे समय के और भी बहुत से कवि-लेखकों में यह गुण मिलेगा—शमशेर, त्रिलोचन और नागार्जुन का नाम भी लिया जा सकता है. लेकिन जब यह गुस्सा वैचारिक धरातल पर आकर रचनात्मक रूप लेता है तो अज्ञेय और नागार्जुन के बीच बुनियादी मानसिकता का फर्क एकदम पता चल जाता है. अज्ञेय जब बहुत गुस्से में होते हैं तो वे रचना के धरातल पर इन पंक्तियों से आगे नहीं बढ़ पाते—'आह मेरा श्वास है उत्तप्त—/धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार' या 'शोषक भैया' जैसी ठंडी कविता मिलेगी. बहुत हुआ तो कहेंगे 'हम न पिट्ठू हैं न पक्षधर हैं हम हम हैं!' और नागार्जुन इसी गुस्से को करुणा से नियंत्रित कर कह उठते हैं—

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास.

इन कविताओं में गुस्से और आवेश को इतना रूपांतरित कर दिया गया है कि लगता है एकाएक कवि जीवन के संघर्ष से टूट गया है और एक पस्ती का भाव उसे घेरने लगा है लेकिन अगली पंक्तियों में 'जाने किसकी, जाने किसकी/ और भी गलेगी दाल' कहकर अवसाद को तोड़ने की कोशिश करते हैं. ध्यान रहे यह कविता भी आपातस्थिति के दौरान लिखी गई बढ़िया और गंभीर कविताओं में से एक है.•

नागार्जुन की कविताओं का शिल्प काफी सधा हुआ है. भाषा एकदम साफ और सीधी, बिना पेचो-खम लिए हुए—गांव-देहात के मजदूर-किसान की तरह. भाषा को जीवंत और व्यावहारिक बनाने के लिए नागार्जुन अपनी कविताओं में मुहावरों या बोली प्रधान भाषा का इस्तेमाल अधिक करते हैं. और उस पर कविताओं की लय-ताल लोक धुनों के आस-पास. इन सब बातों से मिलकर कुछ ऐसा होता है कि कविता में वह भारी भरकमपना, तथाकथित भव्यता और काव्योचित गरिमा नहीं आ पाती जिससे अभ्यस्त पाठक समाज के लिए वह प्रचलित अर्थों में कविता बन जाती है. कहने का सार यह है कि नागार्जुन की इन कविताओं में न किसी व्याख्या की गुंजाइश होती और न किसी टिप्पणी की. ध्यान देने की बात है कि नागार्जुन के काव्य-संसार में जड़ीभूत दृश्यत्व विधान का एकदम अभाव होने के कारण कविताओं में अनावश्यक चित्रात्मकता नहीं मिलेगी और जीवन के प्रति यथार्थ का आग्रह होने के कारण अतिशय कल्पना लोक के भटकावों से भी बच गए हैं.

नागार्जुन के रचना संसार में जहां 'तीन सिरों वाला बैताल', 'वह कौन था,' 'प्रेत का बयान' और 'नेवला' जैसी नाटकीय विधान की कविताएं हैं वहां प्रकृतिपरक कविताओं और गीतों की भी कमी नहीं. प्रकृति में जैसे सब से अधिक कवि को बादल आंदोलित करते हैं और 'हिमालयीन-प्रकृति' तो जैसे कवि की प्राकृतिक कविताओं में चार चांद लगा देती है 'अमल धवल गिरि शिखरों पर बादल को घिरते देखा है' या 'अमल-धवल के गिरि शिखरों पर/प्रियवर, तुम कब तक सोये थे' या 'उन पुष्करावर्त मेघों का साथी बनकर उड़ने वाले' जैसी पंक्तियों को देखकर लगता है कवि 'धन-कुरंगों के बीच सब कुछ भूल जाता है प्रकृति-चित्रण में भी नागार्जुन के यहां पर्यटक भाव की अपेक्षा ठेठ किसानी और यथार्थवादी रुझान ही अधिक मिलेगा. नागार्जुन में ग्रामीण किसानों के प्रति कोरी बौद्धिक सहानुभूति नहीं मिलेगी बल्कि सच्चे हिमायती की सहज आत्मीयता का उछाह मिलेगा. 'आ गई वापस जान/दूब की झुलसी शिराओं के अंदर' जैसी पंक्तियां इसी लोक-संस्कृति और अपने जातीय जुड़ाव के कारण ही संभव हैं. दरअसल; नागार्जुन की भाव-संपदा का संस्कार और उसकी निर्मिति मूलतः देसी ही है, चाहें तो आप इसे ग्रामीण कह लीजिए. और अंत में रामविलास शर्मा की महत्वपूर्ण टिप्पणी के साथ अपनी बात खत्म...कि ''नागार्जुन ने लोकप्रियता और कथात्मक सौंदर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है, उतनी सफलता से बहुत कम कवि—हिंदी से भिन्न भाषाओं में भी—हल कर पाए हैं.''

गोबिंद प्रसाद

नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं
प्रकाशक :
वाणी प्रकाशन,. 21 दरियागंज,
नयी दिल्ली-2
मूल्य : सजिल्द : 375 रुपये
पेपर बैक : 185

दृष्टि संपन्नता का लाभ : आज की कहानी

आज की कहानियों पर जब भी चर्चा होती है, तब अभी तक उसका आरंभ आवश्यक रूप से 'नयी कहानी' और नये कहानीकारों से ही होता है। अतः अगर विजय मोहन सिंह ने भी विभिन्न संग्रहों में संकलित कहानियों के बहाने नयी कहानियों से ही आज की कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया हो तो यह बहुत स्वाभाविक है। लेकिन पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने और उसमें ऐतिहासिक क्रम को बनाये रखने की नीयत से लेखक ने पहली तीन समीक्षाओं में गुलेरी, प्रेमचंद और मुक्तिबोध की कहानियों का वस्तुपरक विवेचन प्रस्तुत करते हुए कतिपय नये आयामों का उद्घाटन भी किया है।

प्रस्तुत संकलन में उनकी 26 समीक्षाएं संकलित हैं। इन समीक्षाओं में विजय मोहन ने बड़े परिश्रम, वस्तुपरकता, निष्पक्षता और गहराई से विवेच्य कहानीकारों की केंद्रीय दृष्टि को, बिना किसी लाग-लपेट के, प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः समीक्षा-कर्म को गंभीरता से अपनाने के लिए स्वयं समीक्षक का दृष्टि-संपन्न होना आवश्यक है और कहना होगा कि विजय मोहन ने इस दृष्टि-संपन्नता का निश्चित रूप से लाभ उठाया है।

सर्वप्रथम गुलेरी जी की कहानियों का आकलन करते हुए लेखक ने 'उसने कहा था' की बनावट में युद्ध और प्रेम के अद्भुत सम्मिश्रण को जिस रूप में देखा है, उसे बहुत कम पिछले समीक्षक नहीं देख पाये। इससे पहले, जहां तक मेरा अध्ययन है, किसी समीक्षक ने इस बात को भी रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं समझी कि इस कहानी में पहली बार 'पूर्वदीप्ति' शिल्प का उपयोग किया गया। लेखक ने इस कहानी में जिस प्रकार एक साथ 'आंचलिकता', रोमांटिक भावबोध, [illegible] पूर्व दीप्ति शिल्प, महायुद्ध का परिवेश, अद्भुत गतिशील शैली तथा क्रियाशील संवादों की शुरुआत को लक्षित किया है, वह निश्चित ही उनके सूक्ष्म पर्यवेक्षण और कहानी कला के सूक्ष्म बिंदुओं को सही तरीके से पकड़ने का द्योतक है।

प्रेमचंद की कहानियों को लेकर भी लेखक ने कुछ नये विचार किए हैं। सामान्यतः प्रेमचंद को कृषक वर्ग का कथाकार कहा जाता रहा है, लेकिन लेखक ने सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि प्रेमचंद 'किसी खास' के कहानीकार नहीं हैं, चाहे वह व्यक्ति हो या वर्ग। लेखक का यह निष्कर्ष उन समीक्षकों को असमंजस में डाल सकता है जो प्रेमचंद को मार्क्सवादी कथाकार के रूप में स्थापित करने पर तुले हुए हैं। हिंदी में बहुत बाद के वर्षों में—लगभग सातवें दशक के मध्य में तथाकथित अकेलेपन और अजनबीपन की चर्चा शुरू हुई थी, लेकिन प्रेमचंद की 'दो कब्रें' में प्रो. रामेंद्र के 'एलिएनेशन' (अजनबीपन) की खोज विजय मोहन की अपनी उपलब्धि है। उन्होंने इस संदर्भ में यह बात बड़ी वस्तुपरकता से प्रस्थापित की है कि 'भारतीय संदर्भ में वास्तविक अजनबीपन या 'एलिएनेशन' को समझना हो तो आज के कहानीकारों को प्रेमचंद की 'दो कब्रें' पढ़नी चाहिए।'

प्रेमचंद की कहानियों की समीक्षा में उन्होंने एक और तथ्य की ओर भी संकेत किया है। सामान्यतः हिंदी कहानीकारों ने शोषक और शोषित के दो स्थूल वर्ग बना रखे हैं, एक वर्ग में सेठ-साहूकार, जमींदार-पटवारी, महाजन और अब पूंजीपति होते हैं और दूसरे वर्ग में किसान-मजदूर। लेकिन 'मृतक भोज' में प्रेमचंद ने स्पष्ट रूप से यह निरूपित किया है कि प्रथम वर्ग में आने वाला समुदाय आपस में भी शोषण की प्रक्रिया को जारी रखता है। 'मृतक भोज' में सेठों का समुदाय अपने ही समुदाय के एक मृतक सेठ की विधवा का नृशंसता से शोषण करता है। प्रेमचंद की इस दृष्टि को लेखक ने बड़ी बारीकी और गहराई से लक्षित किया है। उनका यह कहना बिल्कुल सही है कि 'प्रेमचंद की क्षमता आलोचक को गहरा असमर्थ बनाने में भी लक्षित होती है, जिस तरह गांधी हम हतबुद्धि नहीं करना, [illegible] करता है।' इस प्रकार प्रेमचंद की कहानियों पर की गयी इस चर्चा से प्रेमचंद की कहानी कला के अनेक नये आयाम खुलकर सामने आते हैं। आगे, मुक्तिबोध की कहानियों पर विचार करते हुए लेखक ने उनकी काव्यगत प्रवृत्तियों की [illegible] कहानियों में भी खोजने का सफल प्रयास किया है। इस संदर्भ में उनकी कहानियों में उपलब्ध फैंटेसी, आत्मालाप, अधूरेपन तथा मानवीय स्थिति और सामाजिक व्यवस्था के उलझाव और उनके पारस्परिक संबंध को तर्कसम्मतता के साथ प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, मुक्तिबोध की कथ्यपरक विविधता पर भी समीक्षक की दृष्टि गयी है।

ऐतिहासिक क्रमबद्धता को बरकरार रखने की दृष्टि से उपर्युक्त तीन वरिष्ठ कहानीकारों के कृतित्व का आकलन करने के पश्चात विजय मोहन ने अन्य समीक्षाओं में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, रामकुमार, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, अमरकांत, शेखर जोशी, दूधनाथ सिंह, विजय चौहान, प्रयाग शुक्ल, रामनारायण शुक्ल, महेंद्र भल्ला, रवींद्र कालिया, ज्ञानरंजन तथा काशीनाथ सिंह की रचनाधर्मिता का विवेचन-विश्लेषण किया है। साथ ही कुछ लेखों में राजेंद्र यादव तथा कमलेश्वर के कहानी संबंधी विचारों, कहानी में परिवर्तन की प्रक्रिया, अ-कहानी के संदर्भ, साठोत्तरी कहानीकारों के बुनियादी सवालों से टकराने के भ्रम तथा आज की कहानी में समकालीनता पर विचारोत्तेजक टिप्पणियां दी गयी हैं। निर्मल वर्मा और काशीनाथ सिंह की रचनाधर्मिता पर अत्यन्त तटस्थता से विचार किया गया है जो इन कहानीकारों से संबद्ध परम्पराभुक्त धारणा में एक प्रकार से परिष्कार करता है। साठोत्तरी कहानी की अनेक संदर्भों में चर्चा हुई है और हम विजय मोहन के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि 'आज की कहानियों का आदमी 'यौनजीवी' नहीं रहा और उसका विरोध केवल यौन-स्वतंत्रता के लिए नहीं रह गया है, बल्कि वह एक स्थापित क्रम के विरुद्ध एक समानांतर प्रतिरोधक शक्ति बनने की कोशिश कर रहा है। इस कोशिश में वह अकेला जरूर पड़ गया है—लेकिन उसका यह 'अकेलापन' 'लोनलीनेस' या 'एलियनेशन' नहीं है।' इस प्रकार की अनेक निष्पत्तियां कहानियों और कहानीकारों के संदर्भ में इन समीक्षाओं में परिलक्षित होती हैं जो समीक्षक की वस्तुपरकता से समन्वित दृष्टि को निरूपित और प्रतिष्ठित करती हैं। इन समीक्षाओं में कहानी के आकलन को समकालीनता के संदर्भ में गंभीरता से लिया गया है और अपने स्वतंत्र, तर्कसम्मत निष्कर्ष दिए गए हैं। यही इस संकलन की उपलब्धि है। □

देवेश ठाकुर

आज की कहानी (समीक्षाएं) : विजय मोहन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 मूल्य : 35 रुपये.

हलचल

तीन एकांत : कहानियों का रंगमंचीय संसार

अपने आप से बातें करना, बुदबुदाना, पागलपन है या सनक अथवा नशा, क्योंकि कथ्य में आधे शब्द नहीं होते और इनमें से आधे शब्दों के अर्थ नहीं होते. हां, भावनाएं अवश्य होती हैं, जिनमें रह-रह कर पिछली जिंदगी का भोगा हुआ यथार्थ हावी रहता है. इसी यथार्थ भावना या सनक को सुप्रसिद्ध कथाकार **निर्मल वर्मा** ने अपने शब्दों में बांधकर तीन एकालापपूर्ण कहानियों— **'वीकएंड', 'धूप का एक टुकड़ा'** और **'डेढ़ इंच ऊपर'** में प्रस्तुत किया है.

झुलसती गर्मियों की वो एक खुशनुमा शाम थी जब पहली मई, १९७५ को युवा रंगकर्मी **देवेंद्रराज अंकुर** ने इन कहानियों को 'तीन एकांत' में बांधकर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के अंतरंग—स्टूडियो थियेटर में पहले-पहल मंचित किया था. रा. ना. वि. रंगमंच के प्रतिभावान कलाकारों—**सुरेखा सीकरी, सबा ज़ैदी** और **राजेश विवेक** द्वारा अभिनीत इन प्रस्तुतियों में कहानियों का रंगमंच पर उतरना, मौलिक नाटकों के अभाव, अनुदान और अनूदित-नाटकों पर आश्रित हिंदी रंगमंच/रंगकर्मियों, और प्रेक्षकों के लिए एक नया और उत्तेजक रंगानुभव था. इसके बाद तो विभिन्न प्रदेशों और भाषाओं के प्रयोगधर्मी रंगकर्मियों ने कहानियों का एक नया रंगमंचीय संसार रचा.

बारह साल बाद गत २९ अगस्त, १९८७ को नयी दिल्ली के कमानी रंगमंच पर एक बार फिर 'तीन एकांत' देखने/भोगने का अवसर प्राप्त हुआ. इस बार **नवभारत टाइम्स** के सौजन्य से मंचित, बंबई से आमंत्रित प्रमुख **रंग-निर्देशक पं. सत्यदेव दुबे** द्वारा निर्देशित इस प्रस्तुति के प्रमुख आकर्षण थे फिल्म और रंगमंच के जाने-माने बहुचर्चित अभिनेता **अमरीश पुरी**, खूबसूरत अभिनेत्री **सुनीला प्रधान** और रा. ना. वि. में पढ़ी **रत्ना पाठक शाह**. एकांत के क्षण अभिशाप भी होते हैं और वरदान भी. बिना किसी प्रतिक्रिया के हम अपनी वेदना को, तड़फ को अपने आप से कहकर सहानुभूति भी अर्जित कर सकते हैं, और संतोष भी. इसी मानवीय कमजोरी को रेखांकित करती हुई कथाकार निर्मल वर्मा की तीनों कहानियां—'वीक एंड', 'धूप का एक टुकड़ा' और 'डेढ़ इंच ऊपर', पाश्चात्य परिवेश मे भावनाओं के अलग-अलग धरातल पर होने के बावजूद संवेदना के स्तर पर अकेलेपन का एक तीखा एहसास करवाती हैं. स्त्री और पुरुष दोनों के वर्तमान में अतीत के संबंधों, कड़वे मीठे अनुभवों और अनिर्धारित भविष्य का इतना द्वंद्व पैदा होता है कि स्त्री पुरुष की खोज करती है और पुरुष गुजरी हुई जिंदगी (स्त्री) की ओर भागता है. जैसे विवाह से पहले हम बड़ी और अनुभूतिपूर्ण चीजों के बारे में सोचते हैं लेकिन एक अरसा साथ रहने के बाद कुछ छोटी-मोटी आदतें और ऊपर से सतही दिखने वाली दिनचर्या, रोजमर्रा के आपसी भेदभाव जिन्हें हम एक दूसरे के सामने कभी नहीं कहते लेकिन वही बातें प्रमुख हो जाती हैं जब हम अकेले रह जाते हैं, तब वर्तमान अतीत बन जाता है और भविष्य अनिश्चित.

रचनाकार की इसी मनोव्यथा/अभिकल्पना और कहानी के मूल रंग-रूप को बनाए रखकर तीनों कलाकारों-रत्ना पाठक शाह (वीक एंड), सुनीला प्रधान (धूप का एक टुकड़ा) और अमरीश पुरी (डेढ़ इंच ऊपर) ने अपने एकाभिनय द्वारा दर्शकों में कुछ-कुछ उत्सुकता तो जगायी, किंतु कभी-कभी स्व-भाषण की लंबाई, अनावश्यक उकताहट भी पैदा कर रही थी. इस उकताहट को तोड़ने और नाटक का-सा भ्रम पैदा करने के लिए निर्देशक दुबे ने बहुरंगीय मंच व प्रकाश योजना के साथ-साथ पाश्चात्य परिवेश और मनोभावों के उतार चढ़ाव को स्थापित करने के लिए सशक्त ध्वनि प्रभाव, पार्श्व संगीत और स्क्रीन पर विविध स्लाइडों का भी इस्तेमाल किया, तो भी संप्रेषण के स्तर पर कथ्य, अभिनेता, और दर्शकों के बीच एक संवाद का रिश्ता नहीं बन पाया है. यही रिश्ता कहानी के रंगमंच की पहली और बुनियादी शर्त है. इसका मूल कारण शायद कमानी सभागार का विस्तृत मंच और बड़ा दर्शक-समूह था जो प्रस्तुति के अपेक्षित प्रभाव को लगातार क्षीण कर रहा था. समग्र प्रभाव की दृष्टि से अमरीश पुरी की प्रस्तुति 'डेढ़ इंच ऊपर' अन्य दो कहानियों के मुकाबले बेहतर रही. समर्थ अभिनेत्री सुनीला ने भी कथ्य की सीमाओं में अच्छा प्रयास किया. लेकिन अमरीश पुरी जैसे बहुचर्चित

'धूप का एक टुकड़ा' के भावपूर्ण दृश्य में सुनीला प्रधान

'डेढ़ इंच ऊपर' के एक दृश्य में अमरीश पुरी

प्रतिभाशाहन. अभिनेता अपनी पर्याप्त तन्मयता के अभाव में इस सांझ को एक यादगार सांझ नहीं बना पाए. उदाहरण के लिए उनकी प्रस्तुति 'डेढ़ इंच ऊपर' का यह टुकड़ा—

''मैं अपने पीने की सीमा जानता हूं. आदमी को जमीन से करीब डेढ़ इंच ऊपर उठ जाना चाहिए इससे ज्यादा नहीं. वरना वह ऊपर ही उठता जाएगा और फिर उस उड़ान का अंत होगा किसी पुलिस स्टेशन में, या किसी गंदी नाली में. जो ज्यादा दिलचस्प बात नहीं है. लेकिन कुछ लोगों के लिए पीना ना पीना बराबर है. जी हां सही फासला है डेढ़ इंच, ना इससे कम ना इससे ज्यादा. इतनी चेतना अवश्य रहनी चाहिए कि आप अपनी चेतना को माचिस की तीली की तरह बुझते हुए देख सकें. जब चिन्गारी उंगलियों के पास सरक आए तो उसे छोड़ देना चाहिए. इससे पहले नहीं ना बाद में. कब तक पकड़े रहना चाहिए, कब छोड़ना चाहिए पीने का रहस्य इसी पहचान में छिपा है. और इसकी सही पहचान है डेढ़ इंच ऊपर तक.''

कहानी के इस टुकड़े की अदायगी में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के बहुचर्चित अभिनेता राजेश विवेक ने स्टुडियो थियेटर में इतना असरदार प्रदर्शन किया था कि प्रस्तुति के बाद थियेटर से बाहर हुए दर्शक भी स्वयं को जमीन से डेढ़ इंच ऊपर महसूस कर रहे थे.... तथापि सर्वोत्कृष्ट अभिनय के लिए संगीत नाटक अकादमी अवार्ड—१९८७ के सम्मानित पहले हिंदी अभिनेता अमरीश पुरी अपनी तमाम फिल्मी व्यस्तताओं और लोकप्रियता के बीच रंगमंच से अपना रिश्ता बराबर बनाए हुए हैं जिसके कारण रंगमंच से विमुख दर्शक-वर्ग भी ऐसी प्रयोगशील प्रस्तुतियों के लिए महानगरों के प्रेक्षागृहों में उमड़े चले आते हैं. उनका यह आकर्षण और योगदान भी रंगमंच के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है. इसके लिए अमरीश पुरी और रंग-निर्देशक सत्यदेव दुबे समान रूप से बधाई के पात्र हैं. □

आनंद गुप्त

नवीन प्रयोगों से भरपूर नाटक

रंगमंच के माध्यम से ही प्रादेशिक भाषाओं की कहानियां इतनी जनप्रिय हो गयी हैं कि इन्हें हिंदी की मौलिक रचना कहा जाने लगा है. 'विराजप्पेटा से आयी औरत' एक ऐसी ही कहानी है जिसका नाट्य रूपांतर अरूण कुकरेजा ने किया है. 'रूचिका' की प्रस्तुति में इस नाटक का मंचन श्रीराम सैंटर के मुख्य प्रेक्षागृह में 24 से 26 सितंबर के बीच किया गया.

समाज सुधारक और स्वतंत्रता सेनानियों की अस्मिता को आज समाज ने लगभग भुला दिया है. इसी तथ्य को व्यक्त करते हुए लेखक ने मृत्यु शय्या पर पड़े पुरूष की अंतिम इच्छा को इस रूप में चित्रित किया है कि समाज का एक वर्ग तो उसे घिनौनी निगाहों से देखता है और दूसरा इस इच्छा को उस पुरूष की प्रेरणा के रूप में मानता है. वहीं दूसरी ओर समाज से बहिष्कृत समझी जाने वाली स्त्री के हृदय की उदारता उस समाज से इतनी विशाल है जो उस पुरूष की मदद करने में निरंतर बाधा डालने का प्रयास करता है.

कार्यकारी, वैधानिक एवं न्यायिक संरचना को नितांत खोखला दिखलाते हुए लेखक ने प्रचार माध्यमों पर व्यंग्य किया है, जिसके अंतर्गत संपादक अपने व्यवहार में अवसरानुकूल परिवर्तन लाकर संवाददाताओं को अपनी चाल का मात्र एक मोहरा मानता है.

जहां तक कलाकारों के अभिनय पक्ष का सवाल है, शशि बाला ने हर दृश्य में प्रभावित किया. शराबी अंदाज में अपने प्रतिशोध को प्रकट करते हुए संवाददाता की भूमिका में राजेश खट्टर का अभिनय आकर्षक रहा लेकिन दूसरी संवाददाता बन्या जोशी संपादक और रिक्शा चालक से बात करते हुए पूर्णतः अस्वाभाविक लगीं. नाटक के मुख्य पात्र वमीक अब्बासी भी बूढ़े अंदाज को ढालने में अस्वाभाविक दिखाई दिए लेकिन सनी से मिलने की उत्कंठा को प्रकट करने के एक दृश्य में उन्होंने बहुत ही मार्मिक अभिनय किया. वेश्या की भूमिका में विजया राजदान ने अपनी कारूणिक अभिव्यक्ति से दृश्य को प्रभावशाली बना दिया. निर्देशक अरूण कुकरेजा ने के. खोसा की पेंटिंग्स, स्लाइड्स और जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं का देवकी नंदन पांडेय के स्वर में सार्थक प्रयोग किया. दृश्य संयोजन आकर्षक रहे. मंच पर स्थान परिवर्तन के लिए पाँच अलग-अलग स्थलों का प्रयोग किया गया.

मनोज जोशी

नागा लोक-कथा : तीन

मिथुन मिथुन

□ आर. लुइखाम

बहुत समय पूर्व, कुछ मरिंग नागा एक गुफा में रहते थे. प्रारंभ में उनकी संख्या थोड़ी थी परन्तु एक लंबे समय तक गुफा में रहने पर उनकी संख्या बढ़ गयी और गुफा इतनी बड़ी नहीं थी कि वे सब उसमें रह सकते जो स्वाभाविक भी था. वे गुफा के मुंह पर भी रुकावट अनुभव करने लगे क्योंकि गुफा का मुंह चौड़ा तो था परन्तु पर्याप्त ऊंचा नहीं था. छोटे बच्चों को छोड़कर सभी को गुफा में प्रवेश करने के लिए तथा गुफा से बाहर आने के लिए झुकना पड़ता था. अपने भोजन के लिए वे गुफा के बाहर अनाज उगाते थे और शिकार करके मांस लाते थे. सारा समाज एक परिवार की तरह रहता था और उनका नेता राजा रुगमनिलु था जो योग्य तथा बुद्धिमान था.

गुफा के मुंह पर एक बृहद शिलाखंड ऊपर की ओर से लटक रहा था और उसी के कारण गुफा के मुखभाग में रुकावट होती थी. इसी रुकावट के कारण वे अधिक मात्रा में खाने–पीने की वस्तुएं तथा बड़े जानवर अंदर नहीं ला सकते थे. उन्होंने उस शिलाखंड को हटाने के लिए हर संभव प्रयास किया परन्तु उसे हटाने का प्रयास करने में छत की ओर से एक और बड़े शिलाखंड के खिसक जाने का भय था. सबसे अधिक नाजुक समस्या उस शिलाखंड के ऊपर चढ़ने की थी जो एक सीधी खड़ी चट्टान थी. कोई भी व्यक्ति ऊपर नहीं चढ़ सका क्योंकि उस पर पांव टिकाने की कोई जगह नहीं थी जिससे कि उस शिलाखंड को हटाया जा सकता. उन्होंने एक मचान बनाया परन्तु वे उन दो पत्थरों को नहीं हटा सके क्योंकि उससे उनके जीवन को बड़ा खतरा था.

शिलाखंड [illegible] टाने के सभी प्रयास जब विफल हो ग[illegible] राजा रुगमनिलु ने आकाश

उपकार का वादा करके हृष्ट-पुष्ट जानवरों को उसे हटाने के लिए आमंत्रित किया. शेर, बाघ, सांड, भैंसा तथा हाथी प्रतियोगी बने. शुरू में हाथी ने पूरी कोशिश की परन्तु पत्थर हटाने में वह असफल रहा. वह ताकतवर तो था परन्तु शिलाखंड इतना चिकना था कि वह उसे अच्छी तरह नहीं पकड़ सका. भैंसे ने भी प्रयत्न किया परन्तु वह भी असफल रहा. हाथी तथा भैंसे के असफल हो जाने के पश्चात किसी ने भी कोशिश करने की हिम्मत नहीं की. अंततः चिकने शरीर वाले तथा हृष्ट-पुष्ट मिथुन ने अपना भाग्य आजमाने की कोशिश की. लेकिन वह यह चाहता था कि अगर वह पत्थर हटाने में सफल हो जायेगा तो मनुष्य को, जो उसके मालिक थे, अपना वचन निभाना होगा. इसलिए मिथुन ने इस प्रकार कहा. "यदि मैं अपने जीवन को जोखिम में डालकर पत्थर हटा लेता हूं तो तुम मुझे किसी भी काम के लिए इस्तेमाल नहीं करोगे चाहे वह खेत जोतने के लिए हो अथवा पाटा फेरने के लिए. इसके अलावा, दूसरों के किसी भी हस्तक्षेप के बिना मुझे स्वतंत्रता के साथ जीने दिया जायेगा. यदि यह शर्त स्वीकार हो तो मैं इस शिलाखंड को छह दिन के समय में हटा दूंगा. लोगों को इस बात में संदेह था कि मिथुन शिलाखंड को हटा भी सकेगा. यदि वह हटा भी देगा तो वह मर जायेगा क्योंकि छोटे पत्थर के ऊपर लटक रहा पत्थर भी धमाके के साथ नीचे आ गिरेगा.

गुफा के निवासियों ने विगत समय में इतनी असुविधाएं झेली थीं कि वे मिथुन के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तत्काल राजी हो गये हालांकि उन्हें इस बात का किंचित भी विश्वास नहीं था कि वह पत्थर हटा सकेगा. उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि मिथुन को कभी भी किसी काम के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाएगा चाहे वह खेत जोतने का काम हो अथवा पाटा फेरने का अथवा कोई भी अन्य घरेलू कार्य. मिथुन यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ कि मनुष्य ने जो उसके मालिक थे, उसकी शर्त स्वीकार कर ली है.

बिना कोई प्रतीक्षा किये, मिथुन योजना बनाने लगा कि उस शिलाखंड को कैसे हटाया जाये परन्तु उसे इस बात का कभी पता नहीं चल सका कि जब नीचे वाला पत्थर हटा लिया जायेगा तो ऊपर वाले उससे अधिक बड़े पत्थर के नीचे गिरने का अधिक खतरा रहेगा. लेकिन, उसने सोचा कि अपनी प्रतिष्ठा के लिए उसे अपना वचन अवश्य निभाना चाहिए.

सबसे पहले मिथुन ने अगले पांवों को मजबूती से टिकाने के लिए अपने तेज सींगों से एक स्थान बनाया. वह पत्थर इतना अधिक ठोस था कि मिथुन पूरे तीन दिन तक प्रातःकाल से सूर्यास्त होने तक उस पर लगा रहा. उसके पश्चात उसने अपने तेज सींगों की सहायता से बड़े शिलाखंड के निचले कोने पर जमा ढीले पत्थरों को हटाया. इसमें उसे अगले दो दिन और दो रातें लग गयीं. अब काम को पूरा करने के लिए उसके पास केवल एक दिन शेष रह गया था और ऐसा लगता था कि खास काम पूरा हुआ है. छठे दिन वह इतना थका-मादा था कि उसमें कोई शक्ति शेष नहीं रही लगती थी. तथापि, बहुत हठीला होने के कारण मिथुन हारने वाला नहीं था.

प्रातःकाल अपना पूरा भोजन करने के पश्चात वह नींद नहीं रोक सका जो उसके संकल्प पर बलवती हो गयी. सोने से पूर्व उसने कुत्ते से निवेदन किया कि जब सूर्य ढलने लगे तो वह उसके कानों में भौंक दे और कुत्ता इस बात के लिए तत्काल राजी हो गया. बहुत अधिक आलसी होने के कारण कुत्ते ने एक बहुत लंबी झपकी ले ली और जब वह जागा तो दोपहर के बाद काफी समय हो चुका था. जैसे ही वह उठा वह उछला और मिथुन की ओर दौड़ा और इतने जोर से उसके कानों में भौंका कि मिथुन चौंक गया और वह कुत्ते से अतिक्रुद्ध हो गया. परंतु जब कुत्ते ने बड़ी नम्रता से उसे बताया कि उसने तो मिथुन के कहने पर ही ऐसा किया है तो मिथुन शीघ्र ही शांत हो गया.

सुबह आराम करने से निश्चय ही मिथुन की शक्ति पुनः लौट आयी और वह समझने लगा कि फिर से कार्य करने के लिए वह अब ठीक है. जब उसने अपना कार्य फिर से प्रारंभ किया तो सभी उस पर हंसने लगे क्योंकि वह कार्य स्पष्टतः असंभव लगता था. वह उन्हें मूर्ख लगता था परंतु उनकी हंसी से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा. वास्तव में वह शांत तथा प्रकृतिस्थ रहा. उसने अपने पांव रखने की जगह की और पत्थर के निचले किनारे की सावधानी से जांच की. उसने निचले किनारे पर पुनः चोट की ढीला होने पर वह फिसलकर नीचे आ जाये. उसके पश्चात उसने पांव रखने की जगह को कुछ और गहरा किया.

कुछ समय तक उसने स्थिति का जायजा लिया. बारीकी से देखने के पश्चात वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यदि वह एक बड़ा धक्का दे तो शिलाखंड फिसल कर नीचे आ जायेगा. सूर्य डूबने में अधिक समय नहीं था इसलिए मिथुन को शेष कार्य शीघ्र कर लेना चाहिए था. सारी स्थिति विपरीत होने पर भी वह शांत तथा अपनी सफलता के प्रति आश्वस्त था.

जैसे ही अंतिम प्रयत्न का समय आ गया दर्शक बड़ी उत्सुकता से देखते रहे. जब मिथुन कार्य के लिए उद्यत हुआ तो चारों तरफ पूरा सन्नाटा छा गया. उसने अपनी पूरी शक्ति से एक भारी धक्का लगाया परन्तु शिलाखंड टस से मस नहीं हुआ जिससे सभी हंसने लगे. परन्तु मिथुन, जो निश्चय ही बड़ा दिलेर था और जिसका शरीर असाधारण रूप से हृष्ट-पुष्ट था, शांत रहा, हालांकि वह बहुत थक चुका था और पसीने से तर था, फिर भी उसका साहस कम नहीं हुआ.

थोड़ा-सा आराम करने के बाद, उसकी शक्ति एक बार फिर लौटी. इस बार उसने एक गहरी सांस ली और इतनी जोर का धक्का दिया कि शिलाखंड एक तरफ लुढ़क गया. जैसे ही मिथुन ने दूसरा जोर का धक्का दिया वह बड़ा पत्थर बहुत ही धीरे-से बाईं तरफ खिसका. सभी ने उसे अचंभे के साथ देखा क्योंकि उन्हें पत्थर के खिसकने का विश्वास नहीं था. वे अब निश्चित थे कि पत्थर अवश्य नीचे गिर जायेगा. और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ जब वह बड़ा भारी पत्थर धमाके के साथ नीचे आ गिरा. वास्तव में मिथुन ने वह कर दिखाया जो असंभव लगता था.

सभी लोग तथा जानवर, जो यह करिश्मा देख रहे थे, मिथुन की महान शक्ति की सराहना करते हुए चिल्लाने लगे. हाथी, भैंसा तथा अन्य जानवर मिथुन की इस सराहना को सहन नहीं कर सके और सभी निकट के जंगल में अदृश्य हो गये. मिथुन को सबसे अधिक बलशाली तथा महान घोषित किया गया जो सही भी था. जिस समय यह घोषित किया गया कि यह अपनी ही इच्छा के अनुसार एक स्वतंत्र जीवन जीयेगा, उस समय वह विजय स्तंभ पर खड़ा था.

चलते-चलते

भिणाय का राजा कर्मसेन अकबर का दरबारी था. दरबारियों के कहने-सुनने और स्वयं बादशाह द्वारा एक बड़े राज्य के प्रलोभन दिये जाने पर कर्मसेन बादशाह के हाथी पर खवासगी पर बैठ चंवर डुलाने को तैयार हो गया.

राजपूत सरदारों में इस बात को लेकर बड़ा क्षोभ था लेकिन वे निरुपाय थे. कर्मसेन चंवर लेकर हाथी पर बैठ गया. बादशाह के आने में अभी देर थी. तभी एक कवि ने यह दोहा कहा—

कम्मा अगर सेन रा तो ऊनी बलिहार
चंवर न डल्ले साह पर, तूं झल्ले तलवार!

यह सुनकर कर्मसेन हाथी से कूद पड़ा और उसने राजपूतों की शान को बचा लिया. □

■ प्रस्तुति : वीथिका

साहित्य प्रेमियों एवं शोध कर्त्ताओं के लिए जाने माने विद्वानों की शोध समीक्षाएँ

…गौतम …काव्यकला	75.00
…तिवारी …काव्य का दार्शनिक …	80.00
…सिंह …लिपि में हिन्दी काव्य	100.00
…गुप्ता …का विशिष्ट …	250.00
… भ्रमर …भक्ति-साहित्य में लोक …	100.00
… …अलंकार साहित्य	50.00
…काव्य और उसका …	100.00
…चौहान …युग की हिन्दी गद्य …यों का अध्ययन	120.00
…गुप्ता …तथा मराठी उपन्यासों …तुलनात्मक अध्ययन	100.00
…श्रीवास्तव …भाषा का अध्ययन	150.00
…सिंह जग्गी …ग्रन्थ की पौराणिक …भूमि	100.00
…विद्यानाथ गुप्ता …कविता में राष्ट्रीय …भावना	150.00
…राजकिशोर कक्कड़ …आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास	250.00
डा. रामशंकर सिंह सेठ गोविन्ददास: व्यक्तित्व कृतित्व और जीवन दर्शन	200.00
डा. वीरेन्द्रकुमार सक्सेना रीतिकाव्य और विद्यापति	100.00
डा. गोपाल शर्मा सामाजिक विज्ञानों की पारिभाषिक शब्दावली	150.00
डा. हरगुलाल मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति	200.00
डा. वासुदेव विचार और निष्कर्ष	60.00
नेमनारायण जोशी सुमित्रानंदन पंत का नवचेतना काव्य	100.00
डा. गोविन्द त्रिगुणायत जायसी का पद्मावत: शास्त्रीय भाष्य	250.00
डा. विमल कुमार जैन कामायनी चिन्तन	100.00
देवर्षि सनाढ्य भारतीय नाट्यशास्त्र तथा हिन्दी नाट्य विधान	250.00
डा. नगेन्द्र भारतीय नाट्य साहित्य	200.00
डा. राम प्रतिपाल मिश्र तुलसी काव्य चिन्तन	200.00
डा. ओम प्रकाश गुप्त हिन्दी डोगरी प्रत्यय	100.00
डा. जयचन्द्र राय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: सिद्धान्त और साहित्य	100.00
डा. भगीरथ मिश्र कला साहित्य और समीक्षा	75.00
डा. रामचरण महेन्द्र गोविन्ददास: साहित्य और समीक्षा	50.00
डा. देवराज उपाध्याय साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	100.00
डा. रामरतन भटनागर मूल्य और मूल्यांकन	60.00
डा. ज्ञानचन्द हिन्दी के साहित्यिक निबन्ध	40.00
श्री गिरिजादत्त शुक्ल साहित्य निबन्ध	60.00
डा. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला	250.00
डा. सत्यदेव चौधरी हिन्दी के प्रतिनिधि कवि	30.00
आधुनिक कवि	10.00
उमा ठाकुर विद्यापति की बिम्ब योजना	65.00
डा. रत्ना कुमारी हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि	150.00
श्याम सुन्दर घोष उपन्यासकार प्रेमचन्द	50.00
प्रो. टेक चन्द शास्त्री निबन्धकार: रामचन्द्र शुक्ल	35.00

एस. चन्द एण्ड कं. (प्रा.) लिमिटेड

हेड आफिस : राम नगर, नई दिल्ली-55

शोरुम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली - 2

शाखायें: बंगलूर, बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, गौहाटी, हैदराबाद, जालन्धर, लखनऊ, मद्रास, नागपुर, पटना

TRENDS SC 1439

…लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिये … द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002 से मुद्रित व प्रकाशित. पंजी. कार्यालय : डॉ. दादा भाई नौरोजी रोड, बम्बई-400 001 … नई दिल्ली-110 002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380 009; 105/7 ए, एस एन बनर्जी रोड, कलकत्ता-700 014; कार्यालय : 13/1-2, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700 069; … मद्रास-600 034; 407-1, … पुणे-411 002; 26, स्टेशन एप्रोच, … लंदन, यू.के., लंदन टेलिफोन नं. 01-903-9696.

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/499
KARNATAKA
Regn. No. KRN/BG/GPO/46
RJ 2954